

॥ ओ३म् ॥

सांख्यदर्शनम् बह्ममुनिभाष्योपेतम् तत्र प्रथमोऽध्यायः



भाष्य विस्तार - पूज्य स्वामी विवेकानंद जी परिव्राजक
(निदेशक- दर्शन योग महाविद्यालय)

[यह केवल निजी प्रयोग हेतु, अप्रकाशित, संशोधन अपेक्षित संग्रह है ।]

॥ ओ३म् ॥

सांख्यदर्शनं ब्रह्ममुनिभाष्योपेतम्

तत्र

प्रथमोऽध्यायः

अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिर्वृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः ॥ १ ॥

(अथ) अथ शब्दोऽधिकारार्थः, इदानीं (त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिः) त्रिविधस्य त्रिप्रकारस्य-
आध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविकभेदान्वितस्य दुःखस्यात्यन्तनिवृत्तिरनपरान्तनिवृत्तिः (अत्यन्तपुरुषार्थः)
परमः पुरुषार्थः परमं पौरुषं पुरुषत्वं मानवस्य-मानवजीवनस्य परमं साफल्यं यदस्ति तदत्राधिक्रियते
॥ १ ॥

॥ ओ३म् ॥

सांख्यदर्शनं ब्रह्ममुनिभाष्योपेतम्

तत्र

प्रथमोऽध्यायः

अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिर्वृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः ॥ १ ॥

सूत्रार्थ= तीन प्रकार के दुःखों से पूर्णतया छूट जाना पुरुष=जीवात्मा का ये तीन सर्वोच्च अंतिम प्रयोजन है।

भाष्य विस्तार = (अथ) अथ शब्दोऽधिकारार्थः भाष्यकार कहते हैं कि अथ शब्द यहाँ पर अधिकार अर्थ में है, (अथ शब्द के अनेक अर्थ हैं यहाँ पर जो प्रमुख अर्थ लिया है वह है “किसी विषय को आरंभ करना”, अब एक विषय आरंभ किया जाता है), इदानीं अब यहाँ इस विषय में बताते हैं (त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिः) त्रिविधस्य त्रिप्रकारस्य-आध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविकभेदान्वितस्य दुःखस्यात्यन्तनिवृत्तिरनपरान्तनिवृत्तिः तीन प्रकार के दुःख कि निवृत्ति (दुःख का पूरी तरह से हट जाना) ऐसी निवृत्ति जो शीघ्र समाप्त न हो, अत्यन्तनिवृत्ति= मुक्ति काल तक तीन प्रकार के दुःखों से छूट जाना (अत्यन्तपुरुषार्थः) परमः पुरुषार्थः परमं पौरुषं पुरुषत्वं मानवस्य-मानवजीवनस्य परमं साफल्यं यदस्ति तदत्राधिक्रियते ये परम पुरुषार्थ है, ये सबसे ऊँचा पुरुष का उद्देश्य है, मानव जीवन कि सबसे बड़ी सफलता जो है उसका यहाँ अधिकार किया जाता है, इस विषय को आरंभ किया जाता है ॥ १ ॥

तदुपायचिन्तनायां दृष्टसाधनस्यापर्याप्तत्वं दृश्यते - (तीन प्रकार के दुःखों से छूटने का) इसका उपाय सोचते सोचते जो इसके दृष्ट साधन (भोजन, वस्त्र, मकान, धन आदि) हैं, ये अपर्याप्त हैं-

तदुपायचिन्तनायां दृष्टसाधनस्यापर्याप्तत्वं दर्शयते -

न दृष्टात् तत्सिद्धिर्निवृत्तेरप्यनुवृत्तिदर्शनात्* ॥ २ ॥

(दृष्टात् तत्सिद्धिः-न) दृष्टात् साधनात् खलु लोके प्राप्यमाणात् साधनात् तथाभूतनिवृत्तिसिद्धिर्न भवति न भवितुमर्हति । यतः (निवृत्तेः-अपि-अनुवृत्तिदर्शनात्) कस्यचिन्निवृत्तेरनन्तरमपि पुनरनुवृत्तिर्दृश्यते हीत्यतः ॥ २ ॥

दृष्टसाधनाद् दुःखप्रतीकारे खलु -

प्रात्याहिकक्षुत्प्रतीकारवत्तत्प्रतीकारचेष्टनात् पुरुषार्थत्वम् ॥ ३ ॥

(प्रात्याहिकक्षुत्प्रतीकारवत्) प्रत्यहं यथा क्षुत्प्रतीकारो भोजनात् क्रियते तद्वत् (प्रतीकारचेष्टनात्) तस्य त्रिविधदुःखस्य प्रतीकारव्यापारात् (पुरुषार्थत्वम्) पुरुषार्थता भवतु न त्वत्यन्तपुरुषार्थतेति यावत् ॥ ३ ॥

न दृष्टात् तत्सिद्धिर्निवृत्तेरप्यनुवृत्तिदर्शनात्* ॥ २ ॥

सूत्रार्थः= दृष्ट भौतिक साधनों से समस्त दुःखों से निवृत्ति मोक्ष कि प्राप्ति नहीं हो सकती, कुछ देर के लिए दुःख छूट जाने पर भी फिर से वे दुःख आजाते हैं, ऐसा देखा जाने से।

भाष्य विस्तार = (दृष्टात् तत्सिद्धिः-न) दृष्टात् साधनात् खलु लोके प्राप्यमाणात् साधनात् तथाभूतनिवृत्तिसिद्धिर्न भवति न भवितुमर्हति दृष्ट साधनों से लोक में प्राप्त होने वाले साधन से, उस प्रकार कि जो दुःखों से पूरी निवृत्ति है दुःखों से पूरी तरह छूटने कि सिद्धि न होती और न हो सकती । यतः क्योकि (निवृत्तेः-अपि-अनुवृत्तिदर्शनात्) कस्यचिन्निवृत्तेरनन्तरमपि पुनरनुवृत्तिर्दृश्यते हीत्यतः किसी दुःख के छूटने जाने के बाद भी (जैसे भूख लगने पर भोजन किया तो भूख छूट गयी उससे निवृत्ति हो गयी) फिर से उसकी अनुवृत्ति दिखाई देती है, इसलिए भौतिक साधनों से दुःख कि पूरी तरह निवृत्ति नहीं हो सकती ॥ २ ॥

दृष्टसाधनाद् दुःखप्रतीकारे खलु - दृष्ट साधनों से यदि हम दुःख का प्रतीकार करते हैं तो ऐसा करने में तो-

प्रात्याहिकक्षुत्प्रतीकारवत्तत्प्रतीकारचेष्टनात् पुरुषार्थत्वम् ॥ ३ ॥

सूत्रार्थः= दैनिक भूख के निवारण के तुल्य उन तीन दुःखों को हटाने कि चेष्टा करने से वह पुरुषार्थ तो कहलाएगा किन्तु अत्यन्त पुरुषार्थ नहीं कहा जाएगा।

भाष्य विस्तार = (प्रात्याहिकक्षुत्प्रतीकारवत्) प्रत्यहं यथा क्षुत्प्रतीकारो भोजनात् क्रियते तद्वत् (प्रतीकारचेष्टनात्) तस्य त्रिविधदुःखस्य प्रतीकारव्यापारात् (पुरुषार्थत्वम्) पुरुषार्थता भवतु न त्वत्यन्तपुरुषार्थतेति यावत् जैसे प्रतिदिन भोजन से हम भूख का विनाश करते हैं, उसी तरह से उन तीन प्रकार के दुःखों का प्रतीकार करने से अलग अलग दुःख आने पर अलग अलग उपाय करने से पुरुष का प्रयोजन तात्कालिक रूप से तो सिद्ध हो जाएगा, परंतु पूरी तरह से दुःखों से निवृत्ति नहीं हो पाएगी ॥ ३ ॥

तत्र च - और उसमें भी -

तत्र च -

सर्वासम्भवात् सम्भवेऽपि सत्त्वासम्भवाद्धेयः प्रमाणकुशलैः ॥ ४ ॥

(सर्वासम्भवात्) दृष्टसाधनाद् दुःखप्रतीकाररूपायां पुरुषार्थतायां कस्यचिदेकस्यैव दुःखस्य प्रतीकारो भविष्यति यतस्तस्मादेकस्माद्दृष्टसाधनात् तत्सम्बद्धमेव दुःखं निवर्तिष्यते, नहि सर्वदुःखनिवृत्तिसम्भवस्तस्मात् (सम्भवे-अपि) अथ च बहुविधदृष्टसाधनसमुदायात् सर्वदुःखप्रतीकारसम्भवेऽपि (सत्त्वासम्भवात्) सत्त्वस्य वास्तविकदुःखप्रतीकारस्य नितान्तदुःखनिवृत्तिरूपस्य मोक्षस्यासम्भवात् । उक्तं हि यथा “परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः” (योग ० २. १५) तस्मात् (प्रमाणकुशलैः-हेयः) प्रकृष्टं मीयते येन तत्प्रमाणं समतोलनं तत्र कुशलैः समतोलनकुशलैर्दूरदर्शिभिर्विवेकिभिः स एष दृष्टसाधनगणाद् दुःखप्रतीकारस्त्याज्यो नादरणीयः ॥ ४ ॥

सर्वासम्भवात् सम्भवेऽपि सत्त्वासम्भवाद्धेयः प्रमाणकुशलैः ॥ ४ ॥

सूत्रार्थ- एक साधन से सब दुःखों का दूर होना असंभव है। ५० साधनों से ५० दुःखों से दूर होने पर भी मोक्ष नहीं हो पाएगा, इस कारण से प्रमाणों में जो कुशल बुद्धिमान लोग हैं उन्होंने बताया की भौतिक साधनों से मोक्ष प्राप्ति असंभव है।

भाष्य विस्तार = (सर्वासम्भवात्) दृष्टसाधनाद् दुःखप्रतीकाररूपायां पुरुषार्थतायां कस्यचिदेकस्यैव दुःखस्य प्रतीकारो भविष्यति कहते हैं दृष्ट साधनों से दुःख के विनाशरूपी पुरुषार्थता में किसी एक साधन से एक प्रकार के दुःख की निवृत्ति हो पाएगी यतस्तस्मादेकस्माद्दृष्टसाधनात् तत्सम्बद्धमेव दुःखं निवर्तिष्यते क्योंकि उस एक दृष्ट साधन से उससे संबन्धित जो दुःख है उसकी ही निवृत्ति होगी, नहि सर्वदुःखनिवृत्तिसम्भवस्तस्मात् समस्त दुःखों की निवृत्ति एक साधन से संभव नहीं है, इसलिए (सम्भवे-अपि) अथ च बहुविधदृष्टसाधनसमुदायात् सर्वदुःखप्रतीकारसम्भवेऽपि (सत्त्वासम्भवात्) सत्त्वस्य वास्तविकदुःखप्रतीकारस्य नितान्तदुःखनिवृत्तिरूपस्य मोक्षस्यासम्भवात् बहुत सारे दृष्ट साधनों के समुदाय से बहुत सारे दुःखों की निवृत्ति तात्कालिक रूप से होने पर भी सत्त्व अर्थात् जो वास्तविक दुःख है उसके प्रतीकार की उसके विनाश की नितांत दुःख की निवृत्ति रूप जो मोक्ष है वह असंभव है। उक्तं हि यथा जैसे दुःखों के विषय में योगदर्शन में कहा ही है “परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः (योग ० २. १५)” परिणाम, ताप, संस्कार, गुणवृत्ति विरोध। ये चार प्रकार के दुःख होने से विवेकी को सब दुःख ही दुःख दिखता है तस्मात् इसलिए (प्रमाणकुशलैः-हेयः) प्रकृष्टं मीयते येन तत्प्रमाणं समतोलनं तत्र कुशलैः समतोलनकुशलैर्दूरदर्शिभिर्विवेकिभिः स एष दृष्टसाधनगणाद् दुःखप्रतीकारस्त्याज्यो नादरणीयः प्रमाण उसको कहते हैं जिससे किसी वस्तु को ठीक से माप तौल किया जाए, किसी साधन से वस्तु की ठीक ठीक जानकारी प्राप्त हो जाए वह प्रमाण है, अच्छी प्रकार से माप तौल करने का साधन, उसमें जो कुशल हैं ऋषि लोग, उन ऋषियों के द्वारा दूर तक देखने वाले बुद्धिमान विवेकीजनों के द्वारा वह यह दृष्ट साधन समुदाय से जिससे दुःख का प्रतीकार हुआ है वह त्याज्य है, उससे मोक्ष की प्राप्ति नहीं होगी ॥ ४ ॥

अपरं च -

उत्कर्षादपि मोक्षस्य सर्वोत्कर्षश्रुतेः ॥५॥

(उत्कर्षात्-अपि) शास्त्रविहितयज्ञदिदृष्टसाधनानुष्ठानाद् भवतूत्कर्षः, परन्तूत्कर्षाद्धेतोरपि मोक्षे हि खलूत्कर्षो न तथा यज्ञादिदृष्टसाधनसाध्ये दुःखनिवृत्तिरूपे पुरुषार्थे । यतः (मोक्षस्य सर्वोत्कर्षश्रुतेः) मोक्षस्य हि सर्वोत्कर्षविषयिका श्रुतिरस्तीति हेतोः “ अशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः ” (छान्दो० ८.१२.१) “ एषाऽस्य परमा गतिरेषाऽस्य परमा सम्पत् ” (बृह० ६.३.३२) तस्माद् दुःखात्यन्तनिवृत्तिरूपाय मोक्षाय तदेतद् यज्ञादिदृष्टसाधनमुपादेयं न, किन्तु यमनियमाद्यष्टा ऽयोगानुष्ठानमदृष्ट- साधनमुपादेयम् ॥५॥

भवतु मोक्षस्य सर्वोत्कृष्टत्वम्, मोक्षो भविष्यति हि बद्धस्य तर्हि बद्धस्य मोक्षे -

अपरं च -

उत्कर्षादपि मोक्षस्य सर्वोत्कर्षश्रुतेः ॥५॥

सूत्रार्थ= यज्ञ आदि दृष्ट साधनों से भी आत्मा की उन्नति तो होगी परंतु उससे भी मोक्ष नहीं हो पाएगा, वेदों में मोक्ष अवस्था को सबसे उत्तम बताया गया है इसलिए।

भाष्य विस्तार = (उत्कर्षात्-अपि) शास्त्रविहितयज्ञदिदृष्टसाधनानुष्ठानाद् भवतूत्कर्षः शास्त्र में बताए गए यज्ञ आदि दृष्ट साधनों के अनुष्ठान से भी उन्नति होती है, परन्तूत्कर्षाद्धेतोरपि मोक्षे हि खलूत्कर्षो न तथा यज्ञादिदृष्टसाधनसाध्ये दुःखनिवृत्तिरूपे पुरुषार्थे परंतु इन सब कार्यों से उन्नति होने पर भी जैसा उत्कर्ष मोक्ष में होता है, जैसी दुःख निवृत्ति मोक्ष में होती है वैसी यज्ञ आदि दृष्ट साधनों के अनुष्ठान से नहीं होती। यज्ञ आदि से पुनर्जन्म की प्राप्ति, विशेष सुख साधनों की प्राप्ति तो हो जाएगी, किन्तु मोक्ष नहीं हो पाएगा। यतः (मोक्षस्य सर्वोत्कर्षश्रुतेः) मोक्षस्य हि सर्वोत्कर्षविषयिका श्रुतिरस्तीति हेतोः क्योंकि शास्त्रों में मोक्ष के विषय में सबसे उत्तम स्थिति बतलाई है “ अशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः (छान्दो ० ८.१२.१) ” जब व्यक्ति शरीर रहित हो जाता है ऐसे आत्मा को सांसारिक सुख- दुःख नहीं छू सकते “ एषाऽस्य परमा गतिरेषाऽस्य परमा सम्पत् (बृह ० ६.३.३२) ” यही इसकी परम गति है यही इसकी परम संपत्ति है तस्माद् दुःखात्यन्तनिवृत्तिरूपाय मोक्षाय तदेतद् यज्ञादिदृष्टसाधनमुपादेयं न इसलिए अत्यंत दुःख की निवृत्ति रूप मोक्ष की प्राप्ति के लिए यज्ञ आदि जो दृष्ट साधन हैं इनको अपनाना भी ठीक नहीं है, किन्तु यमनियमाद्यष्टा ऽयोगानुष्ठानमदृष्टसाधनमुपादेयम् किन्तु यम नियम आदि अष्टांग योग जो अदृष्ट साधन हैं मोक्ष प्राप्ति के लिए इन्हीं का अनुष्ठान करना चाहिए ॥५॥

भवतु मोक्षस्य सर्वोत्कृष्टत्वम्, मोक्षो भविष्यति हि बद्धस्य तर्हि बद्धस्य मोक्षे - चलो मान लिया मोक्ष सबसे उत्कृष्ट है शास्त्रों में बताया है, हमको समझ में आ गया। मोक्ष होगा बद्ध का फिर बद्ध जीवात्मा का मोक्ष होने में-

अविशेषश्रोभयोः ॥६॥

अविशेषश्रोभयोः ॥६॥

(उभयोः) दृष्टादृष्टयोः साधनयोः (च) अपि (अविशेषः) अभेदोऽस्ति नास्ति भेदः साधनत्वाद् यथा यज्ञादिदृष्टं साधनं तथैव योगाभ्यासश्रवणादिकमदृष्टं साधनमुभयोः साधनसाम्यमस्ति हि, साधनसाम्याददृष्टसाधनादपि बद्धस्य विमोक्षो न भवेदिति पूर्वपक्षः। अनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये हरिप्रसादवैदिकवृत्तौ च सूत्रमिदन्यथाव्याख्यातं तत्र पूर्वापरसंगतेरभावोऽस्मद्भाष्ये पूर्वापरसांगत्यं प्रत्यक्षम् ॥६॥

अत्रोच्यते -

न स्वभावतो बद्धस्य मोक्षसाधनोपदेशविधिः ॥७॥

(स्वभावतः-बद्धस्य) स्वरूपतो बद्धस्य (मोक्षसाधनोपदेशविधिः-न) मोक्षसाधनोपदेशविधानं

सूत्रार्थ= दृष्ट और अदृष्ट दोनों साधनों एम साधनत्व समान होने से अष्टांग योग रूपी साधन से भी मोक्ष प्राप्ति नहीं हो पाएगी ।

भाष्य विस्तार = (उभयोः) दृष्टादृष्टयोः साधनयोः (च) अपि (अविशेषः) अभेदोऽस्ति नास्ति भेदः साधनत्वाद् यथा यज्ञादिदृष्टं साधनं तथैव योगाभ्यासश्रवणादिकमदृष्टं साधनमुभयोः साधनसाम्यमस्ति हि पूर्वपक्षी कहता है दोनों प्रकार के साधन आपने बताए दृष्ट और अदृष्ट। दृष्ट और अदृष्ट दोनों साधनों में भी कोई भेद नहीं है क्योंकि दोनों ही साधन हैं, जैसे यज्ञ आदि दृष्ट साधन हैं वैसे ही योगाभ्यास-श्रवण आदि अदृष्ट साधन हैं। दोनों ही साधन हैं। जब एक साधन से मोक्ष नहीं होता तो दूसरे से कैसे हो जाएगा।, साधनसाम्याददृष्टसाधनादपि बद्धस्य विमोक्षो न भवेदिति पूर्वपक्षः दोनों में साधन स्वरूप समान होने से अदृष्ट साधन अष्टांग योग से भी बद्ध आत्मा का मोक्ष नहीं हो पाएगा, ऐसा पूर्वपक्ष ने कहा। अनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये हरिप्रसादवैदिकवृत्तौ च सूत्रमिदन्यथाव्याख्यातं तत्र पूर्वापरसंगतेरभावोऽस्मद्भाष्ये पूर्वापरसांगत्यं प्रत्यक्षम् अनिरुद्ध वृत्ती में विज्ञानभिक्षु भाष्य में तथा हरिप्रसाद वैदिक वृत्ती में इस सूत्र की व्याख्या ठीक नहीं की गयी है इन तीनों की व्याख्या में पूर्वापर संगति नहीं है। हमारे भाष्य में पूर्वापर सूत्रों की संगति ठीक बैठ रही है ॥६॥

अत्रोच्यते -

न स्वभावतो बद्धस्य मोक्षसाधनोपदेशविधिः ॥७॥

सूत्रार्थ= यदि जीवात्मा स्वभाव से बद्ध होता तो उसके मोक्ष के साधनों का कथन शास्त्रों में नहीं होता।

भाष्य विस्तार = (स्वभावतः-बद्धस्य) स्वरूपतो बद्धस्य (मोक्षसाधनोपदेशविधिः-न) मोक्षसाधनोपदेशविधानं न भवति यदि स्वरूप से जीवात्मा बद्ध होता और उसकी मुक्ति असंभव होती तो फिर शास्त्रों में मोक्ष का उपदेश विधान न होता, अस्ति हि शास्त्रेषु मोक्षसाधनोपदेशः जबकि शास्त्रों में मोक्ष का उपदेश किया हुआ है “तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति” परमात्मा को जानकार व्यक्ति मृत्यु से पार हो जाता है।

सांख्यदर्शनम्-प्रथमोऽध्यायः

न भवति, अस्ति हि शास्त्रेषु मोक्षसाधनोपदेशः “तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति” (यजु ०३१.१८) “तमेव विदित्वा न बिभाय मृत्योः” (अथर्व ०१०.८.४४) “भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः । क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥” (मुण्डको ०२.२.८) “भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति” (केनो ०२.५) तस्माद् यदुक्तमुभयोर्दृष्टादृष्टयोः साधनयोर्विशेषो न बद्धस्य जीवात्मनोऽदृष्टसाधनाद् योगाभ्यासश्रवणाद्यनुष्ठानादपि मोक्षो न भविष्यतीति न युक्तं यतो जीवात्मा न स्वभावतो बद्धः किन्तु निमित्ततो बद्धः खलु सः, तथाभूतं बन्धननिमित्तमपनेतुं योगाभ्यासाद्यदृष्टसाधनं समर्थम् ॥७॥

स्वभावतो बद्धस्य मोक्षसाधनोपदेशविधौ का हानिः । अत्रोच्यते -

स्वभावस्यानपायित्वादननुष्ठानलक्षणमप्रामाण्यम् ॥८॥

(स्वभावस्य-अनपायित्वात्) स्वभावो भवत्यनपायी, यो यः स्वभावो यस्य यस्य द्रव्यस्य

(यजु ० ३१.१८) “तमेव विदित्वा न बिभाय मृत्योः” (अथर्व ०१०.८.४४) परमात्मा को जानकार जीवात्मा को मृत्यु से भय नहीं लगता “भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः । क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥” (मुण्डको ० २.२.८) जब हृदय की अविद्या की गांठ कट जाती है सारे संशय नष्ट हो जाते हैं, जो दूर से दूर है निकट से निकट है, उस परमात्मा को देख लेने पर वह सब कर्म बंधनों से मुक्त हो जाता है “भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति” (केनो ०२.५) जड़-चेतन सभी वस्तुओं में परमात्मा का चिंतन करके ध्यानीजन योगीजन इस शरीर को छोड़करके अमृत हो जाते हैं मरने के बाद मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं तस्माद् यदुक्तमुभयोर्दृष्टादृष्टयोः साधनयोर्विशेषो न, बद्धस्य जीवात्मनोऽदृष्टसाधनाद् योगाभ्यासश्रवणाद्यनुष्ठानादपि मोक्षो न भविष्यतीति न युक्तं इसलिए जो आपने अभी कहा था कि दोनों दृष्ट और अदृष्ट साधनों में समानता है क्योंकि दोनों ही साधन हैं, इससे बद्ध जीवात्मा का मोक्ष दृष्ट साधन और अदृष्ट योगाभ्यास श्रवण आदि के अनुष्ठान से मोक्ष नहीं होगा, यह युक्ति ठीक नहीं है यतो जीवात्मा न स्वभावतो बद्धः किन्तु निमित्ततो बद्धः खलु सः क्योंकि जीवात्मा स्वभाव से बंधन में नहीं है अपितु वह निमित्त से बद्ध है, तथाभूतं बन्धननिमित्तमपनेतुं योगाभ्यासाद्यदृष्टसाधनं समर्थम् उस तरह के बंधन के कारण को दूर करने के लिए योगाभ्यास आदि जो अदृष्ट साधन हैं वह समर्थ हैं बंधन के कारण को समाप्त करने में ॥७॥

स्वभावतो बद्धस्य मोक्षसाधनोपदेशविधौ का हानिः । अत्रोच्यते - जीवात्मा को स्वभाव से बद्ध मान लो उसके मोक्ष के उपदेश विधि होने से क्या हानी है? इस पर कहते हैं-

स्वभावस्यानपायित्वादननुष्ठानलक्षणमप्रामाण्यम् ॥८॥

सूत्रार्थ= कोई भी स्वभाव कभी भी उस द्रव्य को नहीं छोड़ता है, इसलिए ऐसा उपदेश अप्रामाणिक है जिसका आचरण ही न किया जा सके।

भाष्य विस्तार = (स्वभावस्य-अनपायित्वात्) स्वभावो भवत्यनपायी स्वभाव कभी हटता नहीं, यो यः स्वभावो यस्य यस्य द्रव्यस्य भवति स न तस्माद् द्रव्यादपैति जो जो स्वभाव जिस जिस द्रव्य का

भवति स न तस्माद् द्रव्यादपैति, न हि तद्द्रव्यं परित्यजति वा स्वभावस्य यावद्द्रव्यभावित्वात्, तस्मात् स्वभावतो बद्धस्य (अनुष्ठानलक्षणमप्रामाण्यम्) मोक्षविधानमननुष्ठानावकाशं सदप्रामाण्यं स्यादप्रामाण्यदोषमाप्नुयात् ॥ ८ ॥

तथा च -

नाशक्योपदेशविधिरूपदिष्टेऽप्यनुपदेशः ॥ ९ ॥

(अशक्योपदेशविधिः-न) अशक्यकार्यस्योपदेशविधानं नोचितं यतः (उपदिष्टे-अपि-अनुपदेशः) उपदिष्टे सत्यपि तस्यानुपदेश एवानुष्ठानासम्भवाद् भवति, तस्माज्जीवात्मा न स्वभावतो बद्धः किन्तु तस्य निमित्ततो बद्धस्य योगाभ्यासश्रवणाद्यदृष्टसाधनानुष्ठानाद् भविष्यति मोक्ष इति कथनं समीचीनं मोक्षोपदेशसार्थक्यं च ॥ ९ ॥

शंकयित्वा समाधत्ते सूत्रद्वयेन -

होता है उस उस द्रव्य को कभी छोड़ता नहीं है, न हि तद्द्रव्यं परित्यजति वा स्वभावस्य यावद्द्रव्यभावित्वात् वह स्वभाव उस द्रव्य को कभी नहीं छोड़ता, स्वभाव तब तक रहेगा जब तक द्रव्य रहेगा, तस्मात् स्वभावतो बद्धस्य (अनुष्ठानलक्षणमप्रामाण्यम्) मोक्षविधानमननुष्ठानावकाशं सदप्रामाण्यं स्यादप्रामाण्यदोषमाप्नुयात् इसलिए यदि जीवात्मा स्वभाव से बद्ध होता तो ऐसे स्वभाव से बद्ध जीवात्मा का मोक्ष का जो विधान किया गया शास्त्रों में, इसके आचरण के लिए अवकाश ही न रहता, फिर उसके अप्रामाणिक होने का दोष आ जाएगा ॥ ८ ॥

तथा च - और भी

नाशक्योपदेशविधिरूपदिष्टेऽप्यनुपदेशः ॥ ९ ॥

सूत्रार्थ= शास्त्र में असंभव कार्य का उपदेश नहीं होता, यदि कहीं असंभव कार्य का उपदेश हो तो भी व्यर्थ है।

भाष्य विस्तार = (अशक्योपदेशविधिः-न) अशक्यकार्यस्योपदेशविधानं नोचितं अशक्य=असंभव कार्य के उपदेश का विधान करना उचित नहीं है यतः क्योंकि (उपदिष्टे-अपि-अनुपदेशः) उपदिष्टे सत्यपि तस्यानुपदेश एवानुष्ठानासम्भवाद् भवति उपदेश करने पर भी वह अनुपदेश के तुल्य है उसका अनुष्ठान असंभव है, तस्माज्जीवात्मा न स्वभावतो बद्धः किन्तु तस्य निमित्ततो बद्धस्य योगाभ्यासश्रवणाद्यदृष्टसाधनानुष्ठानाद् भविष्यति मोक्ष इति कथनं समीचीनं मोक्षोपदेशसार्थक्यं च इसलिए जीवात्मा स्वभाव से बंधन में नहीं है किन्तु किसी कारण से बंधे हुए जीवात्मा का योगाभ्यास श्रवण आदि अदृष्ट साधन है उसका अनुष्ठान करने से मोक्ष हो जाएगा, ऐसा कथन उचित है। जो मोक्ष का उपदेश किया वह भी सार्थक हो जाएगा ॥ ९ ॥

शंकयित्वा समाधत्ते सूत्रद्वयेन - शंका करके समाधान करते हैं दो सूत्रों के द्वारा=

शुक्लपटवद्बीजवच्चेत् ॥ १० ॥

शुक्लपटवद्बीजवच्चेत् ॥ १० ॥

शक्त्युद्भवानुद्भवाभ्यां नाशक्योपदेशः ॥ ११ ॥

अनयोः सूत्रयोरेकवाक्यताऽस्ति -

(शुक्लपटवत्-बीजवत्-चेत्) शुक्लपटस्य यथा रागेण स्वाभाविक शुक्लत्वं हीयते बीजस्य वा यथाऽङ्कुरप्रादुर्भावादादितो वर्तमानं बीजस्वरूपं हीयते तथैव जीवात्मनोऽपि स्वाभाविको बन्धो हीयेतेति चेदुच्येत तर्हि (शक्त्युद्भवानुद्भवाभ्याम्) शुक्लपटे रागग्रहणस्य बीजे चाङ्कुरप्रादुर्भावस्य शक्तिरस्ति स्वाभाविकी, नह्यस्वाभाविकी केवलं तस्याशक्तेरुद्भवोऽनुद्भवश्च दृश्यते। शुक्लपटे रागग्रहणशक्तेः पूर्वतो विद्यमानत्वात् तस्या रागप्रदानेनोद्भवो जायते, इत्थमेव बीजेऽङ्कुरप्रादुर्भावशक्तेः

सूत्रार्थ= जैसे सफेद वस्त्र में सफेदी स्वाभाविक है और लाल रंग से रंगने से हट जाती है, जैसे बीज में बीज का रूप स्वाभाविक है और अंकुर फूटने पर वह नष्ट हो जाता है, ऐसे ही जीवात्मा का बंधन भी स्वाभाविक है। और वह भी किसी उपाय से नष्ट हो जाता है।

शक्त्युद्भवानुद्भवाभ्यां नाशक्योपदेशः ॥ ११ ॥

सूत्रार्थ= सिद्धांती कहता है- ऐसी बात नहीं है, वास्तव में वहाँ पर वस्त्र और बीज में शक्ति का उद्भव और अनुद्भव होता है, स्वाभाविक गुण नष्ट नहीं होता है। इसलिए शास्त्र में असम्भव बात का उपदेश नहीं है।

अनयोः सूत्रयोरेकवाक्यताऽस्ति - इन दोनों सूत्रों में परस्पर संबंध है-

भाष्य विस्तार = (शुक्लपटवत्-बीजवत्-चेत्) शुक्लपटस्य यथा रागेण स्वाभाविक शुक्लत्वं हीयते बीजस्य वा यथाऽङ्कुरप्रादुर्भावादादितो वर्तमानं बीजस्वरूपं हीयते सूत्र १० में पूर्वपक्षी कहता है- (सिद्धांती का ऐसा कहना की “स्वभाव तो छूटता नहीं”, ऐसा कहना ठीक नहीं है। संसार ऐसे बहुत देखने में आता है कि स्वभाव भी छूट जाते हैं) जैसे सफेद वस्त्र को रंग लाल अथवा हरे रंग से रंग देने पर उसका स्वाभाविक सफेद रंग हट जाता है और जैसे बीज का अंकुर फुट जाने से उसके जो सदा रहने वाला बीज स्वरूप था वह हट जाता है तथैव जीवात्मनोऽपि स्वाभाविको बन्धो हीयेतेति चेदुच्येत वैसे ही जीवात्मा का भी बंधन स्वाभाविक हट जाता है। यदि पूर्वपक्षी ऐसा कहते तो- तर्हि फिर (शक्त्युद्भवानुद्भवाभ्याम्) शुक्लपटे रागग्रहणस्य बीजे चाङ्कुरप्रादुर्भावस्य शक्तिरस्ति स्वाभाविकी फिर सफेद वस्त्र में रंग को ग्रहण करने की जो शक्ति है और बीज में अंकुर फूटने की जो शक्ति है वह स्वाभाविक शक्ति है, नह्यस्वाभाविकी केवलं तस्याशक्तेरुद्भवोऽनुद्भवश्च दृश्यते वह अस्वाभाविक नहीं है उसमें शक्ति के उद्भव और अनुद्भव दिखाई देता है। शुक्लपटे रागग्रहणशक्तेः पूर्वतो विद्यमानत्वात् तस्या रागप्रदानेनोद्भवो जायते पूर्व च राग प्रदानादनुद्भूता वर्तते सफेद वस्त्र में अन्य रंगों को ग्रहण करने की शक्ति पहले से विद्यमान होने से उस शक्ति का रंगाई करने से उद्भव हो जाता है, रंग जाने से पहले वह छुपी हुई थी, इत्थमेव बीजेऽङ्कुरप्रादुर्भावशक्तेः पूर्वतो विद्यमानत्वात् तस्या अंकुरप्रादुर्भावादुद्भवो भवति पूर्व च प्रादुर्भावादनुद्भूता वर्तते हि ऐसे ही बीज में अंकुर फूटने की जो शक्ति है वह पहले से विद्यमान होती है, अंकुर के फूटने से वह उद्भव हो जाती

[यह केवल निजी प्रयोग हेतु, अप्रकाशित, संशोधन अपेक्षित संग्रह है।]

पूर्वतोविद्यमानत्वात् तस्या अंकुरप्रादुर्भावादुद्भवो भवति पूर्व च प्रादुर्भावादनुद्भूता वर्तते हि, यद्येवं त स्यात् तर्हि शुक्लपटस्य शुक्लपटत्वं बीजस्य च बीजत्वं व्यर्थं भवेत् । तस्मात् (अशक्योपदेशः-न) शास्त्रेऽशक्योपदेशो न भवति । बन्धस्तु जीवात्मनो मोक्षोपदेशो नाशक्य इति सिद्धम् ।

अत्र “शक्त्युद्भवानुद्भवाभ्यां” उद्भवानुद्भवशब्दौ प्रयुक्तौ, उद्भवः प्रादुर्भाव आविर्भावो वा तथा अनुद्भवः-अप्रादुर्भावोऽनाविर्भावो वा’ इत्यर्थस्वारस्यं परित्यज्यखल्वनिरुद्धवृत्तौ ‘अनुद्भवः’ इत्यस्य ‘अभिभवः’ विज्ञानभिक्षुभाष्ये तस्यैव ‘तिरोभावः’ इति अर्थं विधाय दग्धबीजादप्यङ्कुरोत्पादो योगिसंकल्पाद् भवतीत्यप्रासंगिकी योगिसंकल्पना कृता सा खल्वयुक्तैव । नहि ‘अनुद्भवशब्द उद्भव शब्दस्य प्रतियोगी, उद्भवस्तु प्रादुर्भाव आविर्भावो वा भवति ‘अनुद्भवः’ इत्यस्य तत्प्रतियोगिनाऽर्थेन भवितव्यं न हि ‘अभिभवः’ ‘तिरोभावः’ वा तत्प्रतियोगी किन्तु प्रादुर्भूतस्यापि केनचिद्बाधकेन भवत्यभिभवस्तिरोभावो वा, अत्र शक्तेरुद्भवोऽनुद्भवः प्रतिपाद्यते । तस्मात् तयोः कल्पनाऽयुक्ता ॥

है और अंकुर फूटने से पहले वह शक्ति दबी हुई थी, यद्येवं त स्यात् तर्हि शुक्लपटस्य शुक्लपटत्वं बीजस्य च बीजत्वं व्यर्थं भवेत् यदि ऐसा न होता तो सफेद वस्त्र का सफेद रंग और बीज का बीजत्व व्यर्थ हो जाता । तस्मात् इसलिए (अशक्योपदेशः-न) शास्त्रेऽशक्योपदेशो न भवति इसलिए शास्त्र में असंभव बात का उपदेश नहीं होता । बन्धस्तु जीवात्मनो न स्वाभाविका किन्तु निमित्ततो अस्ति जीवात्मा का बंधन तो स्वाभाविक नहीं है किन्तु वह तो निमित्त से है । निमित्तों बद्धस्य जीवात्मनो मोक्षोपदेशो नाशक्य इति सिद्धम् निमित्त से बंधे जीवात्मा का ही मोक्ष का उपदेश ठीक है, अशक्य=असंभव नहीं है ।

अत्र “शक्त्युद्भवानुद्भवाभ्यां” उद्भवानुद्भवशब्दौ प्रयुक्तौ स्वामी ब्रह्म मुनिजी कहते हैं कि- इस सूत्र में “शक्त्युद्भवानुद्भवाभ्यां” शक्ति का उद्भव और अनुद्भव ये दो शब्द हैं, उद्भवः प्रादुर्भाव आविर्भावो वा उद्भव का अर्थ है प्रादुर्भाव होना, आविर्भाव होना या प्रकट होना तथा अनुद्भवः-अप्रादुर्भावोऽनाविर्भावो वा’ और अनुद्भव का अर्थ प्रादुर्भाव न होना अप्रकट होना ये अर्थ होने चाहिए इत्यर्थस्वारस्यं परित्यज्यखल्वनिरुद्धवृत्तौ ‘अनुद्भवः’ इत्यस्य ‘अभिभवः’ विज्ञानभिक्षुभाष्ये तस्यैव ‘तिरोभावः’ इति अर्थं विधाय दग्धबीजादप्यङ्कुरोत्पादो योगिसंकल्पाद् भवतीत्यप्रासंगिकी योगिसंकल्पना कृता सा खल्वयुक्तैव इस अर्थ कि सुंदरता को छोड़कर अनिरुद्ध वृत्ति में अनुद्भव का अर्थ किया “अभिभव” (दब जाना) और विज्ञानभिक्षु भाष्य में उसका “तिरोभाव” (छुप जाना) अर्थ किया । इस अर्थ से जले हुए बीज से अंकुर कि उत्पत्ति स्वीकार की । इस प्रकार से योगी संकल्पना करके अप्रासंगिक अर्थ किया जो कि ठीक नहीं है । ‘अनुद्भवशब्द उद्भव शब्दस्य प्रतियोगी अनुद्भव शब्द उद्भव शब्द का प्रतिपक्षी है, उद्भवस्तु प्रादुर्भाव आविर्भावो वा भवति उद्भव का अर्थ होता है प्रादुर्भाव या आविर्भाव हो जाना ‘अनुद्भवः’ इत्यस्य तत्प्रतियोगिनाऽर्थेन भवितव्यं न हि ‘अभिभवः’ ‘तिरोभावः’ वा तत्प्रतियोगी और अनुद्भव इसका प्रतियोगी शब्द होना चाहिए क्योंकि अभिभाव और तिरोभाव ये उसके प्रतियोगी नहीं है किन्तु प्रादुर्भूतस्यापि केनचिद्बाधकेन भवत्यभिभवस्तिरोभावो वा क्योंकि जो पूर्व में प्रकट हो चुकी है यदि वह किसी बाधक कारण से छूप जाती है, उसको तिरोभाव या अभिभाव कहते हैं, अत्र शक्तेरुद्भवोऽनुद्भवः प्रतिपाद्यते और जबकि इस सूत्र में तो शक्ति का उद्भव और अनुद्भव बताया गया है । तस्मात् तयोः कल्पनाऽयुक्ता इसलिए उन दोनों ने जो अर्थ कल्पना कि है वह अयुक्त है ॥ १०-११ ॥

१०- ११॥

अस्तु तर्हि निमित्ततो बद्धस्य जीवात्मनो मोक्षोपदेशः कस्मान्निमित्तात् खलु स बद्ध इति युक्तिप्रयुक्तिभिर्मीमांस्यते, सैषा मीमांसा कतिपयैः सूत्रैः प्रवर्त्यते । तत्र प्रथमं कालविषये -

न कालयोगतो व्यापिनो नित्यस्य सर्वसम्बन्धात् ॥ १२ ॥

(कालयोगतः-न) कालसम्बन्धात् स जीवात्मा न बद्धः कालनिमित्तको बन्धो न जीवात्मनः । यतः (व्यापिनः-नित्यस्य सर्वसम्बन्धात्) कालस्तु व्यापी नित्यश्च स च सर्वैः सदा सम्बध्यते, व्यापिनः सर्वसम्बन्धवतः पदार्थात् खलु विमोक्षानुपपत्तिः । नित्यश्च स, न हि सोऽनित्यो यत्कदाचित् तेन सह सम्बन्धो भवति कदाचिन्नेत्यपि न । तस्मात् कालनिमित्ततो बन्धो न यतस्ततो तां विमोक्षानुपपत्तेः ॥ १२ ॥

देशविषये -

अस्तु तर्हि निमित्ततो बद्धस्य जीवात्मनो मोक्षोपदेशः कस्मान्निमित्तात् खलु स बद्ध इति युक्तिप्रयुक्तिभिर्मीमांस्यते पूर्वपक्षी कहता है चलो मान लिया कि जीवात्मा इसी कारण से बंधन में है , वह किसी कारण से बंधन में आया उसके लिए मोक्ष का उपदेश होना चाहिए उसका मोक्ष होना चाहिए कारण हट जाएगा तो मोक्ष हो जाएगा इसका । अब यहाँ युक्ति प्रयुक्तियों के माध्यम से विचार किया जाएगा, सैषा मीमांसा कतिपयैः सूत्रैः प्रवर्त्यते इस प्रकार से जो जानने कि इच्छा है विचार है वह अगले कुछ सूत्रों से की जाती है । तत्र प्रथमं कालविषये - इस विषय में सबसे पहले काल के संदर्भ में विचार करते हैं-

न कालयोगतो व्यापिनो नित्यस्य सर्वसम्बन्धात् ॥ १२ ॥

सूत्रार्थ= जीवात्मा काल के संबंध से बंधा हुआ नहीं है क्योंकि जो व्यापक और नित्य पदार्थ होता है उसके सबके साथ सदा संबंध बना ही रहता है, इसलिए काल बंधन का कारण नहीं है ।

भाष्य विस्तार = (कालयोगतः-न) कालसम्बन्धात् स जीवात्मा न बद्धः कालनिमित्तको बन्धो न जीवात्मनः काल के कारण से वह जीवात्मा बंधा नहीं है । यतः (व्यापिनः-नित्यस्य सर्वसम्बन्धात्) कालस्तु व्यापी नित्यश्च स च सर्वैः सदा सम्बध्यते क्योंकि काल तो सर्वव्यापक है और नित्य भी है वह प्रत्येक वस्तु के साथ सदा जुड़ा रहता है, व्यापिनः सर्वसम्बन्धवतः पदार्थात् खलु विमोक्षानुपपत्तिः व्याप्ति सर्व संबंध वाले सब पदार्थों के साथ संबंध रखता है जो ऐसे पदार्थ से छूटना असंभव है । नित्यश्च स वह काल नित्य भी है, न हि सोऽनित्यो यत्कदाचित् तेन सह सम्बन्धो भवति कदाचिन्नेत्यपि न काल नित्य है ऐसा नहीं है कि कभी काल से संबंध हो जावे और कभी छूट जावे यदि छूट गया तो काल नहीं रहेगा या आत्मा नहीं रहेगा । तस्मात् कालनिमित्ततो बन्धो न यतस्ततो विमोक्षानुपपत्तेः इसलिए काल के निमित्त से जीवात्मा बंधा हुआ नहीं है, क्योंकि काल से मोक्ष होना असंभव है ॥ १२ ॥

देशविषये -

न देशयोगतोऽप्यस्मात् ॥ १३ ॥

सूत्रार्थ= जीवात्मा देश के कारण से बंधा हो ऐसी बात भी नहीं है, क्योंकि स्थान भी सर्वव्यापक है ।

[यह केवल निजी प्रयोग हेतु, अप्रकाशित, संशोधन अपेक्षित संग्रह है ।]

न देशयोगतोऽप्यस्मात् ॥ १३ ॥

(देशयोगतः-अपि न) देशोऽत्राकाशदेशः। आकाशरूपदेशसम्बन्धादपि न जीवात्मा बद्धो यदाकाशदेशात् तस्य विमोक्षोपदेशः स्यात्। कुतः (अस्मात्) पूर्वोक्तादेव हेतोर्व्यापिनो नित्यस्य ह्याकाशदेशस्य, न हि व्यापिनो नित्यात् स्याद् विमोक्षः कदाचित् ॥ १३ ॥

अवस्थाविषये -

नावस्थातो देहधर्मत्वात् तस्याः ॥ १४ ॥

(अवस्थातः-न) बाल्ययौवनवार्धक्यावस्थातो न जीवात्मा बद्धः, कुतः (तस्याः-देहधर्मत्वात्) तस्या बाल्यादिरूपाया अवस्थायाः खलु देहधर्मत्वात्, देहे हि बाल्याद्यवस्था परिणामोऽवतिष्ठते देहश्च प्राप्यते बन्धानन्तरम्, तस्मात् तथाकृत्वापि मोक्षोपदेशोऽनवसरः ॥ १४ ॥

और नित्य है।

भाष्य विस्तार = (देशयोगतः-अपि न) देशोऽत्राकाशदेशः देश शब्द से यहाँ पर अभिप्राय आकाश से है। आकाशरूपदेशसम्बन्धादपि न जीवात्मा बद्धो यदाकाशदेशात् तस्य विमोक्षोपदेशः स्यात् आकाश रूपी देश के संबंध से भी जीवात्मा बंधा हुआ नहीं है, कि आकाश देश से उसके मोक्ष का उपदेश किया गया हो। कुतः (अस्मात्) पूर्वोक्तादेव हेतोर्व्यापिनो नित्यस्य ह्याकाशदेशस्य क्यों- आकाशरूपी जो स्थान है वह भी तो व्यापी और नित्य है, न हि व्यापिनो नित्यात् स्याद् विमोक्षः कदाचित् कभी भी जो व्यापक, नित्य द्रव्य है, उससे मोक्ष कभी भी हो ही नहीं सकता ॥ १३ ॥

अवस्थाविषये -

नावस्थातो देहधर्मत्वात् तस्याः ॥ १४ ॥

सूत्रार्थ= जो शरीर में बाल्य युवा वृद्ध अवस्था है वह बंधन का कारण नहीं, क्योंकि अवस्था परिवर्तन तो देह का धर्म है।

भाष्य विस्तार = (अवस्थातः-न) बाल्ययौवनवार्धक्यावस्थातो न जीवात्मा बद्धः बाल्य, यौवन, वृद्ध अवस्था से भी जीवात्मा बंधा नहीं है, कुतः क्यों (तस्याः-देहधर्मत्वात्) तस्या बाल्यादिरूपाया अवस्थायाः खलु देहधर्मत्वात् बाल्य यौवन रूप आदि अवस्था तो शरीर के धर्म हैं, देहे हि बाल्याद्यवस्था परिणामोऽवतिष्ठते शरीर में ही बाल्य आदि अवस्थाओं का परिवर्तन होता रहता है देहश्च प्राप्यते बन्धानन्तरम् देह मिला बंधन के बाद और अवस्था मिली शरीर के बाद, तस्मात् तथाकृत्वापि मोक्षोपदेशोऽनवसरः इसलिए ऐसा मानकर के भी इनसे छूटने का उपदेश नहीं हो सकता ॥ १४ ॥

पुनश्च -

असंगोऽयं पुरुष इति ॥ १५ ॥

सूत्रार्थ= ये पुरुष= जीवात्मा असंग है, अवस्था परिणाम रूप देह धर्म से असक्त अर्थात् प्रथक होता है ॥

[यह केवल निजी प्रयोग हेतु, अप्रकाशित, संशोधन अपेक्षित संग्रह है।]

पुनश्च -

असंगोऽयं पुरुष इति ॥ १५ ॥

(अयं पुरुषः-असंगः-इति) अयं खलु देहाद् भिन्न आत्मा, असंगो देहधर्मादवस्थापरिणामादसंसक्त इति हेतोश्च, तथा च “असंगो ह्ययं पुरुषः (बृह ० उ ०४.३.१५) इति साक्षाच्छ्रुतौ पठ्यते ॥ १५ ॥

कालादियोगान्न बद्धो न चावस्थारूपाद्देहधर्माद् बद्धस्तर्हि कर्मणा बद्धः स्यात् । अत्रोच्यते -
न कर्मणाऽन्यधर्मत्वादतिप्रसक्तेश्च ॥ १६ ॥

(कर्मणा न) अत्र कर्मशब्देन करणवृत्तिर्गृह्यते । कर्म कार्य व्यवहारः करणव्यवहारो दानादानभाषणादिव्यवहारः । तेन कर्मणा न जीवात्मा बद्धः । यतः (अन्य-धर्मत्वात्)

भाष्य विस्तार = (अयं पुरुषः-असंगः-इति) अयं खलु देहाद् भिन्न आत्मा ये जो आत्मा है यह शरीर से भिन्न है, अस ३० देहधर्मादवस्थापरिणामादसंसक्त इति हेतोश्च जीवात्मा इस देह के जो परिणाम है उससे वह असंसक्त है और इस कारण से, तथा च “असंगो ह्ययं पुरुषः (बृह ० उ ०४.३.१५) इति साक्षाच्छ्रुतौ पठ्यते और श्रुति में साक्षात् पाठ पढ़ने में आत्मा है कि “जीवात्मा किसी से घुलता मिलता नहीं” ॥ १५ ॥

कालादियोगान्न बद्धो न चावस्थारूपाद्देहधर्माद् बद्धस्तर्हि कर्मणा बद्धः स्यात् । अत्रोच्यते -
काल आकाश आदि से यह बंधा नहीं है ये अवस्था आदि देह के धर्म हैं, तो यह शरीर के कर्मों से बंधा हो ऐसा माने तो । इस पर कहते हैं-

न कर्मणाऽन्यधर्मत्वादतिप्रसक्तेश्च ॥ १६ ॥

सूत्रार्थ= इंद्रियों व अहंकार आदि से किए जाने वाले वर्तमान कर्मों से भी जीवात्मा बंधा हुआ नहीं है, ये कर्म अहंकार के धर्म हैं और इस पक्ष में अतिक्रमण करने का दोष भी आएगा ।

भाष्य विस्तार = (कर्मणा न) अत्र कर्मशब्देन करणवृत्तिर्गृह्यते यहाँ इस सूत्र में जो कर्म शब्द का प्रयोग हुआ उस कर्म शब्द से करणों की वृत्ति ग्रहण करनी चाहिए । कर्म कार्य व्यवहारः करणव्यवहारो दानादानभाषणादिव्यवहारः कर्म शब्द से कार्य व्यवहार देना-लेना भाषण आदि व्यवहार है । तेन कर्मणा न जीवात्मा बद्धः शरीर इंद्रियों की इन क्रियाओं के कारण भी जीवात्मा बंधा हुआ नहीं है । यतः (अन्य-धर्मत्वात्) पुरुषादन्यस्याहंकारस्य तदधीनेन्द्रियाणां च धर्मो हि कर्म तस्मात् क्योंकि (जीवात्मा जो शरीर इंद्रियों तथा अहंकार आदि से कार्य करता है) अहंकार पुरुष से भिन्न वस्तु है उसके अधीन इंद्रियों का कार्य है और ये दोनों पुरुष के अधीन हैं जबकि उससे भिन्न हैं । तथा (अतिप्रसक्तेः-च) अतिप्रसंगदोषादपि, अन्यधर्मेण बन्धस्वीकारे मुक्तानामपि बन्धप्रसंग आपत्स्यते तत्रान्यधर्मस्य बन्धहेतुत्वसामान्यात् इसमें अति प्रसंग दोष भी आएगा, (कर्म करेंगे बद्ध जीवात्माएँ और भोगेंगे मुक्ति वाले) इससे मुक्तों का भी बन्ध प्रसंग आजाएगा, क्योंकि दोनों बातों में समानता ये रहेगी जैसे शरीर इंद्रिय कर्म करे और बंधे जीवात्मा ॥ १६ ॥

सांख्यदर्शनम्-प्रथमोऽध्यायः

पुरुषादन्यस्याअहंकारस्य तदधीनेन्द्रियाणां च धर्मो हि कर्म तस्मात् । तथा (अतिप्रसक्तेः-च) अतिप्रसंगदोषादपि, अन्यधर्मेण बन्धस्वीकारे मुक्तानामपि बन्धप्रसंग आपत्स्यते तत्रान्यधर्मस्य बन्धहेतुत्वसामान्यात् ॥ १६ ॥

अथान्योऽयमपि दोषोऽन्यधर्मस्य बन्धहेतुत्वे किलोपतिष्ठते -

विचित्रभोगानुपपत्तिरन्यधर्मत्वे ॥ १७ ॥

(अन्यधर्मत्वे) अन्यधर्मस्य फलहेतुत्वस्वीकारे (विचित्रभोगानुपपत्तिः) संसारे विविधभोगानामयुक्तता स्यात् । दृश्यन्ते खलु केचिद्बहुसुखिनः केचनल्पसुखिनः केचित्सुखहीनाः केचिन्महादुःखिनस्तथा केचित्पूर्णांगाः केचन विकलांगा गलितांगाश्चेत्येते विविधभोगा नोपपद्येरन् यतोऽन्यस्य कृतकर्मणः फलमन्यश्चेद् भुञ्जीत ॥ १७ ॥

प्रकृतिनिबन्धनाच्चेन्न तस्या अपि पारतन्त्र्यम् ॥ १८ ॥

अथान्योऽयमपि दोषोऽन्यधर्मस्य बन्धहेतुत्वे किलोपतिष्ठते - अन्य के धर्म से अन्य बन्ध जावे ऐसा माने पर निश्चय से एक और दोष आजाएगा -

विचित्रभोगानुपपत्तिरन्यधर्मत्वे ॥ १७ ॥

सूत्रार्थ= एक के कर्म का फल यदि दूसरे को मिलने लगे तो ऐसा मानने पर संसार में जो कर्म फलों कि भिन्नता है वीएच नहीं होनी चाहिए ।

भाष्य विस्तार = (अन्यधर्मत्वे) अन्यधर्मस्य फलहेतुत्वस्वीकारे (विचित्रभोगानुपपत्तिः) संसारे विविधभोगानामयुक्तता स्यात् यदि ये माना जाए अन्य के धर्म का फल अन्य भोगे एक व्यक्ति के फल का कारण दूसरे व्यक्ति का कर्म माना जाए तो संसार में जो विविध प्रकार के भोग प्राप्त हो रहे हैं ये अयुक्त अनुचित हो जाएगा । दृश्यन्ते खलु केचिद्बहुसुखिनः केचनल्पसुखिनः केचित्सुखहीनाः केचिन्महादुःखिनस्तथा केचित्पूर्णांगाः केचन विकलांगा गलितांगाश्चेत्येते विविधभोगा नोपपद्येरन् यतोऽन्यस्य कृतकर्मणः फलमन्यश्चेद् भुञ्जीत संसार में यह देखा जाता है कि कुछ लोग तो बहुत सुखी दिखते हैं, कुछ कम सुख वाले होते हैं, कुछ बहुत दुःखी होते हैं, कुछ पूर्णांग होते हैं कुछ विकलांग होते हैं कुछ गलितांग होते हैं, इस प्रकार के जो अलग अलग भोग होते हैं ये फिर सिद्ध नहीं हो सकते, यदि एक के कर्म से सभी को फल मिल जाए तो । यदि एक आत्मा के कर्म का फल अन्य भोग ले तो समस्या आजाएगी ॥ १७ ॥

प्रकृतिनिबन्धनाच्चेन्न तस्या अपि पारतन्त्र्यम् ॥ १८ ॥

सूत्रार्थ= यदि कोई कहे कि प्रकृति जीवात्मा को बांध देती है । तो भी ठीक नहीं है, क्योंकि प्रकृति परतंत्र है ।

भाष्य विस्तार = (प्रकृतिनिबन्धनात्-चेत्-न) प्रकृतिरेव पुरुषं निबन्धनातीति चेत् कल्प्येत तदपि न युक्तं यतः पूर्वपक्षी कहता है कि- प्रकृति ने ही पुरुष को बान्ध लिया हो, ऐसा कल्पना करना भी ठीक नहीं है । क्योंकि (तस्याः-अपि पारतन्त्र्यम्) तस्याः प्रकृतेरपि पारतन्त्र्यमस्ति वह प्रकृति पराधीन है, न

सांख्यदर्शनम्-प्रथमोऽध्यायः

(प्रकृतिनिबन्धनात्-चेत्-न) प्रकृतिरेव पुरुषं निबध्नातीति चेत् कल्प्येत तदपि न युक्तं यतः
(तस्याः-अपि पारतन्त्र्यम्) तस्याः प्रकृतेरपि पारतन्त्र्यमस्ति, न हि प्रकृतिः स्वतन्त्रा जडत्वात् सा तु परतन्त्रा
पुरुषतन्त्रा ॥ १८ ॥

न नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य तद्योगस्तद्योगादृते ॥ १९ ॥

(नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य तद्योगः-न) नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाववतः पुरुषस्य प्रकृतियोगो
न सम्भाव्येत । ‘तद्योगः’ इत्यत्र तच्छब्देन पूर्वसूत्रप्रकृतिरभिप्रेयते । एवं पूर्वसूत्रे प्रकृतेः पुरुषेण सह
योगोनिराकृतस्तस्याः परतन्त्रत्वात् पुनः पुरुषस्य स्वातन्त्र्यं सत्यपि सूत्रेऽस्मिन् तस्य प्रकृत्या सह योगः
प्रत्याख्यातस्तस्य नित्यशुद्धबुद्ध-मुक्तस्वभाववत्त्वात् तस्य प्रकृतियोगं प्रति खलूपेक्षा । तदा (तद्योगात्-

हि प्रकृतिः स्वतन्त्रा जडत्वात् सा तु परतन्त्रा पुरुषतन्त्रा प्रकृति स्वतंत्र नहीं है, उसके जड़ होने से वह तो
दूसरे के अधीन है पुरुष के आधीन है ॥ १८ ॥

न नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य तद्योगस्तद्योगादृते ॥ १९ ॥

सूत्रार्थ= सदा नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव वाले जीव का प्राकृत के साथ स्वयं जाकर बंधना नहीं हो
सकता, इन दोनों के अतिरिक्त कोई अन्य ही कारण बंधन का हो सकता है ।

भाष्य विस्तार = (नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य तद्योगः-न) नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाववतः
पुरुषस्य प्रकृतियोगो न सम्भाव्येत जीवात्मा नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव वाला है, ऐसे जीवात्मा का प्रकृति
से जाकर स्वयं बंधना भी संभव नहीं है । ‘तद्योगः’ इत्यत्र तच्छब्देन पूर्वसूत्रप्रकृतिरभिप्रेयते इस सूत्र में जो
‘‘तद्योग’’ शब्द आया है, इसमें जो ‘तद’ शब्द है उससे पूर्व सूत्र में चली आ रही प्रकृति को कहना अभीष्ट है ।
एवं पूर्वसूत्रे प्रकृतेः पुरुषेण सह योगोनिराकृतस्तस्याः परतन्त्रत्वात् इस प्रकार से पूर्व सूत्र में प्रकृति का
पुरुष के साथ योग का खंडन किया की प्रकृति आए और पुरुष को बांध ले ऐसा नहीं है, क्योंकि वह जड़ है
और परतंत्र है पुनः पुरुषस्य स्वातन्त्र्यं सत्यपि सूत्रेऽस्मिन् तस्य प्रकृत्या सह योगः प्रत्याख्यातस्तस्य
नित्यशुद्धबुद्ध-मुक्तस्वभाववत्त्वात् तस्य प्रकृतियोगं प्रति खलूपेक्षा फिर पुरुष के स्वतंत्र होने पर भी इस
सूत्र में उसका प्रकृति के साथ योग का खंडन किया है, वह तो शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव वाला है, वह तो प्रकृति
की उपेक्षा करता है । तदा (तद्योगात्-त्रहो) तयोरुभयोः प्रकृतिपुरुषयोर्योगादृते पुनर्बन्धकारणं यत्कल्पयितुं
शक्यते तद्विचार्यतेऽग्रिमसूत्रजातेन उन दोनों के अर्थात् प्रकृति और पुरुष के योग के बिना इसके अतिरिक्त
जो भी कारण बंधन का कल्पित किया जा सकता हो, उसके अगले सूत्र में और विचार करेंगे ।

सूत्रेऽत्र ‘तद्योगः’ शब्दस्यार्थोऽनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये स्वामिहरिप्रसादभाष्ये च ‘बन्धयोगः’
कृतः इस सूत्र में ‘‘तद्योग’’ इस शब्द का अर्थ अनिरुद्धवृत्ति में और विज्ञानभिक्षु भाष्य में और स्वामी हरिप्रसाद
भाष्य में तीनों में ‘बन्धयोग’ ऐसा अर्थ किया है, परन्तु तत्र तथार्थेन न भवितव्यं परंतु यहाँ ऐसा अर्थ नहीं होना
चाहिए यतः पूर्वसूत्रे पुरुषेण सह सम्बन्धाय प्रकृतिरसमर्था परतन्त्रत्वादुक्ताऽत्र क्योंकि पूर्व सूत्र में पुरुष के
साथ संबंध जोड़ने के लिए प्रकृति को असमर्थ बताया था सूत्रे प्रकृत्या सह सम्बन्धाय पुरुषः प्रकृतिवत्परतन्त्रस्तु

त्रह्ते) तयोरुभयोः प्रकृतिपुरुषयोर्योगादृते पुनर्बन्धकारणं यत्कल्पयितुं शक्यते तद्विचार्यतेऽग्रिमसूत्रजातेन । सूत्रेऽत्र 'तद्योगः' शब्दस्यार्थोऽनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये स्वामिहरिप्रसादभाष्ये च 'बन्धयोगः' कृतः, परन्त्वत्र तथार्थेन न भवितव्यं यतः पूर्वसूत्रे पुरुषेण सह सम्बन्धाय प्रकृतिरसमर्था परतन्त्रत्वादुक्ताऽत्र सूत्रे प्रकृत्या सह सम्बन्धाय पुरुषः प्रकृतिवत्परतन्त्रस्तु न किन्तु स्वतन्त्रः सन्नपि स नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाववत्त्वादनपेक्षस्तथोपेक्षावृत्तिकस्तस्मात् तस्य प्रकृतियोगो न सम्भावनीयः । अत एवात्र 'तद्योगः' शब्दस्यार्थः प्रकृतियोग एव सत्यार्थोऽन्यथा 'नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य इति कथनवैयर्थ्यं स्यात् पुरुषस्य 'नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावत्वं तस्य तद्योगनिषेधे प्रकृतियोगनिषेधे हेतुप्रदर्शनम् । पुनश्च 'तद्योगादृते' इत्यस्यार्थोऽपि तत्रोभयत्रानिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये च 'प्रकृतियोगादृते' कृतः सोऽप्ययुक्त एव, पूर्वोक्तं हेतुद्वयमत्रापि यतः, कथं हि स्यात् प्रकृतियोगः प्रकृतिस्तु परतन्त्रा तदद्वारा निषिद्ध एव, पुरुषद्वारा स्यात् प्रकृति योगस्तदपि न सोऽपि नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाववान् सन्ननपेक्षः

न किन्तु स्वतन्त्रः सन्नपि स नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाववत्त्वादनपेक्षस्तथोपेक्षावृत्तिकस्तस्मात् तस्य प्रकृतियोगो न सम्भावनीयः इस सूत्र में प्रकृति के साथ संबंध जोड़ने के लिए पुरुष अर्थात् जीवात्मा प्रकृति के समान परतन्त्र तो नहीं है, किन्तु स्वतन्त्र होता हुआ भी वह जीवात्मा नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव वाला होने से उसे कोई अपेक्षा नहीं है, और वह उपेक्षा वृत्ति वाला है। इसलिए वह प्रकृति में जाकर बंधे ऐसी कोई संभावना नहीं है। अत एवात्र 'तद्योगः' शब्दस्यार्थः प्रकृतियोग एव सत्यार्थोऽन्यथा अतः "तद्योग" शब्द का यहाँ सही अर्थ है प्रकृति योग, यही अर्थ ठीक है । 'नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य इति कथनवैयर्थ्यं स्यात् अन्यथा जीवात्मा को नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वभाव वाला कथन व्यर्थ हो जाएगा पुरुषस्य 'नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावत्वं तस्य तद्योगनिषेधे प्रकृतियोगनिषेधे हेतुप्रदर्शनम् इस सूत्र में जीवात्मा प्रकृति के साथ जाके स्वयं नहीं बंधेगा, इस विषय में हेतु बताया है कि वह नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव वाला है इस प्रकार से इस हेतु का प्रदर्शन किया । पुनश्च 'तद्योगादृते' इत्यस्यार्थोऽपि तत्रोभयत्रानिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये च 'प्रकृतियोगादृते' कृतः सोऽप्ययुक्त एव फिर स्वामी ब्रह्ममुनि जी कहते हैं- ये जो 'तद्योगादृते' इस शब्द का अर्थ उन दोनों भाष्यों में अनिरुद्धवृत्ति और विज्ञानभिक्षु भाष्य में 'प्रकृतियोगादृते' ऐसा अर्थ किया है, वह भी ठीक नहीं है, पूर्वोक्तं हेतुद्वयमत्रापि यतः क्योंकि यहाँ भी पहले वाले हेतु लागू होते हैं, कथं हि स्यात् प्रकृतियोगः प्रकृतिस्तु परतन्त्रा तदद्वारा निषिद्ध एव प्रकृति योग कैसे होगा क्योंकि वह तो परतन्त्र है, इसलिए प्रकृति के द्वारा योग तो पहले ही निषेध किया था, पुरुषद्वारा स्यात् प्रकृति योगस्तदपि न सोऽपि नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाववान् सन्ननपेक्षः तदद्वाराऽपि प्रकृतियोगो निषिद्धः दूसरी कल्पना की- कि पुरुष के द्वारा प्रकृति योग किया जा सकता है, वह भी ठीक नहीं है । क्योंकि जीवात्मा नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव वाला होता हुआ उसको कोई अपेक्षा नहीं जीवात्मा के द्वारा भी प्रकृति योग निषिद्ध है। एवमुभयद्वारा निषिद्धे योग एकपक्षयोगो न सम्भावनीयः इसीलिए जब दोनों नहीं जुड़ेंगे तब फिर एक के लिए कहना ठीक नहीं है, सम्भावनीयस्तूभयाधीनः स स्वस्वामिभावरूपः शास्त्रान्ते स्वीकृतोऽस्ति दोनों के अधीन जो संबंध है वह स्वस्वामीभाव सम्बंध है इसकी संभावना तो कर सकते हैं जो कि शास्त्र के अंत में कहा गया है। तथा च तद्योगे भिन्नभिन्नहेतूनामयोग्यत्वं प्रदर्शयान्ते पञ्चपञ्चाशत्तमे सूत्रे तद्योगस्य प्रकृतिपुरुषयोगस्य

सांख्यदर्शनम्-प्रथमोऽध्यायः

तद्द्वाराऽपि प्रकृतियोगो निषिद्धः । एवमुभयद्वारा निषिद्धे योग एकपक्षयोगो न सम्भावनीयः, सम्भावनीयस्तूभयाधीनः स स्वस्वामिभावरूपः शास्त्रान्ते स्वीकृतोऽस्ति । तथा च तद्योगे भिन्नभिन्नहेतूनामयोग्यत्वं प्रदर्शयन्ते पञ्चपञ्चाशत्तमे सूत्रे तद्योगस्य प्रकृतिपुरुषयोगस्य कारणमुक्तमस्त्यविवेकः “तद्योगोऽप्यविवेकान्न समानत्वम्” ५५ प्रकृतिपुरुषयोर्योगस्य तयोः स्वस्वामिभावस्य कारणमाविवेकः प्रदर्शितः, यथा ह्यत्र तद्योगस्य कारणमाविवेकः प्रदर्शितस्तथैव शास्त्रान्ते स्वस्वामिभावस्य कारणमाविवेकः प्रादर्शयदाचार्यः “अविवेकनिमित्तो वा पञ्चशिखः” ६.६८ तस्मादनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये तथा स्वामिहरिप्रसादवृत्तौ च नितान्तमयुक्तमुक्तम् ॥ १९ ॥

अथ तद्योगस्य प्रकृतिपुरुषयोगस्यान्यत्कारणं यत्कल्पयितुं शक्यते तद्विचार्यते -

नाविद्यातोऽप्यवस्तुना बन्धायोगात् ॥ २० ॥

(अविद्यातः-अपि न) विद्याया अभावोऽविद्या तथा खल्वभावरूपयाऽपि जीवात्मनो बन्धः कल्पयितुं न युज्यते । यतः (अयस्तुना बन्धायोगात्) तथाभूतयाऽवस्तु- रूपयाऽवस्तुरूपेणाभावेन

कारणमुक्तमस्त्यविवेकः इसी प्रकार से उन दोनों के योग में अलग अलग कारणों कि अयोग्यता दिखलाकरके इस सम्पूर्ण प्रसंग के अंत में ५५ वे सूत्र में उन दोनों के योग का कारण अविवेक को बताया गया है “तद्योगोऽप्यविवेकान्न समानत्वम्” ५५ प्रकृतिपुरुषयोर्योगस्य तयोः स्वस्वामिभावस्य कारणमाविवेकः प्रदर्शितः प्रकृति और पुरुष के योग का उन दोनों के स्वस्वामी भाव सम्बंध का जो कारण है वह इस ५५ वे सूत्र में बताया ‘अविवेक’, यथा ह्यत्र तद्योगस्य कारणमाविवेकः प्रदर्शितस्तथैव शास्त्रान्ते स्वस्वामिभावस्य कारणमाविवेकः प्रादर्शयदाचार्यः जैसे इस सूत्र में दोनों के योग का कारण अविवेक बताया गया है वैसे ही शास्त्र के अंत में स्वस्वामी भाव के कारण को आचार्य ने अविवेक कहा “अविवेकनिमित्तो वा पञ्चशिखः” ६.६८ तस्मादनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये तथा स्वामिहरिप्रसादवृत्तौ च नितान्तमयुक्तमुक्तम् पंचशिख आचार्य ने अविवेक को ही कारण माना है, इसलिए अनिरुद्ध वृत्ति में विज्ञानभिक्षु भाष्य में और स्वामी हरी प्रसाद वृत्ति में ये जो भाष्य किया वह नितान्त अयुक्त है ॥ १९ ॥

अथ तद्योगस्य प्रकृतिपुरुषयोगस्यान्यत्कारणं यत्कल्पयितुं शक्यते तद्विचार्यते-प्रकृति और पुरुष के योग का बंधन का और जो भी कोई कारण कल्पित किया जा सकता है, उस पर विचार करेंगे-

नाविद्यातोऽप्यवस्तुना बन्धायोगात् ॥ २० ॥

सूत्रार्थ= अभाव रूप अविद्या से भी जीवात्मा का बंधन नहीं हो सकता, क्योंकि अभाव के द्वारा किसी सत्तात्मक वस्तु को बांधना असंभव होने से ।

भाष्य विस्तार = (अविद्यातः-अपि न) विद्याया अभावोऽविद्या तथा खल्वभावरूपयाऽपि जीवात्मनो बन्धः कल्पयितुं न युज्यते सिद्धांती कहता है कि अभाव रूप जो अविद्या है वह तो जीवात्मा को बांध नहीं सकती । यतः (अयस्तुना बन्धायोगात्) तथाभूतयाऽवस्तुरूपयाऽवस्तुरूपेणाभावेन बन्धयोगस्यासम्भवात् क्योंकि जो ज्ञान का अभाव है, अभाव रूप वाली है, अवस्तु रूप वाली है उससे तो बंधन संभव नहीं हो सकता । न हि क्वचिदवस्तु वस्तु बध्नाति जो अवस्तु है वह किसी वस्तु सत्तात्मक को

सांख्यदर्शनम्-प्रथमोऽध्यायः

बन्धयोगस्यासम्भवात् । न हि क्वचिदवस्तु वस्तु बध्नाति, वस्तुबन्धनयोगः केनचिद् वस्तुना भवितुं शक्यो नावस्तुना ॥ २० ॥

पुनः -

वस्तुत्वे सिद्धान्तहानिः ॥ २१ ॥

(वस्तुत्वे सिद्धान्तहानिः) अविद्याया वस्तुत्वस्वीकारे दार्शनिकसिद्धान्तहानिर्भवति, न हि क्वचिद् दर्शने आर्षदर्शने अभावो वस्तुत्वेन स्वीक्रियते स्वीकर्तुं युज्यते वा दर्शनं तु तदेव स्वीकरोति यत्खलु सत्तारूपेण दृश्येत ज्ञानपथमागच्छेत् तदेव दर्शनस्य प्रतिपाद्यम् ॥ २७ ॥

अन्यच्च -

विजातीयद्वैतापत्तिश्च ॥ २२ ॥

(विजातीयद्वैतापत्तिः-च) अथ च भावाद् भिन्नोऽभावोऽपि वस्तु चेत् स्वीक्रियते तदा भावाद्

नहीं बांध सकती, वस्तुबन्धनयोगः केनचिद् वस्तुना भवितुं शक्यो नावस्तुना वस्तु बंधन योग जो है वो किसी वस्तु के बंधन के द्वारा ही संभव है अवस्तु के द्वारा नहीं ॥ २० ॥

पुनः -

वस्तुत्वे सिद्धान्तहानिः ॥ २१ ॥

सूत्रार्थ= अभाव रूप अविद्या को सत्तात्मक पदार्थ मानने पर दार्शनिक सिद्धान्त कि हानी होती है ।

भाष्य विस्तार = (वस्तुत्वे सिद्धान्तहानिः) अविद्याया वस्तुत्वस्वीकारे दार्शनिकसिद्धान्तहानिर्भवति इस अभाव रूप अविद्या को वस्तु स्वीकार कर लेने पर दार्शनिक सिद्धान्त कि हानी होती है, न हि क्वचिद् दर्शने आर्षदर्शने अभावो वस्तुत्वेन स्वीक्रियते स्वीकर्तुं युज्यते वा कहीं पर भी दर्शन शास्त्र में आर्ष दर्शनों में अभाव को वस्तु के रूप में स्वीकार नहीं किया गया है, अथवा स्वीकार करना युक्त हो ऐसा नहीं माना जाता दर्शनं तु तदेव स्वीकरोति यत्खलु सत्तारूपेण दृश्येत ज्ञानपथमागच्छेत् तदेव दर्शनस्य प्रतिपाद्यम् वैदिक दर्शन तो उसी वस्तु को स्वीकार करता है जो सत्तारूप में दिखे अथवा ज्ञानपथ को प्राप्त होवे, वही दर्शन का प्रतिपाद्य विषय है ॥ २१ ॥

अन्यच्च -

विजातीयद्वैतापत्तिश्च ॥ २२ ॥

सूत्रार्थ= अभाव को वस्तु रूप मान लेने पर दो प्रकार के विरुद्ध रूप वाले सत्तात्मक और असत्तात्मक अभाव मानने पड़ेंगे ।

भाष्य विस्तार = (विजातीयद्वैतापत्तिः-च) अथ च भावाद् भिन्नोऽभावोऽपि वस्तु चेत् स्वीक्रियते और इस पक्ष में दोष ये आता है कि- भाव से भिन्न अभाव को भी वस्तु मान लिया जाए तदा भावाद् भिन्नस्याभावस्य भावविजातीयद्वैतापत्तिरिति यत्सोऽभावो भाववद् विजातीयोऽपरसत्तारूपोऽनर्थकारी स

भिन्नस्याभावस्य भावविजातीयद्वैतमापद्यते यत्सोऽभावो भाववद् विजातीयोऽपरसत्तारूपोऽनर्थकारी स चानिष्टतो दर्शने ॥ २२॥

यद्वा -

विरुद्धोभयरूपा चेत् ।

न तादृक् पदार्थाप्रतीतेः ॥ २३- २४॥

अनयोः सूत्रयोरेकवाक्यताऽस्ति -

(विरुद्धोभयरूपा चेत्) यदि ह्यविद्या वस्त्वस्तुभ्यां विरुद्धा न वस्तु नाप्यवस्तु किन्तु विरुद्धा सती खलूभयरूपाऽस्तीति कल्प्येत तर्हि (न) नैतत्कल्पयितुं युज्यते । यतः (तादृक्पदार्थाप्रतीतेः) तादृशस्य पदार्थस्य प्रतीतिरुपलब्धिर्न भवति केनापि प्रमाणेन ॥ २३- २४॥

पूर्वपक्षत्वेन पुनरुच्यते -

चानिष्टतो दर्शने तब भाव से भिन्न जो अभाव है उसके संदर्भ में दो प्रकार का भाव से विजातीय पदार्थ स्वीकार करना पड़ेगा वो जो दूसरा भाव होगा वह भाव के समान (विजातीय) दूसरी सत्ता वाला अनर्थकारी होगा वह अनिष्ट करेगा वह दर्शन शास्त्र में उचित नहीं है ॥ २२॥

यद्वा -

विरुद्धोभयरूपा चेत् ।

न तादृक् पदार्थाप्रतीतेः ॥ २३- २४॥

सूत्रार्थ= यदि अविद्या परस्पर विरोधी स्वरूप वाली हो तो, ऐसा मानना ठीक नहीं है । इस प्रकार का कोई भी पदार्थ कहीं भी प्रमाणों से सिद्ध नहीं हो सकता ।

अनयोः सूत्रयोरेकवाक्यताऽस्ति - दोनों सूत्रों में परस्पर सम्बंध है-

भाष्य विस्तार = (विरुद्धोभयरूपा चेत्) यदि ह्यविद्या वस्त्वस्तुभ्यां विरुद्धा न वस्तु नाप्यवस्तु किन्तु विरुद्धा सती खलूभयरूपाऽस्तीति कल्प्येत तर्हि (न) नैतत्कल्पयितुं युज्यते पूर्वपक्षी कहता है यदि अविद्या को वस्तु और अवस्तु दोनों से विरुद्ध रूप वाली माना जाए, उसने तीसरी प्रकार की मान लिया जाए वह दोनों रूप वाली भाव भी नहीं और अभाव भी नहीं ऐसे रूप वाली मान ले तो, सिद्धांती कहता है- ऐसी कल्पना करना ठीक नहीं है । यतः (तादृक्पदार्थाप्रतीतेः) तादृशस्य पदार्थस्य प्रतीतिरुपलब्धिर्न भवति केनापि प्रमाणेन क्योंकि ऐसी वस्तु की प्रतीति उपलब्धि अथवा सत्ता किसी भी प्रमाण से सिद्ध नहीं होती ॥ २३- २४॥

पूर्वपक्षत्वेन पुनरुच्यते -

न वयं षट्पदार्थं यदि वादिनो वैशिषिकादिवत् ॥ २५॥

सूत्रार्थ= हम छः सोलह या पच्चीस आदि पदार्थ संख्याओं में सीमित पदार्थों को मानने वाले नहीं हैं,

न वयं षट्पदार्थादिवादिनो वैशिषिकादिवत् ॥ २५ ॥

(वयं षट्पदार्थादिवादिनः-न) अप्रतीतोऽपि पदार्थो भवतु यतो वयं षट्षोडशपञ्चविंशतिपदार्थादिवादिनो न स्मः (वैशिषिकादिवत्) वैशेषिकनैयायिकसांख्या इव, यथा तैः षट्षोडशपञ्चविंशतिसंख्याकाः पदार्था नियम्यन्ते ॥ अत्र वैशेषिकादिकथनं गुणवशादस्ति न तु संज्ञावशाद्, वैशेषिकादिसिद्धान्तवादिनः कणादादिभ्यः पूर्वमपि स्युरिति सम्भवः ॥ २५ ॥

उत्तरयति -

अनियतत्वेऽपि नायौक्तिकस्य संग्रहोऽन्यथा बालोन्मत्तादिसमत्वम् ॥ २६ ॥

(अनियतत्वे) अपि पदार्थानां षट्षोडशपञ्चविंशतिसंख्या नियता न स्यात् तथापि

वैशेषिक न्याय सांख्य आदि विद्याओं के समान ।

भाष्य विस्तार = (वयं षट्पदार्थादिवादिनः-न) अप्रतीतोऽपि पदार्थो भवतु जिसकी अप्रतीति हो रही है ऐसे पदार्थ को भी मान लो यतो वयं षट्षोडशपञ्चविंशतिपदार्थादिवादिनो न स्मः हम छः, सोलह, पच्चीस आदि पदार्थ मानने वाले नहीं हैं संख्याओं में बंधे हुए नहीं हैं (वैशिषिकादिवत्) वैशेषिकनैयायिकसांख्या इव जैसे वैशेषिक विद्या के मानने वाले, यथा तैः षट्षोडशपञ्चविंशतिसंख्याकाः पदार्था नियम्यन्ते जैसे इनके द्वारा छः, सोलह, पच्चीस आदि पदार्थ नियत किए हुए हैं ॥ अत्र वैशेषिकादिकथनं गुणवशादस्ति न तु संज्ञावशाद् इस सूत्र में जो वैशेषिक शब्द आया ये गुण-विद्या के आधार पर आया, वैशेषिकादिसिद्धान्तवादिनः कणादादिभ्यः पूर्वमपि स्युरिति सम्भवः क्योंकि वैशेषिक आदि सिद्धांतों को मानने वाले लोग कणाद आदि विद्वानों के पूर्व भी थे ॥ २५ ॥

उत्तरयति -

अनियतत्वेऽपि नायौक्तिकस्य संग्रहोऽन्यथा बालोन्मत्तादिसमत्वम् ॥ २६ ॥

सूत्रार्थ= पदार्थों की संख्या में निश्चित न होने पर भी मुक्ति से विरुद्ध बात को स्वीकार नहीं किया जाएगा । अन्यथा मूर्ख-पागल और नशे से ग्रस्त व्यक्तियों की बातें भी माननी पड़ेंगी ।

भाष्य विस्तार = (अनियतत्वे) अपि पदार्थानां षट्षोडशपञ्चविंशतिसंख्या नियता न स्यात् सिद्धांती कहता है कि- आप छः, सोलह, पाचीस पदार्थों की संख्या न भी मानें तथापि तेषामनियतत्वस्वीकारेऽपि फिर भी उनकी संख्या न स्वीकार करने पर भी (अयौक्तिकस्य संग्रहः-न) युक्तिविहीनस्य तथाभूतस्य वस्त्वस्तुविरुद्धोभयरूपस्य संग्रहः संग्रहणं स्वीकारो न भवति जो युक्ति से विहीन है उस तरह कि जो न वस्तु है और न अवस्तु दोनों से विरुद्ध तीसरे स्वरूप वाली है, इस बात का संग्रह अर्थात् संग्रहण स्वीकार नहीं हो सकता (अन्यथा बालोन्मत्तादिसमत्वम्) अयौक्तिकस्वीकारे बालोऽज्ञः अयुक्त वस्तु को स्वीकार करने पर वह बालक कहलाएगा, उन्मत्तो मानसरोगेणोन्मनाः अथवा वह उन्मत्त है मानसरोग से ग्रस्त है, आदिना मादकद्रव्यसेवनेन भ्रान्तः 'आदि' शब्द से अर्थ है जो मादक द्रव्य के सेवन से भ्रान्ति में पड़ गया हो । तथाविधानां बालोन्मत्तभ्रान्तानां कथनमपि समानं स्वीकार्यं स्यात् यदि आपकी बात

सांख्यदर्शनम्-प्रथमोऽध्यायः

तेषामनियतत्वस्वीकारेऽपि (अयौक्तिकस्य संग्रहः-न) युक्तिविहीनस्य तथाभूतस्य वस्त्वस्तुविरुद्धोभयरूपस्य संग्रहः संग्रहणं स्वीकारो न भवति (अन्यथा बालोन्मत्तादिसमत्वम्) अयौक्तिकस्वीकारे बालोऽज्ञः, उन्मत्तो मानसरोगेणोन्मत्ताः, आदिना मादकद्रव्यसेवनेन भ्रान्तः। तथाविधानां बालोन्मत्तभ्रान्तानां कथनमपि समानं स्वीकार्यं स्यात्। तस्मान्न तथाविधोऽविद्यापदार्थः स्वीकर्तुं योग्यः पुनस्तस्माद् बन्ध इति कथनस्य नावसरः ॥ २६ ॥

जीवात्मनो बन्धविषयेऽन्या कल्पनोत्थाप्य परिह्रियते -

नानादिविषयोपरागनिमित्तोऽप्यस्य* ॥ २७ ॥

(अनादिविषयोपरागनिमित्तः-अपि-अस्य न) अनादिविषयोपरागो निमित्तं यस्य तथाभूतोऽनादिविषयोपरागनिमित्तको बन्धः। प्रवाहेणानादिविषयवासनानिमित्तको-ऽपि किलास्य जीवात्मनो बन्धः स्यादित्यपि न वक्तुं शक्यते। क्षणिकवादे दोषापत्तिरेषा योज्या चतुस्त्रिंशे सूत्रे तत्प्रत्यक्षत्वात्, तत्र

मानलेवे तो बालकों कि, मतभ्रांत लोगों कि भी बात माननी पड़ेगी। तस्मान्न तथाविधोऽविद्यापदार्थः स्वीकर्तुं योग्यः पुनस्तस्माद् बन्ध इति कथनस्य नावसरः इसलिए उस तरह का अविद्या रूपी पदार्थ स्वीकार नहीं किया जा सकता है, फिर जब वह वस्तु है ही नहीं उसके कारण से बंधन मानने का कोई अवसर ही नहीं आता ॥ २६ ॥

जीवात्मनो बन्धविषयेऽन्या कल्पनोत्थाप्य परिह्रियते - जीवात्मा के बंधन के विषय में एक अन्य कल्पना उठाकर उसका समापन करते हैं-

नानादिविषयोपरागनिमित्तोऽप्यस्य* ॥ २७ ॥

सूत्रार्थ= अनादि वासनाओं के संबंध के कारण भी इस जीवात्मा का बंधन क्षणिकवाद में सिद्ध नहीं होता।

भाष्य विस्तार = (अनादिविषयोपरागनिमित्तः-अपि-अस्य न) अनादिविषयोपरागो निमित्तं यस्य तथाभूतोऽनादिविषयोपरागनिमित्तको बन्धः अनादि काल से विषयों का जो उपराग है, वो है कारण जिसका अर्थात् उन भौतिक वस्तुओं के प्रति जो अनादि काल से राग है वह भी बंधन का कारण नहीं हो सकता। प्रवाहेणानादिविषयवासनानिमित्तकोऽपि किलास्य जीवात्मनो बन्धः स्यादित्यपि न वक्तुं शक्यते प्रवाह से अनादि विषय वासना के कारण से जो जीवात्मा का बंधन हो गया है, इस तरह से भी कहा नहीं जा सकता है। क्षणिकवादे दोषापत्तिरेषा योज्या चतुस्त्रिंशे सूत्रे तत्प्रत्यक्षत्वात् ये जो दोष बताया जा रहा है यह क्षणिकवाद की मान्यता में दोष आएगा, क्षणिक वाद की चर्चा ३४ वे सूत्र में प्रत्यक्ष है, तत्र क्षणिकवादे खल्व्वात्मनोऽस्थिरत्वादनाधारत्वाच्च बन्धानुपपत्तिः क्षणिक वाद में आत्मा के अस्थिर होने से और कोई आधार न होने से बंधन की असिद्धि होती है ॥ २७ ॥

तथा -

न बाह्याभ्यन्तरयोरुपरञ्ज्योपरञ्जकभावोऽपि देशव्यवधानात् स्तब्धस्थपाटलिपुत्रस्थयोरिव ॥ २८ ॥

सूत्रार्थ= शरीर से बाहर विषय एवं शरीर के अंदर आत्मा का उपरंजक और उपरंज संबंध भी संभव

[यह केवल निजी प्रयोग हेतु, अप्रकाशित, संशोधन अपेक्षित संग्रह है।]

क्षणिकवादे खल्वात्मनोऽस्थिरत्वादनाधारत्वाच्च बन्धानुपपत्तिः ॥ २७ ॥

तथा -

न बाह्याभ्यन्तरयोरुपरञ्ज्योपरञ्जकभावोऽपि देशव्यवधानात् स्त्रु घनस्थपाटलिपुत्रस्थयोरिव ॥

२८ ॥

(बाह्याभ्यन्तरयोः-उपरञ्ज्योपरञ्जकभावः-अपि न) बाह्यविषयोपरागो जीवात्मनो बन्धस्य निमित्तमिति यदुक्तं कथमपि न युक्तं तत् । यतो बाह्यस्य विषयस्योपरञ्जकभावोऽभ्यन्तरस्यामन उपरञ्ज्यभावोऽपि न सम्भवति । यतः (देशव्यवधानात्) विषयाः सन्ति शरीराद् बहिरात्मा च शरीरस्यान्तरे, इति देशव्यवधानहेतोस्तत्र दृष्टान्तः । (स्त्रु घनस्थपाटलिपुत्रस्थयोः-इव) यथैतयोर्भिन्नभिन्न-देशस्थयोरुपरञ्ज्योपरञ्जकभावो न भवति तद्वदत्रापि ॥ २८ ॥

नहीं है। स्थान की दूरी होने से । जैसे आगरा और पटना में स्थित दो पदार्थों में स्थान की दूरी होने से उपरंज और उपरंजक भाव (संबंध) नहीं होता ।

भाष्य विस्तार = (बाह्याभ्यन्तरयोः-उपरञ्ज्योपरञ्जकभावः-अपि न) बाह्यविषयोपरागो जीवात्मनो बन्धस्य निमित्तमिति यदुक्तं कथमपि न युक्तं तत् बाह्य विषयों के साथ जो उपराग है संबंध है वो इस जीवात्मा के बंधन का जो कारण कहा गया है, वह भी कहना उचित नहीं है । यतो बाह्यस्य विषयस्योपरञ्जकभावोऽभ्यन्तरस्यामन उपरञ्ज्यभावोऽपि न सम्भवति क्योंकि जो बाह्य विषयों का उपरंजक भाव है (दूसरे को रंगने बांधने का जो भाव है) आत्मा शरीर के अंदर और वस्तु शरीर से दूर। इतनी दूर से वह आत्मा को नहीं बांध सकती। यतः (देशव्यवधानात्) विषयाः सन्ति शरीराद् बहिरात्मा च शरीरस्यान्तरे शरीर से बाहर विषय तो दूर हैं और आत्मा शरीर के भीतर है , इति देशव्यवधानहेतोस्तत्र दृष्टान्तः इस तरह से देश के व्यवधान=दूरी बंधन में बाधक है, इस विषय में एक दृष्टान्त है। (सु घनस्थपाटलिपुत्रस्थयोः-इव) यथैतयोर्भिन्नभिन्नदेशस्थयोरुपरञ्ज्योपरञ्जकभावो न भवति तद्वदत्रापि एक वस्तु (पेंट कलर) है आगरा में और दरवाजे हैं पटना में, तो इतनी दूर से रंगा नहीं जा सकता है ॥ २८ ॥

क्षणिकवादेऽभ्यन्तरो ह्यात्माऽस्तीति न किन्तूभयत्र बहिरन्तरयोः समानत्वेन तस्य वर्तमानत्वमस्ति पुनस्तस्य बहिःस्थेन विषयेण सह सम्बन्धो भविष्यतीत्यत्रोच्यते - आत्मा शरीर के अंदर ही है केवल हम इतना ही नहीं मानते, किन्तु वह तो शरीर के अंदर भी है और समान रूप से बाहर भी है। फिर बाहर वाली वस्तु से उसका संबंध हो ही जाएगा । इस पर कहते हैं-

द्वयोरेकदेशलब्धोपरागान्न व्यवस्था ॥ २९ ॥

सूत्रार्थ= विषय और आत्मा इन दोनों के एक ही स्थान पर (शरीर के बाहर) उपलब्ध होने से दोनों का संबंध होने पर भी क्षणिकवाद में बन्ध और मोक्ष की व्यवस्था ठीक से नहीं बन पाएगी ।

भाष्य विस्तार = (द्वयोः-एकदेशलब्धोपरागात्) विषयस्य जीवात्मनश्च द्वयोरेकदेशे यो लब्ध उपरागः सम्बन्धस्तस्मात् खलु (न व्यवस्था) व्यवस्था न भविष्यति क्षणिकवादे मान लेते हैं कि जीवात्मा और विषय दोनों ही एक स्थान पर उपलब्ध हैं परंतु वहाँ जो उन दोनों का संबंध हो जाएगा, ऐसा मानने से जो [यह केवल निजी प्रयोग हेतु, अप्रकाशित, संशोधन अपेक्षित संग्रह है।]

सांख्यदर्शनम्-प्रथमोऽध्यायः

क्षणिकवादेऽभ्यन्तरो ह्यात्माऽस्तीति न किन्तूभयत्र बहिरन्तरयोः समानत्वेन तस्य वर्तमानत्वमस्ति पुनस्तस्य बहिःस्थेन विषयेण सह सम्बन्धो भविष्यतीत्यत्रोच्यते -

द्वयोरेकदेशलब्धोपरागान्न व्यवस्था ॥ २ ९ ॥

(द्वयोः-एकदेशलब्धोपरागात्) विषयस्य जीवात्मनश्च द्वयोरेकदेशे यो लब्ध उपरागः सम्बन्धस्तस्मात् खलु (न व्यवस्था) व्यवस्था न भविष्यति क्षणिकवादे बन्धस्य मोक्षस्य च सर्वेषामात्मनां च क्षणिकत्वात् सर्वेऽपि बद्धा भविष्यन्ति शरीरिणोऽशरीरा या स्युर्विषयेण सह सर्वेषां समानसम्बन्धात् ॥ २ ९ ॥

पुनराशङ्क्य समाधत्ते सूत्रद्वयेन प्रथममाशङ्कते -

अदृष्टवशाच्चेत् ॥ ३ ० ॥

क्षणिकवाद में व्यवस्था नहीं बनेगी बन्धस्य मोक्षस्य च सर्वेषामात्मनां च क्षणिकत्वात् सर्वेऽपि बद्धा भविष्यन्ति शरीरिणोऽशरीरा या स्युर्विषयेण सह सर्वेषां समानसम्बन्धात् क्षणिकवाद में बंधन और मोक्ष कि ठीक व्यवस्था नहीं बनेगी सभी आत्माओं को क्षणिक होने से सबके सब बंधन में आजाएंगे और सभी आत्माओं के क्षणिक होने से बन्ध और मोक्ष भी क्षणिक, चाहे कोई शरीर धारी हो अथवा न हो सभी का विषयों के साथ समान संबंध होगा ॥ २ ९ ॥

पुनराशङ्क्य समाधत्ते सूत्रद्वयेन प्रथममाशङ्कते - दो सूत्रों से पुनः शंका करके समाधान करते हैं । पहले शंका करते हैं -

अदृष्टवशाच्चेत् ॥ ३ ० ॥

सूत्रार्थ= यदि पूर्वपक्षी कहे कि जिस आत्मा का संचित कर्म बच जाएगा तो उस आत्मा का बंधन हो जाएगा ।

भाष्य विस्तार = (अदृष्टवशात्-चेत्) सर्वे बद्धा न भविष्यन्ति किन्तु तत्र व्यवस्था भविष्यत्यदृष्टवशात् सबके सब बंधन में नहीं आएंगे, अदृष्ट के कारण से वहाँ व्यवस्था हो जाएगी, तेषु यस्य यस्यादृष्टमवशिष्टं तस्य तस्य विषयोपरागो भविष्यति विषयोपरागाच्च बन्धो न हि सर्वेषां बन्ध इति चेदुच्येत पूर्वपक्षी यदि ऐसा कहे कि-सब जीवात्माओं में जिस जिसका अदृष्ट बचा हुआ है उस उसका विषयों से राग हो जाएगा , जिसका विषयों में राग हो उसका बंधन हो जाएगा, सबका बंधन नहीं होगा ॥ ३ ० ॥

तर्हि -

न द्वयोरेककालायोगादुपकार्योपकारकभावः ॥ ३ १ ॥

सूत्रार्थ= उन दोनों= अदृष्ट और बन्ध में कारण कार्य भाव संबंध नहीं हो सकता, दोनों एक काल में उपस्थित होने से ।

भाष्य विस्तार = (एककालायोगात्-द्वयोः-उपकार्योपकारकभावः-न) भिन्नभिन्नकाल-

(अदृष्टवशात्-चेत्) सर्वे बद्धा न भविष्यन्ति किन्तु तत्र व्यवस्था भविष्यत्यदृष्टवशात्, तेषु यस्य यस्यादृष्टमवशिष्टं तस्य तस्य विषयोपरागो भविष्यति विषयोपरागाच्च बन्धो न हि सर्वेषां बन्ध इति चेदुच्येत ॥३०॥

तर्हि -

न द्वयोरेककालायोगादुपकार्योपकारकभावः ॥ ३१ ॥

(एककालायोगात्-द्वयोः-उपकार्योपकारकभावः-न) भिन्नभिन्नकाल-सम्बन्धात्, अदृष्टकालेऽन्य आत्मा बन्धकाले चान्यो वस्तुज्ञातस्य क्षणिकत्वात्क्षणिकवादे । न हि कमप्यात्मानं प्रति द्वयोरदृष्टबन्धयोरुपकारकोपकार्यभावः कारणकार्यभावो निमित्तनैमित्तिकभावो वा सम्भवति । तस्मात् क्षणिकवादे बन्धमोक्षव्यवस्था नोपपद्यतेऽत एव तत्र न प्रावादिकविषयोपरागो बन्धहेतुः ॥ ३१ ॥

सम्बन्धात्, अदृष्टकालेऽन्य आत्मा बन्धकाले चान्यो वस्तुज्ञातस्य क्षणिकत्वात्क्षणिकवादे सिद्धांती कहता है- क्षणिकवाद में हर वस्तु क्षणिक है, एक क्षण तक वस्तु रहती है फिर वह नष्ट हो जाती है इसलिए जब आत्मा ने कर्म किया तब अलग आत्मा थी और जब बंधन का समय आया तो अलग आत्मा थी। हर वस्तु का भिन्न-भिन्न काल से संबंध के कारण कोई कारण कार्य संबंध बनेगा ही नहीं। न हि कमप्यात्मानं प्रति द्वयोरदृष्टबन्धयोरुपकारकोपकार्यभावः कारणकार्यभावो निमित्तनैमित्तिकभावो वा सम्भवति क्षणिक वाद के अनुसार किसी भी आत्मा के प्रति इन दोनों का अदृष्ट का और बंधन का उपकार और उपकार्य भाव अथवा कारण कार्य भाव निमित्त नैमित्तिक भाव संभव ही नहीं। तस्मात् क्षणिकवादे बन्धमोक्षव्यवस्था नोपपद्यतेऽत एव तत्र न प्रावादिकविषयोपरागो बन्धहेतुः इसलिए क्षणिकवाद में बंधन और मोक्ष की व्यवस्था ठीक नहीं बनती, अतः इस क्षणिकवाद में प्रवाह से जो विषयों का राग है जो बंधन का कारण बनेगा, वास्तव में वह बंधन का कारण नहीं बन पाएगा ॥ ३१ ॥

पुनराशंकते - फिर आशंका करते हैं-

पुत्रकर्मवदिति चेत् ॥ ३२ ॥

सूत्रार्थ= पूर्वपक्षी यदि ऐसा कहे कि, पुत्र कर्म के समान अदृष्ट और बंधन में भी कारण कार्य संबंध हो जाएगा तो।

भाष्य विस्तार = (पुत्रकर्मवत्-इति चेत्) पुत्रोत्पत्त्यर्थं गर्भाधानादिकं कर्म पुत्रकर्म पुत्र कि उत्पत्ति के लिए जो गर्भाधान आदि कर्म किया जाता है, तस्मिन् गर्भाधानादिकर्मणि पुत्रस्य भिन्नभिन्नरूपाणि भवन्ति जिसमें गर्भाधान के के पश्चात गर्भ में भ्रूण (पुत्र) के भिन्न भिन्न रूप होते जाते हैं तत्र पूर्वावस्थाके पुत्रे कृतं संस्कारकर्म परावस्थाके पुत्रे व्यज्यते गर्भ में माँ के द्वारा किया गया पिछला-पिछला भोजन गर्भस्थ शिशु को लगता मिलता जाएगा और उसका कारण बनाता जाएगा पूर्वपरयोः पुत्रस्वरूपयोः भिन्नभिन्नयोरप्युपकारकोपकार्यभावो भवति जैसे एक महीने से दूसरे महीने में पुत्र के स्वरूप में भिन्न-भिन्न स्वरूपों में एक दूसरे का कारण कार्य भाव बनता है। तद्वत् अदृष्टबन्धयोरभिन्नभिन्नयोरप्युपकारकोपकार्यभावो

पुनराशंकते -

पुत्रकर्मवदिति चेत् ॥ ३२ ॥

(पुत्रकर्मवत्-इति चेत्) पुत्रोत्पत्त्यर्थं गर्भाधानादिकं कर्म पुत्रकर्म, तस्मिन् गर्भाधानादिकर्मणि पुत्रस्य भिन्नभिन्नरूपाणि भवन्ति तत्र पूर्वावस्थाके पुत्रे कृतं संस्कारकर्म परावस्थाके पुत्रे व्यज्यते पूर्वपरयोः पुत्रस्वरूपयोः भिन्नभिन्नयोरप्युपकारकोपकार्यभावो भविष्यतीति चेदुच्येत् ॥ ३२ ॥

तर्हि -

नास्ति हि तत्र स्थिर एकात्मा यो गर्भाधानादिना संस्क्रियते ॥ ३३ ॥

(न) नह्येतद् युक्तमुक्तं यतः (तत्र स्थिरः-एकः-आत्मा-अस्ति हि) तत्र पुत्रस्य भिन्नभिन्नरूपेषु खलु स्थिर एक आत्मा गर्भाधानादादेहपातमस्ति हि (यः-गर्भाधानादिना संस्क्रियते) यो हि गर्भाधानादिना

भविष्यतीति चेदुच्येत् बालक के दृष्टान्त के समान अदृष्ट के बन्ध में भी जो भिन्न-भिन्न काल में है (पहले महीने के भोजन से दुसरे महीने में शरीर बना) उसमें कारण कार्य भाव हो जाएगा, ऐसा यदि कहे तो ॥ ३२ ॥

तर्हि -

नास्ति हि तत्र स्थिर एकात्मा यो गर्भाधानादिना संस्क्रियते ॥ ३३ ॥

सूत्रार्थ= सिद्धांती कहता है - आपकी बात ठीक नहीं है, उस पुत्र कर्म वाले दृष्टान्त में तो एक स्थिर आत्मा है। जो गर्भ से लेकर मृत्यु पर्यंत चलती है, जो गर्भाधान आदि संस्कारों से लाभ उठाती रहती है, वहाँ कारण कार्य भाव संबंध सिद्ध होता है। क्योंकि वहाँ तो आत्मा स्थिर है। इसलिए कारण कार्य संबंध क्षणिकवाद में सिद्ध नहीं होता है।

भाष्य विस्तार = सिद्धांती कहता है कि आपका दृष्टान्त ठीक नहीं है। ७(आपकी मान्यता में क्षणिकवाद में हर वस्तु क्षणिक है परंतु जो दृष्टान्त दिया गर्भस्थ शिशु का वह तो स्थिर है) आपने यह बात ठीक नहीं कही, क्योंकि वहाँ पुत्र के भिन्न-भिन्न रूपों में एक आत्मा स्थिर है उस स्थिर आत्मा के कारण गर्भाधान से लेकर जब तक शरीर समाप्त होगा तब तक वह पूरी आत्मा स्थिर रहेगा। उस आत्मा कि वजह से पिछला शरीर अगले शरीर का कारण बनता है, जो भी ये गर्भाधान आदि संस्कार कर्म से संस्कृत होती है लाभान्वित होती है, वह एक स्थिर आत्मा होती है। इसलिए आपकी मान्यता गलत है ॥ ३३ ॥

पुनः पूर्वपक्षत्वेनोच्यते - फिर पूर्वपक्ष कि ओर से कहा जाता है-

स्थिरकार्यसिद्धेः क्षणिकत्वम् ॥ ३४ ॥

सूत्रार्थ= संसार में कोई भी पदार्थ स्थिर उपलब्ध न होने से हर वस्तु क्षणिक है।

भाष्य विस्तार = (स्थिरकार्यसिद्धेः क्षणिकत्वम्) स्थिरकार्यस्यानुपलब्धेः कस्मिंश्चिदपि वस्तुनि स्थिरकार्यस्य स्थिरपरिणामस्याभावाद् वस्तुमात्रस्य क्षणिकत्वं सम्भवति पूर्वपक्षी कहता है संसार में कोई भी वस्तु स्थिर नहीं है, हर वस्तु में परिवर्तन हो रहा है, किसी भी वस्तु में स्थिरता का अभाव होने से स्थिर कार्य और स्थिर परिणाम का अभाव होने से इसलिए हर वस्तु क्षणिक है तस्मादात्मनोऽपि क्षणिकत्वं विज्ञेयम्।

[यह केवल निजी प्रयोग हेतु, अप्रकाशित, संशोधन अपेक्षित संग्रह है।]

संस्कारकर्मणा संस्क्रियते ॥ ३३ ॥

पुनः पूर्वपक्षत्वेनोच्यते -

स्थिरकार्यसिद्धेः क्षणिकत्वम् ॥ ३४ ॥

(स्थिरकार्यसिद्धेः क्षणिकत्वम्) स्थिरकार्यस्यानुपलब्धेः कस्मिंश्चिदपि वस्तुनि स्थिरकार्यस्य स्थिरपरिणामस्याभावाद् वस्तुमात्रस्य क्षणिकत्वं सम्भवति तस्मादात्मनोऽपि क्षणिकत्वं विज्ञेयम् ॥ ३४ ॥

पुनरुत्तरयति -

न प्रत्यभिज्ञाबाधात् ॥ ३५ ॥

(न) वस्तुमात्रस्य क्षणिकत्वं न। कुतः (प्रत्यभिज्ञाबाधात्) प्रत्यभिज्ञाया बाधप्रसंगात्, यैषा प्रत्यभिज्ञा भवति बाल्ये योऽहमासं स एवाहं यौवनेऽपि स एवाहं प्रातरासं स एवाहं सायमप्यस्मि, य एवाहं

इसलिए आत्मा को भी क्षणिक मानना जानना चाहिए ॥ ३४ ॥

पुनरुत्तरयति - सिद्धांती फिर उत्तर देता है -

न प्रत्यभिज्ञाबाधात् ॥ ३५ ॥

सूत्रार्थ= हर वस्तु क्षणिक नहीं है, क्षणिक मानने पर पुनः स्मृति नहीं हो पाएगी इसलिए आत्मा भी क्षणिक नहीं है।

भाष्य विस्तार = (न) वस्तुमात्रस्य क्षणिकत्वं न सिद्धांती कहता है हर वस्तु क्षणिक नहीं है। कुतः क्यो (प्रत्यभिज्ञाबाधात्) प्रत्यभिज्ञाया बाधप्रस ३५ प्रत्यभिज्ञा (वस्तु को पहचान न पाने से) का बाध प्रसंग आने से आपकी बात ठीक नहीं है, यैषा प्रत्यभिज्ञा भवति बाल्ये योऽहमासं स एवाहं यौवनेऽपि स एवाहं प्रातरासं स एवाहं सायमप्यस्मि ये जो पहचान होती है, जो में बचपन में था आज वही पच्चीस वर्ष में हूँ, जो में सुबह था वही शाम को हूँ, य एवाहं सायं शयनवेलायामासं स एवाहं प्रातर्जागरणवेलायामप्यस्मीति जो मैं सायं को सोया था वही प्रातः जागरण वेला में हूँ, यैषा प्रत्यभिज्ञा पुनः स्मृतिः स्वविषया भवति तस्या बाधप्रसंगदोषः स्यात् ये जो प्रत्यभिज्ञा होती है अपने ही संदर्भ में, पुनः स्मृति होती है स्वयं के विषय में, यदि सब कुछ क्षणिक मान लिया जाए तो प्रत्यभिज्ञा में बाध प्रसंग आएगा। तस्मादात्मा स्थिरोऽस्ति न क्षणिकः क्षणिकवादेविषयोपरागो न बन्धहेतुः इसलिए आत्मा स्थिर है क्षणिक नहीं है, क्षणिक वाद में जो बंधन का कारण विषयों का राग बताया वह सिद्ध नहीं होता ॥ ३५ ॥

अन्यच्च -

श्रुतिन्यायविरोधाच्च ॥ ३६ ॥

सूत्रार्थ= श्रुति, न्याय और तर्क से विरुद्ध होने के कारण भी आत्मा के क्षणिक होने की मान्यता ठीक नहीं है।

भाष्य विस्तार = (श्रुतिन्यायविरोधात्-च) श्रुतिविरोधप्रसंगात् तथा न्यायविरोधप्रसंगादपि

सायं शयनवेलायामासं स एवाहं प्रातर्जागरणवेलायामप्यस्मीति यैषा प्रत्यभिज्ञा पुनःस्मृतिः स्वविषया भवति तस्या बाधप्रसंगदोषः स्यात् । तस्मादात्मा स्थिरोऽस्ति न क्षणिकः क्षणिकवादेविषयोपरागो न बन्धहेतुः ॥ ३५ ॥

अन्यच्च -

श्रुतिन्यायविरोधाच्च ॥ ३६ ॥

(श्रुतिन्यायविरोधात्-च) श्रुतिविरोधप्रसंगात् तथा न्यायविरोधप्रसंगादपि नात्मा क्षणिकः । श्रुतिस्तावत् “आत्मा....स इतः प्रयत्नेन पुनर्जायते” (ऐ०उ० ४.४) “अविनाशी वा अरेऽयमात्माऽनुच्छित्तिधर्मा” (बृह ० ४.५.१४) न्यायविरोधात्-तर्कविरोधप्रसंगादपि भोक्तुकामः सन् पुरुषो भोगसाधनं पूर्वमनुतिष्ठति पश्चात् स एव तत्फलं भोगरूपं भुङ्क्ते ‘यः कर्ता स भोक्ता’ इति न्यायः । यदि साधनानुष्ठानकाले भिन्नः फलभोगकाले भिन्नस्तर्हि कः साधनान्यनुतिष्ठेत् तदा लोकव्यवहारो

नात्मा क्षणिकः इस क्षणिकवाद में एक तो श्रुति से विरोध आएगा और न्याय का व्यवहार संसार में चलता है उससे भी विरोध आएगा, इसलिए आत्मा क्षणिक नहीं है । श्रुतिस्तावत् “आत्मा....स इतः प्रयत्नेन पुनर्जायते” श्रुति ऐसा बतलाती है, वह आत्मा जब शरीर छोड़के जाता है फिर वह दूसरा जन्म धारण करता है (ऐ०उ० ४.४) “अविनाशी वा अरेऽयमात्माऽनुच्छित्तिधर्मा” दूसरा उदाहरण दिया- अरे यह आत्मा अविनाशी है, इसका विच्छेद नहीं हो सकता (बृह ० ४. ५. १४) न्यायविरोधात्-तर्कविरोधप्रसंगादपि न्याय और तर्क से भी आपकी मान्यता में विरोध आता है भोक्तुकामः सन् पुरुषो भोगसाधनं पूर्वमनुतिष्ठति भोगने की कामना वाला होकर पुरुष पहले भोग के साधन को क्रय करता है पश्चात् स एव तत्फलं भोगरूपं भुङ्क्ते उसके पश्चात् वह ही उसका फल भोग के रूप में भोगता है ‘यः कर्ता स भोक्ता’ इति न्यायः जो करता है वही भोक्ता होता है, यही न्याय है । यदि साधनानुष्ठानकाले भिन्नः फलभोगकाले भिन्नस्तर्हि कः साधनान्यनुतिष्ठेत् यदि साधन अनुष्ठान काल में भिन्न व्यक्ति हो और फल भोग काल में भिन्न व्यक्ति हो तो फिर इतना साधन पुरुषार्थ कोई क्यों करेगा? तदा लोकव्यवहारो नोपलभ्येत विनष्टो भवेत् क्षणिकवाद की मान्यता के अनुसार सारा व्यवहार नष्ट हो जाएगा, प्रसिद्धं च “को नामानुपभोग्ये कर्मणि तत्साधने वा प्रवर्तते” एक कहावत है- जिस कर्म का फल भोगने को ही नहीं मिलेगा तो कौन बुद्धिमान होगा जो उस कर्म में प्रवृत्त होगा? उपलभ्यते चैष व्यवहारो यदधुना साधनमनुतिष्ठेयं यतः पश्चात्फलं भुञ्जीय ऐसा व्यवहार उपलब्ध ही होता है की आज अर्जित कर लेते हैं फिर बाद में इसका फल भोग करेंगे । तस्मान्न क्षणिक आत्मा इसलिए आत्मा क्षणिक नहीं है ॥ ३६ ॥

अथ च -

दृष्टान्तासिद्धेश्च ॥ ३७ ॥

सूत्रार्थ= क्षणिकवाद में दृष्टान्त की असिद्धि होने से क्षणिक वाद ठीक नहीं है ।

भाष्य विस्तार = (दृष्टान्तासिद्धेः-च) क्षणिकवादे दृष्टान्तस्यासिद्धत्वादपि क्षणिकवाद में दृष्टान्त की असिद्धि होने से भी क्षणिकवाद ठीक नहीं, यतः क्षणिकपक्षस्थापनायां पूर्वं हेतुं प्रदाय पश्चात् तस्य

नोपलभ्यत विनष्टो भवेत्, प्रसिद्धं च “को नामानुपभोग्ये कर्मणि तत्साधने वा प्रवर्तते” उपलभ्यते चैष व्यवहारो यदधुना साधनमनुतिष्ठेयं यतः पश्चात्फलं भुञ्जीय । तस्मान्न क्षणिक आत्मा ॥ ३६ ॥

अथ च -

दृष्टान्तासिद्धेश्च ॥ ३७ ॥

(दृष्टान्तासिद्धेः-च) क्षणिकवादे दृष्टान्तस्यासिद्धत्वादपि, यतः क्षणिकपक्ष- स्थापनायां पूर्वं हेतुं प्रदाय पश्चात् तस्य दृष्टान्तेन भाव्यं यद्वा पूर्वं दृष्टान्तमुदाहृत्य पश्चात् खलु हेतुः प्रदीयेतैवमुभयविधप्रक्रमेणापि दृष्टान्तस्य तद्विषये सिद्धिर्न भविष्यति यतोहि यदा पूर्वो हेतुप्रदानकालः पश्चात्स्याद्दृष्टान्तसाधनकालः तयोर्हेतुदृष्टान्तयोः पूर्वोत्तरकालस्थयोः क्षणिकत्वान्न सम्बन्धः सम्भवति यदस्य हेतोरयं दृष्टान्तः, पूर्वस्य हेतोः क्षणिकत्वात् स नोत्तरकालं दृष्टान्तं सम्बद्धं शक्नुयादथ यदा पूर्वमुपस्थापितो दृष्टान्तः पश्चाच्च हेतुर्दत्तस्तदा स दृष्टान्तः स्वोत्तरकालेन हेतुना नाभिसम्बध्येतेत्येवमपि

दृष्टान्तेन भाव्यं क्योंकि क्षणिक पक्ष की स्थापना करने में पहले हेतु प्रस्तुत करे फिर उसका दृष्टान्त देना चाहिए यद्वा पूर्वं दृष्टान्तमुदाहृत्य पश्चात् खलु हेतुः प्रदीयेतैवमुभयविधप्रक्रमेणापि दृष्टान्तस्य तद्विषये सिद्धिर्न भविष्यति जैसेकि पहले दृष्टान्त दे देवे फिर उसका हेतु प्रस्तुत कर देवे, दोनों में से कोई भी क्रम अपनाए उसके पक्ष में दृष्टान्त कि अपने पक्ष को सिद्ध करने कि सिद्धि नहीं हो पाएगी यतोहि यदा पूर्वो हेतुप्रदानकालः पश्चात्स्याद्दृष्टान्तसाधनकालः क्योंकि जब पहले हेतु देने का पहले काल होगा बाद में दृष्टान्त देने का काल होगा तयोर्हेतुदृष्टान्तयोः पूर्वोत्तरकालस्थयोः क्षणिकत्वान्न सम्बन्धः सम्भवति फिर हेतु और दृष्टान्त का जो पूर्व और उत्तर काल में स्थित है क्षणिक होने से उनका संबंध सिद्ध नहीं हो पाएगा यदस्य हेतोरयं दृष्टान्तः इस प्रकार का संबंध नहीं हो पाएगा कि इस हेतु का ये दृष्टान्त है, पूर्वस्य हेतोः क्षणिकत्वात् स नोत्तरकालं दृष्टान्तं सम्बद्धं शक्नुयादथ पूर्व हेतु के क्षणिक होने से वह हेतु दूसरे क्षण में प्रस्तुत किए गए दृष्टान्त से संबद्ध नहीं हो पाएगा यदा पूर्वमुपस्थापितो दृष्टान्तः पश्चाच्च हेतुर्दत्तस्तदा स दृष्टान्तः स्वोत्तरकालेन हेतुना नाभिसम्बध्येतेत्येवमपि जब दृष्टान्त पहले प्रस्तुत कर दिया हेतु बाद में दिखाया गया इस पक्ष में भी वह दृष्टान्त बाद में प्रस्तुत किए गए हेतु के साथ जुड़ नहीं पाएगा स्याद् दृष्टान्तासिद्धिस्तस्य क्षणिकत्वात् दृष्टान्त कि सिद्धि न पहले हो सकेगी और न बाद में तस्मात् क्षणिकवादो न साधुस्तत्र नहि स्याद् बन्धमोक्षव्यवस्था इसलिए क्षणिकवाद ठीक नहीं है, वहाँ बंधन और मुक्ति कि व्यवस्था ठीक नहीं है ॥ ३७ ॥

अथ च -

युगपज्जायमानयोर्न कार्यकारणभावः ॥ ३८ ॥

सूत्रार्थ= जो दो वस्तुएँ एक साथ उत्पन्न होती हैं, उन दोनों में कार्य कारण भाव संबंध नहीं होता ।

भाष्य विस्तार = (युगपज्जायमानयोः) समाने क्षणे काले वा जायमानयोः पदार्थयोः (कार्यकारणभावः-न) अस्येदं कारणं कार्यं वा न व्यवतिष्ठते समान काल में अथवा समान क्षण में दो वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं उन दोनों में ये इसका कारण है और ये इसका कार्य है ये व्यवस्था नहीं बनती (क्योंकि कारण कार्य आगे पीछे होने चाहिए) यतः कार्यात् पूर्वमेव कारणेन भवितव्यं काय च कारणात् पश्चादेव प्रवर्तते क्योंकि कार्य से कारण पहले ही होना चाहिए और जो कार्य है वह कारण के पश्चात् ही होता है । अतएव

स्याद् दृष्टान्तासिद्धिस्तस्य क्षणिकत्वात् तस्मात् क्षणिकवादो न साधुस्तत्र नहि स्याद् बन्धमोक्षव्यवस्था
॥ ३७ ॥

अथ च -

युगपज्जायमानयोर्न कार्यकारणभावः ॥ ३८ ॥

(युगपज्जायमानयोः) समाने क्षणे काले वा जायमानयोः पदार्थयोः (कार्यकारणभावः-न)
अस्येदं कारणं कार्यं वा न व्यवतिष्ठते यतः कार्यात् पूर्वमेव कारणेन भवितव्यं कार्यं च कारणात्
पश्चादेव प्रवर्तते। अतएव हेतुदृष्टान्तयोरपि न योगपद्यं समानक्षणत्वं भवितुमर्हति, न ह्येकस्मिन् क्षणे
तयोः हेतुदृष्टान्तभावनिश्रयः सम्भवति तत्र पौर्वापर्यस्यावश्यम्भावात् तस्मात् क्षणिकवादे बन्धस्य केनापि
सह कार्यत्वानुपपत्तिः ॥ ३८ ॥

हेतुदृष्टान्तयोरपि न योगपद्यं समानक्षणत्वं भवितुमर्हति अतएव हेतु दृष्टान्त भी एक साथ एक उपस्थित नहीं हो
सकते, न ह्येकस्मिन् क्षणे तयोः हेतुदृष्टान्तभावनिश्रयः सम्भवति एक क्षण में उन दोनों का स्वरूप निश्चय
नहीं हो सकेगा कि ये हेतु हैं और ये इसका दृष्टान्त तत्र पौर्वापर्यस्यावश्यम्भावात् तस्मात् क्षणिकवादे
बन्धस्य केनापि सह कार्यत्वानुपपत्तिः वहाँ उनमें आगे पीछे होना ये अवश्यमभावी है, इसलिए क्षणिकवाद में
बंधन का किसी भी पदार्थ के साथ कार्यत्व कि असिद्धि है ॥ ३८ ॥

यतः -

पूर्वापाये उत्तरायोगात् ॥ ३९ ॥

सूत्रार्थ= पूर्व वस्तु नष्ट हो जाने पर दूसरी वस्तु के साथ उसका कोई संबंध न बनने से क्षणिकवाद में
कारण कार्य सिद्धान्त ठीक नहीं है ।

भाष्य विस्तार = (पूर्वापाये-उत्तरायोगात्) यदा सर्वं क्षणिकं तदा पूर्वस्यापाये नाशे सति
तदुत्तरवर्तिन उत्पन्नस्य तेन नष्टेन पदार्थेन सहायोगात् सम्बन्धाभावान्न स पूर्वः पदार्थस्तस्योत्तरस्य कारणमथ
सिद्धांती कहते हैं कि- पूर्वपक्षी के मत है प्रत्येक वस्तु क्षणिक है तो पहले क्षण वाली वस्तु का नाश होने पर
उसके पश्चात अगले क्षण में जो वस्तु उत्पन्न हुई उस दूसरे क्षण वाले उत्पन्न पदार्थ का कोई संबंध होगा नहीं,
इसलिए पहले वाला पदार्थ दूसरे वाले पदार्थ का कारण नहीं बन सकता न चोत्तरः पदार्थस्तस्य पूर्वस्य
पदार्थस्य कार्यमस्ति सर्वस्य क्षणिकत्वात् सम्बन्धाभावात् और जैसे पहले वाला पदार्थ दूसरे का कारण
नहीं ऐसे ही दूसरे वाला पदार्थ पहले का कार्य भी नहीं है, उनकी मान्यता में हर वस्तु क्षणिक होने से, और जब
क्षणिक है तो आपस में किसी का संबंध भी नहीं बनता, इसलिए कोई किसी का कार्य और किसी का कारण
भी नहीं सिद्ध होता ॥ ३९ ॥

पुनश्च -

तद्भावे तदयोगादुभयव्यभिचारादपि न ॥ ४० ॥

सूत्रार्थ= कारण के होने पर भी कार्य के न होने से दोनों प्रकार से कार्य कर्ण का नियम भंग होने से
क्षणिकवाद में कार्य कारण संबंध सिद्ध नहीं होता है ।

यतः -

पूर्वापाये उत्तरायोगात् ॥ ३९ ॥

(पूर्वापाये-उत्तरयोगात्) यदा सर्वं क्षणिकं तदा पूर्वस्यापाये नाशे सति तदुत्तरवर्तिन उत्पन्नस्य तेन नष्टेन पदार्थेन सहायोगात् सम्बन्धाभावान्न स पूर्वः पदार्थस्तस्योत्तरस्य कारणमथ न चोत्तरः पदार्थस्तस्य पूर्वस्य पदार्थस्य कार्यमस्ति सर्वस्य क्षणिकत्वात् सम्बन्धाभावात् ॥ ३९ ॥

पुनश्च -

तद्भावे तदयोगादुभयव्यभिचारादपि न ॥ ४० ॥

(तद्भावे तदयोगात्) तस्य पूर्वस्य भावे विद्यमानत्वे तस्योत्तरस्य पदार्थस्यासम्बन्धात् तदा तस्य विद्यमानत्वात् (उभयव्यभिचारात्-अपि न) एवमुभयव्यभिचारात् क्षणिकयोः पूर्वोत्तरयोरुभयथापि

भाष्य विस्तार = (तद्भावे तदयोगात्) तस्य पूर्वस्य भावे विद्यमानत्वे तस्योत्तरस्य पदार्थस्यासम्बन्धात् तदा तस्य विद्यमानत्वात् पूर्व क्षण वाले पदार्थ के विद्यमान होने पर उस समय में दूसरे क्षण वाले पदार्थ का उससे संबंध नहीं है, तब उसके पहले वाले पदार्थ के विद्यमान होने से (उभयव्यभिचारात्-अपि न) एवमुभयव्यभिचारात् क्षणिकयोः पूर्वोत्तरयोरुभयथापि तयोरसम्बद्धत्वात् कार्यकारणभावो न क्षणिकवादे सम्भवति दोनों ही पक्षों में दोष आने से इसलिए क्षणिक लोग जो क्षणिक है, पूर्व पदार्थ और उत्तर पदार्थ इन दोनों के क्षणिक होने से दोनों प्रकार से उनका संबंध सिद्ध न हो पाने के कारण क्षणिकवाद में कार्य कारण भाव संबंध सिद्ध नहीं हो सकता ॥ ४० ॥

पुनःशंकयित्वा समाधत्ते - पुनः शंका उठाके समाधान करते हैं-

पूर्वभाविमात्रे न नियमः ॥ ४१ ॥

सूत्रार्थ= पूर्वक्षणवर्ती मात्र होने से कोई वस्तु किसी उत्तरक्षणवर्ती वस्तु का कारण नहीं बन सकती।

भाष्य विस्तार = (पूर्वभाविमात्रे नियमः-न) यो यो हि पूर्वभावी पूर्वक्षणावर्ती स स पदार्थः तत्क्षणेऽवर्तमानोऽपि पूर्ववर्तित्वात् कारणं भवेदितिमात्रकथने नियमो नास्ति न भवितुमर्हति नोपलभ्यते जो जो वस्तु पूर्वभावी है अर्थात् पूर्वक्षणवर्ती है, वह वह पदार्थ दूसरे क्षण में न विद्यमान होता हुआ भी क्योंकि वह पहले था इसलिए कारण नहीं है, ऐसा कहने पर। सिद्धांती कहता है- ऐसा नियम नहीं देखा जाता संसार में कि जो पहले वाला हो वह कारण है और बाद वाला कार्य है (बिना संबंध दिखाये कारण कार्य नहीं माने जा सकते)। यतः पूर्वक्षणवर्ती तु विनष्टो भवति क्षणिकवादे क्योंकि क्षणिकवाद में पूर्वक्षणवर्ती पदार्थ तो नष्ट हो गया पुनरुत्तरक्षणवर्तिनः पदार्थस्य कार्यरूपस्य किंकारणमिति प्रश्नः फिर बाद वाले क्षण में जो कार्यरूपी पदार्थ है उसका कारण कौन है? (नष्ट हुई वस्तु तो कारण नहीं बनती)। यदि हि पदार्थस्याक्षणिकत्वं स्थिरत्वं स्वीक्रियेत यत् कारणपदार्थः स्वकार्यस्य कालेऽपि वर्तते हि तदा तु नियमो भविष्यति यदि ऐसा मान लिया जाए कि पदार्थ का अक्षणिकत्व अर्थात् स्थिरत्व स्वीकार कर लिया जावे। जब कोई कार्य वस्तु उत्पन्न होती है तो उस समय भी कारण द्रव्य उसके अंदर विद्यमान रहता है, तब तो नियम ठीक बैठ जाएगा (कि मट्टी कारण और घड़ा कार्य) यदिदमस्य कारणं कार्येऽन्वयित्वेनावतिष्ठते वस्त्रे तन्तवाभूषणे स्वर्णं

तयोरसम्बद्धत्वात् कार्यकारणभावो न क्षणिकवादे सम्भवति ॥ ४० ॥

पुनःशंकयित्वा समाधत्ते -

पूर्वभाविमात्रे न नियमः ॥ ४१ ॥

(पूर्वभाविमात्रे नियमः-न) यो यो हि पूर्वभावी पूर्वक्षणावर्ती स स पदार्थः तत्क्षणेऽवर्तमानोऽपि पूर्ववर्तित्वात् कारणं भवेदितिमात्रकथने नियमो नास्ति न भवितुमर्हति नापलभ्यते । यतः पूर्वक्षणावर्ती तु विनष्टो भवति क्षणिकवादे पुनरुत्तरक्षणवर्तिनः पदार्थस्य कार्यरूपस्य किंकारणमिति प्रश्नः । यदि हि पदार्थस्याक्षणिकत्वं स्थिरत्वं स्वीक्रियेत यत् कारणपदार्थः स्वकार्यस्य कालेऽपि वर्तते हि तदा तु नियमो

घटे मृत्तिका, यथा उदाहरण देते हैं जैसे अमुक वस्तु इसका कारण है और वह कारण होती हुई कार्य के अन्वित रूप से विद्यमान है उसके साथ सम्बद्ध होकर बैठी है वह कारण वस्तु। जैसे वस्त्र में तन्तु बैठे हैं, आभूषण में स्वर्ण और जैसे घड़े में मिट्टी है। अन्यथा स्वर्ण यद्वा मृत्तिकाऽपि वस्त्रस्य कारणतामापद्येत यदि उनका आपस में संबंध न हो केवल पूर्व भावी मात्र हो, ऐसा मानने पर तो सोना या मिट्टी भी वस्त्र का कारण मान लिए जावेंगे। तस्मान्न क्षणिकवादो युक्तस्तत्र बन्धस्य कारणानुपपत्तिः खलु तिष्ठत्येव इसलिए क्षणिकवाद ठीक नहीं है, उस क्षणिकवाद में बंधन का कारण सिद्ध नहीं होता, ये दोष तो वहाँ पर बना ही रहेगा ॥ ४१ ॥

विज्ञानवादो निरस्यते - विज्ञानवाद का खंडन किया जाता है- (अब यहाँ से नए पक्ष का खंडन करते हैं)

न विज्ञानमात्रं बाह्यप्रतीतेः ॥ ४२ ॥

सूत्रार्थ= पूर्वपक्षी जो कहता है कि संसार में केवल ज्ञान मात्र ही है । हम कहते हैं 'न ऐसी बात नहीं है'। केवल ज्ञान मात्र नहीं है, वस्तुएँ भी हैं। बाह्य इंद्रियों से बाह्य वस्तुओं का प्रत्यक्ष होने के कारण।

भाष्य विस्तार = (विज्ञानमात्रं न) सर्वं विज्ञानमात्रं न विज्ञानातिरिक्तं किञ्चित् तस्मान्न बन्धस्य कारणं वस्तुरूपमन्वेष्ट्यं बन्धश्चापि न वास्तविकस्तस्यापि विज्ञानमात्रत्वादिति त्थं न विज्ञानमात्रम् सिद्धांती ने पूर्वपक्षी का विचार प्रस्तुत किया- इस संसार में सब कुछ ज्ञान मात्र ही है (घड़ी, मोटर, कार, घर, गार्डन आदि आदि वस्तुओं का ज्ञान मात्र ही तो होता है) ज्ञान से अतिरिक्त वस्तु कुछ भी नहीं है, इसलिए बंधन का कारण कोई वस्तु रूप हो उसको खोजने की कोई आवश्यकता ही नहीं है, कि बंधन का कारण क्या है? बंधन भी कोई वास्तविक नहीं है, बंधन का जो ज्ञान हो रहा है वह भी ज्ञान मात्र ही है। यतः (बाह्यप्रतीतेः) बाह्यवस्तुनो बाह्यैरिन्द्रियैः प्रतीतिर्भवति यतः क्योंकि बाह्य वस्तुओं की बाह्य इंद्रियों से प्रतीति हो रही है। इसलिए वस्तु भी है, केवल ज्ञान मात्र नहीं है। बाह्यैरिन्द्रियैः प्रतीयमानो घटोऽयं घटोऽस्तीति प्रतीयते न तु 'अहं घटः' इति प्रतीयते बाह्य इंद्रियों से वस्तु की प्रतीति होते हुए ऐसा अनुभव होता है कि 'यह घड़ा है', न कि 'मैं घड़ा हूँ' ॥ ४२ ॥

पुनश्च -

तदभावे तदभावाच्छून्यं तर्हि ॥ ४३ ॥

सूत्रार्थ= यदि वस्तु का अभाव मान लिया जाए, तो ज्ञान का भी अभाव हो जाएगा। फिर तो शून्य की

भविष्यति यदिदमस्य कारणं कार्येऽन्वयित्वेनावतिष्ठते वस्त्रे तन्तवाभूषणे स्वर्णं घटे मृत्तिका, यथा अन्यथा स्वर्णं यद्वा मृत्तिकाऽपि वस्त्रस्य कारणतामापद्येत । तस्मान्न क्षणिकवादो युक्तस्तत्र बन्धस्य कारणानुपपत्तिः खलु तिष्ठत्येव ॥ ४१ ॥

विज्ञानवादो निरस्यते -

न विज्ञानमात्रं बाह्यप्रतीतेः ॥ ४२ ॥

(विज्ञानमात्रं न) सर्वं विज्ञानमात्रं न विज्ञानातिरिक्तं किञ्चित् तस्मान्न बन्धज्ञस्य कारणं वस्तुरूपमन्वेष्ट्यं बन्धश्चापि न वास्तविकस्तस्यापि विज्ञानमात्रत्वादिति त्थं न विज्ञानमात्रम् । यतः (बाह्यप्रतीतेः) बाह्यवस्तुनो बाह्यैरिन्द्रियैः प्रतीतिर्भवति यतः । बाह्यैरिन्द्रियैः प्रतीयमानो घटोऽयं प्रतीति होगी ।

भाष्य विस्तार = बाह्यविषयस्याभावे तस्य विज्ञानस्याभावोऽननुभवो भवेत् । बाह्यविषयस्याभावे यदि बाह्य विषय न हो, अगर वस्तु ही नहीं है तस्य विज्ञानस्याभावो तो उसका ज्ञान भी नहीं होना चाहिए अननुभवो भवेत् फिर उसका अनुभव भी नहीं होना चाहिए । जो अनुभव वहाँ हो रहा है (जैसे अलग-अलग घड़ी, पंखा, मोटर, कार आदि दिख रहे हैं) तदा शून्यं प्रस्यज्यते । फिर तो शून्य ही होगा, कुछ भी न दिखेगा, किसी भी वस्तु का ज्ञान भी न होगा (जैसे बंद कमरे में गए और अंधेरा है चारों ओर तो हमें कुछ नहीं दिखता, तो सारी दुनियाँ में ऐसा ही दिखना चाहिए, हर जगह शून्य ही हो, किसी भी वस्तु का ज्ञान नहीं होना चाहिए । क्योंकि वस्तु तो है ही नहीं आपके विचार के आधार पर) तस्मात् इसलिए जो आप बात कह रहे हैं वह ठीक नहीं है । न विज्ञानमात्रम् केवल ज्ञान मात्र ही नहीं है, वस्तुस्थित्या भवितव्यमेव, वस्तु कि स्थिति भी होना चाहिए अर्थात् वस्तु का अपना अस्तित्व भी होना चाहिए, तभी हमें उसका ज्ञान हो पाएगा अतश्च बन्धकारणस्यान्वेषणं तु कार्यमेव ॥ ४३ ॥

अतः जब वस्तुओं का ज्ञान हो रहा है तो इसका अर्थ हुआ कि वस्तुएँ हैं, यदि वस्तुएँ हैं तो बंधन भी है और बंधन है तो कोई न कोई कारण भी है, और यदि कोई कारण है तो उसकी खोज करनी चाहिए, फिर उस कारण को दूर कारण चाहिए । तभी तो दुःखों से मुक्ति मिलेगी ॥ ४३ ॥

शून्यवाद उत्थाप्यते - अब विज्ञान मात्र के खंडन के बाद एक और पक्ष शून्यवाद को उठाते हैं- अब शून्य वाद को उठाया जाता है

शून्यं तत्त्वं भावो विनश्यति वस्तुधर्मत्वाद् विनाशस्य ॥ ४४ ॥

सूत्रार्थ= पूर्वपक्षी कहता है- शून्य ही सत्य है, क्योंकि जो सत्तात्मक वस्तु है वह एक दिन नष्ट हो जाती है । विनाश तो प्रत्येक वस्तु का धर्म है ।

भाष्य विस्तार = शून्यं खलु तत्त्वं वस्तुत्वम् । शून्यवादी कहता है- यदि ज्ञान मात्र ही है वस्तु कुछ नहीं, तो जब वस्तु ही नहीं तो ज्ञान किसका? कुतः क्यों भावः सत्तात्मकः पदार्थो विनश्यति हि वस्तुधर्मत्वाद् शून्य ही सत्य है । सिद्धांती पूछता है कि कैसे है? तब पूर्वपक्षी कहता है- भावः अर्थात् जो सत्तात्मक पदार्थ है वह नष्ट हो जाता है (रेल, गाड़ी, मकान, मोटर आदि सब टूट-फुट जाएगा) विनाशः खलु वस्तुधर्मो विनाश

घटोऽस्तीति प्रतीयते न तु 'अहं घटः' इति प्रतीयते ॥ ४२ ॥

पुनश्च -

तदभावे तदभावाच्छून्यं तर्हि ॥ ४३ ॥

(तदभावे तदभावात्) बाह्यविषयस्याभावे तस्य विज्ञानस्याभावोऽननुभवो भवेत् (तर्हि शून्यम्) तदा शून्यं प्रस्यज्यते । तस्मान्न विज्ञानमात्रम्, वस्तुस्थित्या भवितव्यमेव, अतश्च बन्धकारणस्यान्वेषणं तु कार्यमेव ॥ ४३ ॥

शून्यवाद उत्थाप्यते -

शून्यं तत्त्वं भावो विनश्यति वस्तुधर्मत्वाद् विनाशस्य ॥ ४४ ॥

वस्तु का धर्म होने से वस्तुनो भावस्य सत्तात्मकस्य पदार्थस्य विनाशो धर्मः, वस्तु अर्थात् जितने भी भावात्मक सत्तात्मक पदार्थ हैं उन सबका ये धर्म है विनाश (हर वस्तु अंत में नष्ट हो जाएगी) सति विनाशो शून्यं सम्पद्यते और जब हर वस्तु का विनाश हो जाएगा तब शून्य ही होगा (हमारे जितने महापुरुष अथवा पूर्वज थे वे अब कहाँ हैं? शरीर मृत्यु को प्राप्त हो गया है। अब हम उनको नहीं देख सकते और जो पुराने महल, किले आदि थे वे भी समय के साथ नष्ट हो गए । तो फिर सब शून्य हो गया न। इसलिए शून्यवाद ही सत्य है) पुनर्बन्धकारणस्य तथा मोक्षस्यापि नाशो भविष्यति तदा बन्धकारणान्वेषणस्यावश्यकतैव न भवति ॥ ४४ ॥ तो हर वस्तु नष्ट होने वाली है पुनर्बन्धकारणस्य फिर बंधन का जो कारण है वह भी नष्ट हो जाएगा तथा और मोक्षस्यापि नाशो भविष्यति मोक्ष का भी नाश हो जाएगा तदा तब बन्धकारणान्वेषणस्यावश्यकतैव न भवति बंधन के कारण का अन्वेषण खोज करने कि अवश्यता ही नहीं है। जब हर वस्तु नष्ट हो ही रही है तो फिर क्यों बंधन के कारण को नष्ट करने के लिए पुरुषार्थ करें? ॥ ४४ ॥

उत्तरयति - अब सिद्धांती उत्तर देता है -

अपवादमात्रमबुद्धानाम् ॥ ४५ ॥

सूत्रार्थ= जो अबुद्ध अज्ञानी जन हैं, उनका यह कथन प्रलाप मात्र है कि सब कुछ शून्य ही होगा ।

भाष्य विस्तार = शून्यं तत्त्वमथ च भावो विनश्यतीति कथनं खलु प्रलापमात्रमज्ञानां जनानाम् । सिद्धांती कहता है ये तो अज्ञानी कमबुद्धि वाले लोगों कि बातें हैं। शून्यं तत्त्वम् शून्य ही सत्य है, क्यों अथ च भावो विनश्यति जो सत्तात्मक वस्तु है वह अंत में नष्ट हो ही जाएगी जब वह नष्ट हो जाएगी तब शून्य ही बचेगा। इति कथनं खलु प्रलापमात्रमज्ञानां जनानाम् ये कथन तो अज्ञानी लोगों का प्रलाप मात्र है। यतः शून्यस्य साधनाय प्रमाणस्य स्वीकारः शून्यत्वघातकः सिद्धांती कहता है कि- 'शून्य सत्य है' ये आपने प्रतिज्ञा की। अब इसकी सिद्धि के लिए कोई प्रमाण तो दोगे, बिना प्रमाण के तो कोई बात सिद्ध नहीं होती। यतः क्योकि शून्यस्य साधनाय प्रमाणस्य शून्यत्व की सिद्धि के लिए जो प्रमाण दोगे अथवा प्रमाण मानोगे वो स्वीकारः शून्यत्वघातकः उस प्रमाण को स्वीकार करना शून्यत्व का घातक होगा (जो प्रमाण दोगे, जिस प्रमाण को सच्चा मानकर कहोगे, वह वास्तविक होगा, फिर उसकी सत्ता स्वीकारने से शून्यवाद तो नष्ट ही हो जाएगा) प्रमाणस्य सद्भावात् प्रमाण की सत्ता तो विद्यमान है (इसलिए आपका पक्ष 'सर्वं शून्यम्' सिद्ध नहीं हो

सांख्यदर्शनम्-प्रथमोऽध्यायः

(शून्यं तत्त्वम्) शून्यं खलु तत्त्वं वस्तुत्त्वम् । कुतः (भावः विनश्यति) भावः सत्तात्मकः पदार्थो विनश्यति हि वस्तुधर्मत्वाद् विनाशस्य) विनाशः खलु वस्तुधर्मो वस्तुनो भावस्य सत्तात्मकस्य पदार्थस्य विनाशो धर्मः, सति विनाशे शून्यं सम्पद्यते पुनर्बन्धकारणस्य तथा मोक्षस्यापि नाशो भविष्यति तदा बन्धकारणन्वेषणस्यावश्यकतैव न भवति ॥ ४४ ॥

उत्तरयति -

अपवादमात्रमबुद्धानाम् ॥ ४५ ॥

(अबुद्धानाम्-अपवादमात्रम्) शून्यं तत्त्वमथ च भावो विनश्यतीति कथनं खलु प्रलापमात्रमज्ञानां

पाया) तथाऽस्वीकारे प्रमाणाभावादसिद्धिः शून्यवादस्य । यदि आप प्रमाण को स्वीकार न करोगे तो- प्रमाण के अस्वीकार करने से शून्यवाद की सिद्धि नहीं होगी (क्योंकि प्रमाण के बिना कोई वस्तु सिद्ध नहीं होती) शून्यस्य साधनाय भावो विनश्यतीति कथने प्रथमं भावं स्वीकृत्यैव पश्चात् तस्य विनाशो दर्शितः, अब पूर्वपक्षी ने जो कहा था 'शून्यं तत्त्वम भावो विनश्यति' पहले प्रतिज्ञा कि 'शून्य ही सत्य है', अब इसको सिद्ध करने के लिए इसने हेतु दिया 'भावो विनश्यति' जितनी भी सत्तात्मक वस्तुएँ हैं वह अंत में नष्ट हो जाती हैं । तो नाश तो बाद में कहा पहले वस्तु कि सत्ता को स्वीकार किया है उसके बाद इन सबके नष्ट होना दिखाया है । विनाशोऽपि न कस्यचित् सर्वथाऽभावो भवति विनाश का अर्थ है किसी भी वस्तु का सर्वथा विनाश अभाव नहीं होता (मकान को तोड़ेंगे तो ईंट पत्थर बचेंगे उनको तोड़ेंगे तो उसके छोटे छोटे कण बचेंगे, लकड़ी को जलाएंगे तो राख बचेगी, अर्थात् सर्वथा लोप नहीं होगा) पुनर्निर्वयवस्यात्मनस्तु न विनाशसम्भवस्तस्याखण्डत्वात्, फिर जो आत्मा है वह तो निरवयव है, उसके तो खण्ड होंगे नहीं, फिर उसका नाश कैसे संभव है । इसलिए आत्मा के अखंड रहने से उसका विनाश संभव नहीं है । खण्डवान् पदार्थ एव विनष्टो भवति जो खण्डवान् पदार्थ है वह ही विनष्ट होता है खण्डं खण्डं भूत्वा, खण्ड खण्ड हो करके खण्डखण्डभाव एव विनाशस्यार्थः खण्ड खण्ड हो जाना ही विनाश का अर्थ है पुनः खण्डानां सत्तासद्भावान्न शून्यमिति फिर खंडों कि सत्ता तो रहेगी, उनका भाव तो रहेगा, इसलिए सब कुछ शून्य तो नहीं होगा ॥ ४५ ॥

अपरञ्च -

उभयपक्षसमानक्षेपत्वादयमपि ॥ ४६ ॥

सूत्रार्थ= जितनी शक्ति पिछले दो हेतुओं में थी उतनी ही शक्ति इस (शून्यवाद) में भी है, जैसे पहले के दो पक्ष खंडित हो गए ऐसे ही यह पक्ष भी खंडित हो गया, ऐसा जानना चाहिए ।

भाष्य विस्तार = उभययोः क्षणिकपक्षविज्ञानमात्रपक्षयोस्तुल्यनिराकरणहेतुत्वादयं शून्यवादपक्षोऽपि निराकृतोऽथायुक्तश्च विज्ञेयः । सिद्धांती कहते हैं उभययोः पहले जो दो पक्ष बताए थे क्षणिकपक्षविज्ञानं क्षणिकवाद और विज्ञानवाद । अत्र पक्षयोस्तुल्यनिराकरणहेतुत्वाद इन दोनों पक्षों के तुल्य जिन हेतुओं से पिछले दो हेतुओं का खंडन किया उन्ही हेतुओं से इस पक्ष का भी खंडन हो जाता है, इस कारण से ये शून्यवादपक्षोऽपि शून्यवाद भी निराकृतोऽथायुक्तश्च विज्ञेयः । खंडित हो गया ऐसा समझ लेना चाहिए और ये पिछले दो गलत हेतुओं के समान ही अयुक्त हैं । तत्र क्षणिकपक्षे विज्ञानपक्षे च यथा

सांख्यदर्शनम्-प्रथमोऽध्यायः

जनानाम् । यतः शून्यस्य साधनाय प्रमाणस्य स्वीकारः शून्यत्व-घातकः प्रमाणस्य सद्भावात् तथाऽस्वीकारे प्रमाणाभावादसिद्धिः शून्यवादस्य । शून्यस्य साधनाय भावो विनश्यतीति कथने प्रथमं भावं स्वीकृत्यैव पश्चात् तस्य विनाशो दर्शितः, विनाशोऽपि न कस्यचित् सर्वथाऽभावो भवति पुनर्निरवयवस्यात्मनस्तु न विनाशसम्भवस्तस्याखण्डत्वात्, खण्डवान् पदार्थ एव विनष्टो भवति खण्डं खण्डं भूत्वा, खण्डखण्डभाव एव विनाशस्यार्थः पुनः खण्डानां सत्तासद्भावान्न शून्यमिति ॥ ४५ ॥

अपरञ्च -

उभयपक्षसमानक्षेमत्वादयमपि ॥ ४६ ॥

(उभयपक्षसमानक्षेमत्वात्-अयम्-अपि) उभययोः क्षणिकपक्षविज्ञानमात्रपक्ष-

प्रत्यभिज्ञया बाह्यप्रतीत्या च क्षणिकविज्ञानपक्षनिराकरणं कृतं तथैव प्रत्यभिज्ञाप्रतीतिभ्यां शून्यवादस्यापि निराकरणं भवतीति विज्ञेयम् ॥ ४६ ॥ यथा जैसे तत्र वहाँ क्षणिकपक्षे विज्ञानपक्षे च क्षणिक पक्ष और विज्ञान पक्ष का (क्षणिकवाद और विज्ञानवाद कि मान्यता में जिस प्रकार से दो हेतु दिये थे) प्रत्यभिज्ञया बाह्यप्रतीत्या च प्रत्यभिज्ञा और बाह्य प्रतीति । हमें वस्तुओं की पहचान हो जाती है, (मेरी घड़ी-कपड़े-कार आदि) उस पहचान के कारण क्षणिकविज्ञानपक्षनिराकरणं कृतं क्षणिक और विज्ञान पक्ष का खंडन किया तथैव उसी प्रकार से प्रत्यभिज्ञाप्रतीतिभ्यां शून्यवादस्यापि निराकरणं भवति वस्तुओं की प्रतीति के कारण से शून्यवाद का भी निराकरण हो जाएगा इति विज्ञेयम् उन्ही दो हेतुओं से शून्यवाद का खंडन हो गया यह जानना चाहिए ।

अथ च -

अपुरुषार्थत्वमुभयथा ॥ ४७ ॥

सूत्रार्थ= दोनों ही प्रकार से मानने पर जीवात्मा का पुरुषार्थ व्यर्थ जाएगा ।

भाष्य विस्तार = शून्यवादे खलूभयथा स्यादपुरुषार्थत्वं तत्र स्वस्यात्मनः शून्यत्वाय-अभावाय को यतेत तथा शून्यरूपाय मोक्षायपि कथं शास्त्रोपदेशः स्यात् । सिद्धांती कह रहे हैं शून्यवादे अर्थात् शून्यवाद में खलू अभयथा स्यात् अपुरुषार्थत्वं दोनों ही तरह से पुरुषार्थ हीनता होगी । यदि शून्यवाद मान ले तो जो पुरुष का प्रयोजन (सब दुःखों से छूटना वह) सिद्ध होगा ही नहीं । क्योंकि शून्यवाद की मान्यता तो “सर्वशून्यम्” वाली है । यदि शून्य को ही सत्य मान लिया जाए तो अंत में आत्मा को भी खत्म मानना पड़ेगा तत्र वहाँ स्वस्यात्मनः अपनी आत्मा को भी शून्यत्वाय-अभावाय कोयतेत शून्य मानना पड़ेगा, क्या हम स्वयं के अभाव के लिए प्रयत्न कर रहे हैं? हर कोई ये चाहता है कि “दुःख हट जाए”, ‘मैं स्वयं हट जाऊं ऐसा कोई नहीं चाहता’, तथा और उस शून्यरूपाय शून्य स्वरूप मोक्षायपि मोक्ष को प्राप्त करने के लिए कथं शास्त्रोपदेशः स्यात् शास्त्र का उपदेश कैसे होगा । तथा और यदि सर्वस्य सब कुछ क्षणिकत्वे क्षणिक मान लिया जाए तो बन्धोऽपि बंधन भी क्षणिको क्षणिक है मोक्षोऽपि मोक्ष भी क्षणिकः क्षणिक है । तथा क्षणिकस्य बन्धस्य निवृत्त्यर्थः कृतः पुरुषार्थोऽपुरुषार्थः स्यात् तब तो क्षणिक बंधन कि निवृत्ति के लिए किया गया पुरुषार्थ भी अपुरुषार्थ हो जाएगा नहि पुरुषार्थक्षणे बन्धोऽवतिष्ठते क्योंकि जब हम पुरुषार्थ करेंगे

सांख्यदर्शनम्-प्रथमोऽध्यायः

योस्तुल्यनिराकरणहेतुत्वादयं शून्यवादपक्षोऽपि निराकृतोऽथायुक्तश्च विज्ञेयः । तत्र क्षणिकपक्षे विज्ञानपक्षे च यथा प्रत्यभिज्ञया बाह्यप्रतीत्या च क्षणिकविज्ञानपक्षनिराकरणं कृतं तथैव प्रत्यभिज्ञाप्रतीतिभ्यां शून्यवादस्यापि निराकरणं भवतीति विज्ञेयम् ॥ ४६ ॥

अथ च -

अपुरुषार्थत्वमुभयथा ॥ ४७ ॥

(उभयथा-अपुरुषार्थत्वम्) शून्यवादे खलूभयथा स्यादपुरुषार्थत्वं तत्र स्वस्यात्मनः शून्यत्वाय-
अभावाय को यतेत तथा शून्यरूपायं मोक्षायापि कथं शास्त्रोपदेशः स्यात् । तथा सर्वस्य क्षणिकत्वे बन्धोऽपि
~~क्षणिको मोक्षोऽपि क्षणिकस्तथा क्षणिकस्य बन्धस्य निवृत्त्यर्थः कृतः पुरुषार्थोऽपुरुषार्थः स्यान्नहि पुरुषार्थक्षणे~~

(इस पहले क्षण में बंधन है और हर वस्तु क्षणिक है, और हम बंधन से छुटना चाहते हैं उसके लिए पुरुषार्थ करेंगे अगले क्षण में पुरुषार्थ करने पर उसके अगले क्षण में बंधन तो स्वतः ही खत्म हो जाएगा? क्योंकि हर वस्तु एक क्षण तक रहने वाली है, तो बंधन ही खत्म हो जाएगा तो पुरुषार्थ क्यों करें? दूसरा तथ्य यह है कि मान लेते हैं बंधन से मुक्ति के लिए पुरुषार्थ करें अर्थात् मोक्ष के लिए पुरुषार्थ करते हैं किन्तु वह भी तो एक क्षण का ही है, फिर पुरुषार्थ क्यों करें?) मोक्षस्यापि क्षणिकत्वात् तदर्थः कृतः पुरुषार्थोऽपुरुषार्थो भवेत् क्षणान्तरेऽस्थिरत्वात् ॥ ४७ ॥ फिर मोक्ष के भी क्षणिक होने से उसके लिया किया गया पुरुषार्थ व्यर्थ हो जाएगा, इसलिए क्षणिकवाद कि मान्यता ठीक नहीं है ।।

गतिनिमित्तो बन्धः स्यादिति पक्षमुत्थाप्य निराकरोति सूत्रद्वयेन - अगले दो सूत्रों से सूत्रकार “ गति के कारण से बंधन हो सकता है”, इस पक्ष को उठाते हैं और फिर उसका उत्तर भी देते हैं- (यहाँ दो सूत्रों से “ बंधन का कारण गति नहीं है” इस को कहेंगे)

न गति विशेषात् ॥ ४८ ॥

सूत्रार्थ= जीवात्मा में कोई अवयवों में होने वाली गति हो, उस गति विशेष के कारण जीवात्मा का बंधन नहीं है। क्यों

निष्क्रियस्य तदसम्भवात् ॥ ४९ ॥

सूत्रार्थ= उसमें ऐसी कोई क्रिया होती ही नहीं है, तो वह बंधन का कारण भी नहीं हो सकती ।

भाष्य विस्तार = एतयोः सूत्रयोरेकवाक्यताऽस्ति - एतयोः इन दोनों सूत्रयोः सूत्रों में एक वाक्यता परस्पर संबंध अस्ति है

भाष्य विस्तार = गतिविशेषादात्मनो बन्धः स्यात्, यदि आत्मा का बंधन गति विशेष के कारण मान लिया जाए, जैसे कि बताते हैं अधमगत्या लोके बन्धमाप्नोति जन इत्यपि न। अधम गति से मनुष्य संसार में बंधन को प्राप्त होता है, ये बात भी ठीक नहीं है। (ये जो व्याख्या स्वामी ब्रह्ममुनि जी ने कि है वह ठीक नहीं है) यतः क्योंकि निष्क्रियस्य आत्मनो गति असंभवात् आत्मा निष्क्रिय है और उसमें ये गति असंभव है । (ये बात ब्रह्ममुनि जी की शास्त्रों के अनुकूल नहीं है)

बन्धोऽवतिष्ठते मोक्षस्यापि क्षणिकत्वात् तदर्थः कृतः पुरुषार्थोऽपुरुषार्थो भवेत् क्षणान्तरेऽस्थिरत्वात् ॥ ४७ ॥

गतिनिमित्तो बन्धः स्यादिति पक्षमुत्थाप्य निराकरोति सूत्रद्वयेन -

न गति विशेषात् ॥ ४८ ॥

निष्क्रियस्य तदसम्भवात् ॥ ४९ ॥

एतयोः सूत्रयोरेकवाक्यताऽस्ति -

(गतिविशेषात्-न) गतिविशेषादात्मनो बन्धः स्यात्, अधमगत्या लोके बन्धमाप्नोति जन इत्यपि

अब इसकी सही व्याख्या क्या है? वह इस प्रकार से है- यहाँ पर गति का अर्थ ऊंची नीची योनि का प्राप्त होना मत करो । यहाँ गति का अर्थ करेंगे- “ अवयवों में होने वाली गति ” “जैसे सावयव (सेव केले आदि पदार्थों में) द्रव्यों में संघात पदार्थों में गति होती है, ऐसी गति से जीवात्मा का बंधन नहीं हुआ । क्यों नहीं हुआ ? आत्मा ऐसी गति से निष्क्रिय होने से, क्योंकि उसमें को अवयव है ही नहीं । तो फिर उस गति को बंधन का कारण मानना भी ठीक नहीं ’ । ये अर्थ करना ठीक बैठेगा ।

पुनश्च -

मूर्तत्वाद् घटादिवत्समानधर्मापत्तावपसिद्धान्तः ॥ ५० ॥

सूत्रार्थ= घड़े आदि के समान मूर्त=संघात होने से आत्मा में घड़े आदि के समान रूप आदि धर्म प्राप्त होते हैं, जो कि अपसिद्धान्त=अनुचित सिद्धान्त है । (अतः घट आदि में गति=परिणाम के समान आत्मा में ऐसा परिणाम=गति नहीं होती है) इसलिए आत्मा का गति के कारण बंधन नहीं होता ।

भाष्य विस्तार = गतेः सम्भवः खलु वस्तुनो मूर्तत्वाद् घटादिवत्, गतेः गति का जो संभवः संभव है सड़ना-गलना, बढ़ना -घटना खलु ये तो वस्तुनों वस्तुओं के मूर्तत्वाद मूर्त होने में है घटदिवत् जैसे घड़े आदि पदार्थ । तो वस्तु के मूर्त होने से उसमें परिवर्तन संभव है । यथा घटादौ गतिरूपलभ्यते तस्य मूर्तत्वात् । यथा जैसे घटादि घड़े आदि में गतिः उपलभ्यते गति उपलब्ध होती है तस्य उसके मूर्तत्वात् मूर्त होने से, ठोस होने से, परमाणु रूप होने से आत्मनि गतिस्वीकारे घटादिसमानधर्माणां कठोरत्वघनत्वखण्डवत्वरूपादिमत्त्वानामापत्तिर्भवेत् तदा चापसिद्धान्तः प्रसज्यते, यदि आत्मा में भी गति मान लें जैसे घड़े आदि में होती है आत्मनि आत्मा में गतिस्वीकारे गति स्वीकार कर लेने पर घटादिसमानधर्म जैसे घड़े आदि का धर्म होता है कठोरत्व कठोर होना, घनत्व स्थान घेरने वाला घना हो जाना, खंड्वत्त्व उसमें भी अनेक टुकड़े टुकड़े मानने पड़ेंगे रूपादिमात्त्वानाम घड़े के समान आत्मा में भी रूप आदि मानने पड़ेंगे , तो इस प्रकार से बहुत सारे घट के समान धर्म आत्मा में मनाने पड़ेंगे तदा तब तो च अपसिद्धान्त स्वयं अपनी बात का खंडन करने का दोष आएगा । (न्यायदर्शन की भाषा में ‘अपसिद्धान्त’ निग्रह स्थान का नाम है) तस्मादात्मनि न गतिसम्भवोऽतो न गतिविशेषात् तस्य बन्धः कल्पनीयः ॥ ५० ॥

न। यतः (निष्क्रियस्य तदसम्भवात्) निष्क्रियस्यात्मनो गत्यसम्भवात् ॥ ४८- ४९ ॥

पुनश्च -

मूर्तत्वाद् घटादिवत्समानधर्मापत्तावपसिद्धान्तः ॥ ५० ॥

(मूर्तत्वात्-घटादिवत्) गतेः सम्भवः खलु वस्तुनो मूर्तत्वाद् घटादिवत्, यथा घटादौ गतिरुपलभ्यते तस्य मूर्तत्वात् (समानधर्मापत्तौ अपसिद्धान्तः) आत्मनि गतिस्वीकारे घटादिसमानधर्माणां कठोरत्वघनत्वखण्डवत्वरूपादिमत्त्वानामापत्तिर्भवेत् तदा चापसिद्धान्तः प्रसज्यते, तस्मादात्मनि न गतिसम्भवोऽतो न गतिविशेषात् तस्य बन्धः कल्पनीयः ॥ ५० ॥

अथ च -

गतिश्रुतिरप्युपाधियोगादाकाशवत् ॥ ५१ ॥

० ॥ तस्मात् इसलिए आत्मनि आत्मा में न गति संभवो गति होना संभव नहीं है, अतो इसलिए गतिविशेषात् गति विशेष के कारण तस्य उसका बन्धः बंधन कल्पनीयः न कल्पित नहीं करना चाहिए ॥ ५० ॥

अथ च -

गतिश्रुतिरप्युपाधियोगादाकाशवत् ॥ ५१ ॥

सूत्रार्थ= जीवात्मा में कहीं गति श्रुति होती भी हो वह उपाधि के योग से है अर्थात् सूक्ष्म शरीर के संबंध से कही गयी है, आकाश के समान ।

न कर्मणाऽप्यतद्धर्मत्वात् ॥ ५२ ॥

सूत्रार्थ= कर्म से भी उसका संबंध नहीं होता । उसके अपने धर्म नहीं होने से । अर्थात् अहंकार आदि के धर्म होने से । इसलिए यह भी बंधन का कारण नहीं है ।

अतिप्रसक्तिरन्यधर्मत्वे ॥ ५३ ॥

सूत्रार्थ= अन्य के धर्म से अन्य का बंधन माने तो अन्याय अव्यवस्था का दोष आएगा ।

निर्गुणादिश्रुतिविरोधश्चेति ॥ ५४ ॥

सूत्रार्थ= यदि शरीर इंद्रियों के धर्म से जीवात्मा का बंधन माने तो निर्गुण आदि श्रुति से भी विरोध आता है ।

एषां सूत्रणामेकवाक्यताऽस्ति - इन सूत्रों में एक वाक्यता है इसलिए एक साथ इनकी व्याख्या करते हैं-

भाष्य विस्तार = (गतिश्रुतिः) या खलु तद्विषयेऽधमा गतिश्रुतिरस्ति 'ये सिद्धान्त अर्थात् वाक्य गलत है फिर भी इसका अनुवाद कर देते हैं- वो जो आत्मा के विषम में अधम गति बताई गई है शास्त्र में जैसे कि "असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः । तांस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥" (यजु ० ४०.३) "असुर्या नाम ते लोका जो लोग असुर कहलाते हैं (स्वार्थी, राक्षस, बेकार, घनित कर्म करने वाले) और अन्धेन तमसाऽऽवृताः खूब गहरे अज्ञान से अंधकार अविद्या से ढंके हुए ये के चात्महनो

न कर्मणाऽप्यतद्धर्मत्वात् ॥५२॥

अतिप्रसक्तिरन्यधर्मत्वे ॥५३॥

निर्गुणादिश्रुतिविरोधश्चेति ॥५४॥

एषां सूत्रणामेकवाक्यताऽस्ति -

(गतिश्रुतिः) या खलु तद्विषयेऽधमा गतिश्रुतिरस्ति “असूर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः । तांस्ते प्रेत्यापिगच्छन्ति ये के चात्मह्नो जनाः ॥” (यजु ० ४०.३) “पापेन पापं लोकं नयति” (प्रश्नो

जनाः और जो कोई संसार में आत्म हनन करने वाले लोग हैं, यहाँ आत्मा का अर्थ है= ईश्वर। ईश्वर का हनन करने वाले (आत्मा ही नहीं मारता फिर ईश्वर कैसे मरेगा, तो यहाँ मारने का अर्थ है “ईश्वर की आज्ञा के विरुद्ध आचरण करने वाले”) जो ईश्वर का विरोध है, (ईश्वर अंदर से सूचना कर रहा है भय, शंका, लज्जा के माध्यम से पर मनुष्य सुनता ही नहीं) तांस्ते प्रेत्यापिगच्छन्ति वे लोग मरने के पश्चात उन दुःख युक्त योनियों में जाएंगे जहाँ भयंकर अज्ञान और दुःख भोगना पड़ता है । ‘हमको इस मंत्र से ये सीख मिलती है कि हम आत्मा का हनन करने वाले नहीं बनें’। “पापेन पापं लोकं नयति” (प्रश्नो ०२.७) प्रश्नोपनिषद् में प्राण के संदर्भ में चर्चा चल रही थी इस प्रसंग के अनुसार “पाप कर्म के द्वारा पाप लोक में जाना पड़ता है”। पिछले सूत्र में अर्थ परिवर्तन किया था उसी के अनुसार यहाँ अर्थ करेंगे कि ‘जीवात्मा में अवयव तो हैं नहीं उसके न होने से उसमें गति भी नहीं जो अवयवों में होती है’ तो फिर यहाँ गति श्रुति कैसे हुई? आत्मा के संदर्भ में सा वह (उपाधियोगात्-आकाशवत्) उपाधिरुपाधानमाश्रयः संसर्गस्तद्योगात्तत्सम्बन्धाद् भवति किलाकाशवत्, तो उपाधिरुपाधानमाश्रयः आत्मा में जो गति है वह शरीर के कारण से है संसर्गस्तद्योगात्तत्सम्बन्धाद् जो संसर्ग वाली वस्तु है उसके संबंध से गति होती है, किलाकाशवत् कैसे होती है? आकाश का दृष्टांत दिया यथाऽकाशो मलिनः। जैसे कहा कि यहाँ आकाश मलिन है, मैला है, धुंधला है, साफ नहीं है। नह्याकाशो मूर्तोऽस्ति तत्र मलिनत्वमुपाधियोगादेव भवति वैसे नह्याकाशो मूर्तोऽस्ति आकाश कोई मूर्त तोस पदार्थ नहीं है, आकाश का कुछ बिगड़ता नहीं है तत्र वहाँ मलिनत्वमुपाधियोगादेव आकाश में जो मैलापन है वह उपाधियोग से मट्टी आदि के संयोग से होता है वास्तव में मूल आकाश में कुछ नहीं बिगड़ता पर धूल मिट्टी के संयोग से हमने उसे धूल धूसरित कह दिया, मलिन कह दिया, तथैवात्मन्यपि गतिश्रुतिरुपाधियोगात् तथैव उसी प्रकार से आत्मनि अपि आत्मा में भी जो गतिश्रुति गतिश्रुति का कथन है उपाधियोगत वह भी उपाधि के संयोग से मानना चाहिए। उपाधानयोगादाश्रययोगात् सूक्ष्मशरीरयोगात्, स्वरूपतो न। आत्मा में जो गति श्रुति होगी वह सूक्ष्म शरीर के संयोग से कही जाएगी, स्वरूप से नहीं।

पुनश्च सा विशेषगतिः पापकर्महेतुत्वात् इतने अंश को छोड़ देते हैं यह प्रसंग विरोध है।

(कर्मणा-अपि न) कृतेन कर्मणाऽऽत्मनि सम्भवतीत्यपि न वक्तुं शक्यते, किए गए कर्म के कारण आत्मा में गति हो जाती हो ऐसा भी नहीं कहा जा सकता (१ ६सूत्र में जो अर्थ लिया था उसी आधार पर यहाँ लेंगे) शरीर आदि इंद्रियों के माध्यम से जो कर्म किए गए वो बंधन के पश्चात किए गए तो ये भी बंधन का कारण नहीं हो सकते क्योंकि कारण तो पहले होना चाहिए। (अतद्धर्मत्वात्) कर्म हि खलु नात्मधर्मः किन्त्वह १ करादिधर्मः कर्म, यदा कर्म हि खलु नात्मधर्मः पुनस्तन्निष्पन्ना गतिः कुतः स्यादात्मनो

सांख्यदर्शनम्-प्रथमोऽध्यायः

० २. ७) सा (उपाधियोगात्-आकाशवत्) उपाधिरुपाधानमाश्रयः संसर्गस्तद्योगात्तत्सम्बन्धाद् भवति किलाकाशवत्, यथाऽकाशो मलिनः। नह्याकाशो मूर्तोऽस्ति तत्र मलिनत्वमुपाधियोगादेव भवति तथैवात्मन्यपि गतिश्रुतिरुपाधियोगात्-उपाधानयोगादाश्रययोगात् सूक्ष्मशरीरयोगात्, स्वरूपतो न।

पुनश्च सा विशेषगतिः पापकर्महेतुत्वात् (कर्मणा-अपि न) कृतेन कर्मणाऽऽत्मनि सम्भवतीत्यपि न वक्तुं शक्यते, यतः (अतद्धर्मत्वात्) कर्म हि खलु नात्मधर्मः किन्त्वहं १ करादिधर्मः कर्म, यदा कर्म हि खलु नात्मधर्मः पुनस्तन्निष्पन्ना गतिः कुतः स्यादात्मनो बन्धकारणं कर्म हि न बन्धकारणं भवतीति पूर्वोक्तत्वात्, अन्यस्य धर्मेण बन्धयोगे (अतिप्रसक्तिः-अन्यधर्मत्वे) भवेदतिप्रस ३०ऽन्यस्य धर्मेण बन्धयोगे पुनश्च (निर्गुणादिश्रुतिविरोधश्चेति) “असं ३० ह्ययं पुरुषः” (बृह ० ४. २. १ ५) इति निर्गुणत्वादिप्रतिपादिकायाः श्रुतेर्विरोधो भवति तस्माद् गतियोगादपि बन्धो न ॥ ५१ - ५४ ॥

बन्धकारणं कर्म हि न बन्धकारणं भवतीति पूर्वोक्तत्वात्, अन्यस्य धर्मेण बन्धयोगे ये भी ठीक नहीं इसलिए इसको भी छोड़ देते हैं

(अतिप्रसक्तिः-अन्यधर्मत्वे) भवेदतिप्रस ३०ऽन्यस्य धर्मेण बन्धयोगे पुनश्च अन्य के धर्म से अन्य का बंधन मानें तो अतिप्रसक्ति का दोष आएगा (करे कोई भरे कोई)

(निर्गुणादिश्रुतिविरोधश्चेति) “असं ३० ह्ययं पुरुषः” (बृह ० ४. २. १ ५) इति निर्गुणत्वादिप्रतिपादिकायाः श्रुतेर्विरोधो भवति तस्माद् गतियोगादपि बन्धो न ॥ ५१ - ५४ ॥ इस व्याख्या को भी छोड़ देते हैं ।

अन्ततश्च - अब अंत में बंधन का वास्तविक कारण बताते हैं-

तद्योगोऽप्यविवेकान्नसमानत्वम्* ॥ ५५ ॥

सूत्रार्थ= प्रकृति और पुरुष का योग=संबंध अविवेक=मिथ्याज्ञान से होता है, इसके तुल्य और कोई निश्चित कारण नहीं है।

भाष्य विस्तार = (तद्योगः) स एकोनविंशश्रुतितमसूत्रप्रदर्शितः प्रकृतिपुरुषयोगः सूत्र में जो तद्योग शब्द है ये उसका अर्थ है - उन्नीसवे सूत्र में जो दिखलाया था प्रकृति पुरुष योग (प्रकृति और पुरुष का जो संबंध है, बंधन है) बंधन है (अपिअविवेकात्) अपि सम्भावनायाम्, यहाँ जो अपि शब्द है वह संभावना अर्थ में है। संभावना का अर्थ सम्यक् भावनम् शत प्रतिशत से है। अविवेकात्-अयथार्थज्ञानान्मिथ्याज्ञानात् स्वात्मनस्तथा प्रकृतेश्चास्वरूपज्ञानाद् भवति, प्रकृति और पुरुष का जो बंधन है वह निश्चित रूप से अविवेक से है । उसका अंतिम निश्चित कारण है अविवेक। अविवेक का अर्थ = अयथार्थज्ञान। मिथ्या ज्ञान है। किसके संदर्भ में? आत्मा और प्रकृति के संबंध में। तद्योगः प्रकृतिपुरुषयोगस्तत्पृथक्-पृथक्स्वरूपाज्ञानसम्भवः। प्रकृति और पुरुष का जो योग है बंधन है वह प्रकृति-पुरुष के स्वरूप के अलग-अलग स्वरूप के ज्ञान न होने से है। (न समानत्वम्) तस्मात् बन्धकारणविचारे पूर्वोक्तकालादिके न तथा तद्योगे प्रकृतिपुरुषयोगविमर्शं च भिन्नभिन्नहेतुववादेन सहास्य

अन्ततश्च -

तद्योगोऽप्यविवेकान्नसमानत्वम्* ॥५५॥

(तद्योगः) स एकोनविंशतितमसूत्रप्रदर्शितः प्रकृतिपुरुषयोगः (अपिअविवेकात्) अपि सम्भावनायाम्, अविवेकात्-अयथार्थज्ञानान्मिथ्याज्ञानात् स्वात्मनस्तथा प्रकृतेश्चास्वरूपज्ञानाद् भवति, तद्योगः प्रकृतिपुरुषयोगस्तत्पृथक्-पृथक्स्वरूपाज्ञानसम्भवः । (न समानत्वम्) तस्मात् बन्धकारणविचारे पूर्वोक्तकालादिकेन तथा तद्योगे प्रकृतिपुरुषयोगविमर्शे च भिन्नभिन्नहेतुववादेन सहास्य विवेकहेतुप्रदर्शनस्य न समानत्वं दोषसमानत्वं यतो यस्याविवेकस्तस्य बन्धनिमित्तभूतो योगस्तद्योगः प्रकृतिपुरुषयोगः प्राप्तविवेकस्य

अविवेकहेतुप्रदर्शनस्य न समानत्वं दोषसमानत्वं आगे कह रहे हैं तस्मात् बन्धकारणविचारे इसलिए प्रारम्भ से अब तक बंधन के जितने भी कारणों पर विचार किया पूर्वोक्तकालादिकेन जो पहले के सूत्र में काल आदि के विषय में था कि 'क्या काल इस जीवात्मा के बंधन का कारण है?' तथा और प्रकृतिपुरुषयोगविमर्शे प्रकृति और पुरुष का जो बंधन है इस सबके चिंतन विमर्श में च और जो भिन्नभिन्नहेतुववादेन सह तरह तरह के पक्ष उठाए थे शून्यवाद, विज्ञानवाद आदि-आदि इन सब कारणों के साथ ही अस्य इसके अविवेकहेतुप्रदर्शनस्य अविद्या वाले हेतु का न समानत्वं इसकी उन हेतुओं के साथ समानता नहीं है दोषसमानत्वं अर्थात् जितना बड़ा दोष इस हेतु में बताया गया, उतना बड़ा दोष उन हेतुओं में नहीं है सबसे बड़ा दोष इस हेतु में बताया गया। जो बंधन का मुख्य कारण है, वो है अविवेक। यतो यस्याविवेकस्तस्य बन्धनिमित्तभूतो योगस्तद्योगः प्रकृतिपुरुषयोगः प्राप्तविवेकस्य तद्योगो नात एव बन्धाभावे मुक्तो भवति सः। आगे कहते हैं - यतो क्योंकि यस्य जिस-जिस आत्मा का अविवेकस्य अविवेक बचा हुआ है तस्यबन्धनिमित्तभूतयोगः उस उसका बंधन हो जाएगा बंधन के कारण से उसका बंधन हो जाएगा तद्योग प्रकृतिपुरुषयोगः उससे प्रकृति से पुरुष का बन्धन हो जाएगा। प्राप्तविवेकस्य तद्योगो न जिसको विवेक प्राप्त हो गया है उसका बंधन नहीं होगा "जिसके होने से जो हो और जिसके न होने से जो न हो, उसको कारण कहते हैं " अत एव बन्ध अभावे मुक्तो भवति सः इसलिए जिसको विवेक प्राप्त हो गया, वह पुरुष मुक्त हो जाएगा। क्योंकि बंधन का कारण रहा ही नहीं, इस प्रकार से बंधन छूट जाने पर वह मुक्त हो जाएगा। प्राप्तविवेकं न कालादिर्बन्धीयात् जिसको विवेक प्राप्त हो गया उसको काल आदि कोई भी वस्तु नहीं बांध सकती (भले ही काल सर्व व्यापक और नित्य क्यों न हो) तथा न क्षणिकवादविज्ञानशून्यवादवदव्यवस्थां गच्छेत्। और न वह क्षणिकवाद, शून्यवाद तथा विज्ञानवाद के जैसी अव्यवस्था को प्राप्त हो जाएगा। अत्रत्यस्य 'तद्योगः' शब्दस्यार्थोऽनिरुद्धवृत्तौ धर्माधर्मयोगः कृतोऽन्यथार्थो अब टीका टिप्पणी आरंभ होती है- अत्रत्यस्य ब्रह्ममुनि जी कह रहे हैं इस सूत्र में जो 'तद्योगः' शब्द है, शब्दस्यार्थोऽनिरुद्धवृत्तौ इस शब्द का जो अर्थ किया गया अनिरुद्धवृत्ती में वह धर्माधर्मयोगः किया गया वह अन्यथा अर्थ था। यतः स एव प्रकृतः पूर्वतस्तद्योगः प्रकृतिपुरुषयोगोऽत्रापि बन्धकारणनिर्णयसमाप्तये पुनरुक्तः। क्योंकि जो वहाँ तद्योग शब्द आया था १९ वे सूत्र में उसी शृंखला में उसी प्रसंग में अर्थ यहाँ पर भी होना चाहिए था, इन्होंने वह अर्थ नहीं किया। इसलिए यहाँ भी प्रकृति पुरुष का योग वही अर्थ होना चाहिए बंध कारण के निर्णय की समाप्ति के प्रसंग में फिर से उस शब्द की आवृत्ति की गई। विज्ञानभिक्षुभाष्ये तु

तद्योगो नात एव बन्धाभावे मुक्तो भवति सः। प्राप्तविवेकं न कालादिर्बन्धीयात् तथा न क्षणिकवादविज्ञानशून्यवादवदव्यवस्थां गच्छेत्। अत्रत्यस्य 'तद्योगः' शब्दस्यार्थोऽनिरुद्धवृत्तौ धर्माधर्मयोगः कृतोऽन्यथार्थो यतः स एव प्रकृतः पूर्वतस्तद्योगः प्रकृतिपुरुषयोगोऽत्रापि बन्धकारणनिर्णयसमाप्तये पुनरुक्तः। विज्ञानभिक्षुभाष्ये तु तद्योगस्यार्थोऽस्मद्वत् प्रकृतिपुरुषसंयोगोऽत्र सूत्रे कृतः परन्तु तत्रैकोनाविंशे सूत्रे नेत्यमर्थो विहितस्तत्र तद्योगादृते प्रकृतिसंयोगविना खलूक्तस्तत्रपूर्वत्रापि प्रकृतिपुरुषयोगोऽर्थो विधातव्यं आसीत् ॥ ५५ ॥

अथं तर्हि तदुच्छित्तिरित्यत्रोच्यते -

तद्योगस्यार्थोऽस्मद्वत् प्रकृतिपुरुषसंयोगोऽत्र सूत्रे कृतः विज्ञान भिक्षु भाष्य में तो तद्योग शब्द का अर्थ हमारे तरह से प्रकृति पुरुष संयोग किया गया है परन्तु तत्रैकोनाविंशे सूत्रे नेत्यमर्थो विहितः परन्तु विज्ञान भिक्षु ने जैसा अर्थ १९ वे सूत्र में किया वैसा यहाँ नहीं किया तत्र तद्योगादृते प्रकृतिसंयोगविना खलूक्तस्तत्रपूर्वत्रापि प्रकृतिपुरुषयोगोऽर्थो विधातव्यं आसीत् वहाँ पर तद्योगादृते का अर्थ किया प्रकृति के संयोग के बिना तो वहाँ १९ वे सूत्र में भी यही अर्थ कारण चाहिए था 'प्रकृति पुरुष का योग' जैसा अर्थ यहाँ किया वैसा ही वहाँ भी करना चाहिए था जिससे संगति ठीक बैठती ॥ ५५ ॥

कथं तर्हि तदुच्छित्तिरित्यत्रोच्यते - उस अविवेक का नाश कैसे होगा? इस विषय में अव कहा जाता है-

नियतकारणात्तदुच्छित्तिर्ध्वान्तवत् ॥ ५६ ॥

सूत्रार्थ= जैसे अंधकार का विनाश उसके विरोधी कारण प्रकाश से होता है, वैसे ही अविवेक का नाश उसके विरोधी कारण विवेक से होगा।

भाष्य विस्तार = (तदुच्छित्तिःनियतकारणात्) तस्याविवेकस्य नाशः खलु भवति नियतकारणात् तत्प्रतिद्वन्द्वत्वं भजमानाद् विवेकाद् यस्मिन् ह्यसति तत्प्रवृत्तिर्भवति सति च निवर्तते। भाष्यकार कहते हैं तस्य अविवेकस्य नाशः उस अविवेक का जो नाश है खलु भवति नियतकारणात् एक निश्चित कारण से ही उसका नाश होगा, और वह निश्चित कारण क्या है? तत्प्रतिद्वन्द्वत्वं जो उसका प्रतिद्वंदी है भजमानाद् शब्द का अर्थ है सेवमानाद् जो उसका विरोधी है विवेक विवेकाद् उस विवेक से इस अविवेक का नाश होता है यस्मिन् ह्यसति जिस विवेक के न होने पर तत्प्रवृत्तिर्भवति अविवेक की प्रवृत्ति होती है सति च निवर्तते। यदि विवेक हो जावे तो अविवेक नष्ट हो जाता है। कथमिव। किसके समान उच्यते दृष्टान्त देकर कहते हैं- (ध्वान्तवत्) यथा हि ध्वान्तस्यान्धकारस्य नाशो भवति तत्प्रतिद्वन्धिभूतात् प्रकाशात् ध्वांत का अर्थ है अंधकार यथा हि जैसे ध्वान्तस्यान्धकारस्य नाशो भवति अंधकार का नाश होता है तत्प्रतिद्वन्धिभूतात् प्रकाशात् उसके प्रतिद्वंदी प्रकाश से (जो प्रकाश है वह अंधकार का विरोधी है, और अपने विरोधी प्रकाश से अंधकार का नाश होता है) प्रकाशो ह्यन्धकारस्य प्रतिद्वन्धित्वाद् अन्धकारस्य नाशाय नियतकारणं जैसे प्रकाश अंधकार के लिए उसका प्रतिद्वंदी होने से अंधकार के नाश का निश्चित कारण है तथैवाविवेकस्य नाशाय विवेको नियतं कारणं तत्प्रतिद्वन्धित्वात् ॥ ५६ ॥ उसी प्रकार से अविवेक का नाश करने के लिए जो निश्चित कारण है अविवेक का प्रतिद्वंदी है वह विवेक (विवेक= तत्त्वज्ञान, शुद्धज्ञान, यथार्थज्ञान, प्रकृति पुरुष

नियतकारणात्तदुच्छित्तिध्वान्तवत् ॥ ५६ ॥

(तदुच्छित्तिःनियतकारणात्) तस्याविवेकस्य नाशः खलु भवति नियतकारणात् तत्प्रतिद्वन्द्वित्वं भजमानाद् विवेकाद् यस्मिन् ह्यसति तत्प्रवृत्तिर्भवति सति च निवर्तते । कथमिव । उच्यते (ध्वान्तवत्) यथा हि ध्वान्तस्यान्धकारस्य नाशो भवति तत्प्रतिद्वन्द्विभूतात् प्रकाशात् प्रकाशो ह्यन्धकारस्य प्रतिद्वन्द्वित्वादन्यकारस्य नाशाय नियतकारणं तथैवाविवेकस्य नाशाय विवेको नियतं कारणं तत्प्रतिद्वन्द्वित्वात् ॥ ५६ ॥

ननु प्रकृतिपुरुषयोगोऽविवेकात् तद्विषयकाविवेकोच्छेदो भवतु विवेकात् किन्तु प्रकृतिपुरुषाभ्यामतिरिक्तानां महदादीनां शरीरान्तर्भूतानां बुद्ध्यादीनां विषये त्वविवेकोऽवस्थास्यते हि पुनः

का ज्ञान) है ।

ननु एक प्रश्न है प्रकृतिपुरुषयोगोऽविवेकात् तद्विषयकाविवेकोच्छेदो भवतु विवेकात् प्रकृति और पुरुष का जो योग है ये अविवेक से हुआ इतना हमें समझ में आ गया । और प्रकृति पुरुष के संबंध में जो अविवेक है उसका नाश होगा विवेक से । किन्तु प्रकृतिपुरुषाभ्यामतिरिक्तानां महदादीनां शरीरान्तर्भूतानां बुद्ध्यादीनां विषये त्वविवेकोऽवस्थास्यते हि पुनः सोऽनिष्टं कुर्यात्, किन्तु प्रकृति और पुरुष के अतिरिक्त भी तो अनेक पदार्थ हैं जो महत्त्व आदि हैं जो शरीर के अंदर रहते हैं बुद्धि आदि पदार्थों के सूक्ष्म विषय हैं उनके विषय में तो अविवेक रहेगा ही फिर वह बीच में अनिष्ट करेगा फिर संसार में बाँधेगा तब मुक्ति कैसे होगी ? उनके प्रति उनके संबंध में भी तो बहुत प्रकार का अविवेक है अत्रोच्यते - इसके उत्तर में कहते हैं-

प्रधानाविवेकादन्याविवेकस्य तद्धाने हानम् ॥ ५७ ॥

सूत्रार्थ= मुख्य वस्तु जीव और प्रकृति के संबंध में अविवेक होने से गौड़ पदार्थों के संबंध में भी अविवेक हो जाता है । और मुख्य पदार्थों के संबंध में अविवेक हट जाने पर गौड़ पदार्थों के संबंध में भी अविवेक हट जाता है ।

भाष्य विस्तार = (प्रधानविवेकात्) प्रधानस्य मुख्यस्य पदार्थस्य प्रकृतेः पुरुषस्य चाविवेकात् खलु यहाँ सूत्र में जो प्रधान शब्द है उसका एक अर्थ है मुख्य पदार्थ और अप्रधान का गौण । तथा सांख्यदर्शन में प्रधान का अर्थ प्रकृति भी है । तो उत्तर में कहते हैं सिद्धांती- प्रधानस्य अर्थात् मुख्यस्य पदार्थस्य जो मुख्य पदार्थ हैं प्रकृतेः पुरुषस्य च मूल प्रकृति और पुरुष के संबंध में जो अविवेकात् अविवेक होता है तो उससे (अन्याविवेकस्य) अन्यविषयकाविवेकस्य गौणविषयकाविवेकस्य सम्भवः यदि मुख्य पदार्थों में अविवेक है तो गौण पदार्थों में अविवेक हो जाएगा क्योंकि गौण पदार्थ मुख्य पदार्थ में से ही बने हैं (तद्धाने हानम्) तस्य प्रधानस्य मुख्यस्याविवेकहाने गौणविषयकाविवेकस्य हानं नाशो भवति ॥ ५७ ॥ यदि मुख्य प्रधान पदार्थ के संबंध में जो अविवेक है यदि वह नष्ट हो जाए तो उसके नष्ट होने पर गौण विषयों के संबंध में जो अविवेक है वह भी नष्ट हो जाएगा ॥

असोऽयं पुरुष उच्यते पुनः कथमसंगे पुरुषेऽविवेकप्रसंगः पूर्वपक्षी ने प्रश्न उठाया कि 'पुरुष

सोऽनिष्टं कुर्यात्, अत्रोच्यते -

प्रधानाविवेकादन्याविवेकस्य तद्धाने हानम् ॥ ५७ ॥

(प्रधानाविवेकात्) प्रधानस्य मुख्यस्य पदार्थस्य प्रकृतेः पुरुषस्य चाविवेकात् खलु (अन्याविवेकस्य) अन्यविषयकाविवेकस्य गौणविषयकाविवेकस्य सम्भवः (तद्धाने हानम्) तस्य प्रधानस्य मुख्यस्याविवेकहाने गौणविषयकाविवेकस्य हानं नाशो भवति ॥ ५७ ॥

असंगोऽयं पुरुष उच्यते पुनः कथमसं प्रे पुरुषेऽविवेकप्रसंगः, इत्याकांक्षाया-मुच्यते -

वाङ्मात्रं न तु तत्त्वं चित्तस्थितेः ॥ ५८ ॥

(वाङ्मात्रं तु न तत्त्वं) पुरुषेऽविवेकप्रतिपादनं कथनमात्रमुपचर्यमाणं तु भवति हि न तत्त्वं न तात्त्विकम् (चित्तस्थितेः) चित्तशब्दोऽन्तःकरणार्थः । तस्याविवेकस्य चित्तेऽन्तःकरणेऽवस्थानात् ।

असंग है' ऐसा आपने कहा था । फिर पुरुष के असंग रहने से उसमें अविवेक कैसे घुस जाएगा?, इत्याकांक्षायामुच्यते- ऐसा प्रश्न उपस्थित होने पर ये उत्तर दिया जाता है-

सूत्र की भूमिका= अगर एक व्यक्ति को अविवेक हो गया वह उसको दूर करना चाहता है तो उसने विवेक प्राप्ति के लिए शास्त्रों का अध्ययन किया, शाब्दिक रूप से बहुत सी विवेक को जागृत करने वाली बातों को सुना पढ़ा । फिर सुनने के बाद भी उसका अविवेक दूर न हुआ । फिर अविवेक दूर क्यों न हुआ? आप तो कह रहे थे विवेक से अविवेक दूर हो जाता है- इस पर कहते हैं

वाङ्मात्रं न तु तत्त्वं चित्तस्थितेः ॥ ५८ ॥

सूत्रार्थ= अभी तो उसको वाणी मात्र से ज्ञान हुआ है, तत्त्वज्ञान नहीं हुआ है । अभी तो बहुत सारा अविवेक उसके चित्त में स्थिर है ।

भाष्य विस्तार = इस सूत्र का भाष्य स्वामी ब्रह्ममुनि जी ने ठीक नहीं किया- (वाङ्मात्रं तु न तत्त्वं) पुरुषेऽविवेकप्रतिपादनं कथनमात्रमुपचर्यमाणं तु भवति हि न तत्त्वं न तात्त्विकम् स्वामी ब्रह्ममुनि जी कहते हैं पुरुष में जो अविवेक है यह तो कथन मात्र है यह तो कहने की बात है यह सत्य नहीं । वास्तव में उसमें अविद्या घुसती नहीं । (चित्तस्थितेः) चित्तशब्दोऽन्तःकरणार्थः यहाँ चित्त शब्द का अर्थ अंतःकरण है । तस्याविवेकस्य चित्तेऽन्तःकरणेऽवस्थानात् । उसका अविवेक चित्त में अर्थात् अंतःकरण में स्थित रहता है, आत्मा में नहीं । अन्तःकरणद्वारकमनुभवत्यविवेकं पुरुषः ॥ ५८ ॥ पुरुष=जीवात्मा अन्तःकरण के द्वारा अविवेक का अनुभव करता है ।

स्वामी ब्रह्ममुनि जी के भाष्य पर स्वामी विवेकानंद जी परिव्राजक की टिप्पड़ी- इनकी मान्यता के अनुसार पुरुष में अविवेक होता नहीं, यदि पुरुष में अविवेक नहीं होता तो वह बंधन में कैसे आता है, "चित्त में अविवेक का रहना" ये कथन भी गलत है । क्योंकि अविवेक तो सत्तात्मक है, ज्ञान के अभाव का नाम अविवेक है नहीं उसका अर्थ है=मिथ्याज्ञान । मिथ्याज्ञान ज्ञान का एक प्रकार है जैसे संशय, भ्रांति आदि । ज्ञानगुण चेतन में होता है जड़ में नहीं । जबकि चित्त जड़ होता है उसमें ज्ञान कैसे संभव है? इसलिए

अन्तःकरणद्वारकमनुभवत्यविवेकं पुरुषः ॥५८॥

तर्हि स एतादृशोऽविवेकस्तु श्रवणेनैव निवर्तिष्यते किं विवेकदर्शनाभ्यासेन महताऽध्यात्मप्रयासेन ।
अत्रोच्यते -

युक्तितोऽपि न बाध्यते दिङ्मूढवदपरोक्षादृते ॥५९॥

(युक्तितः-अपि न बाध्यते) किं श्रवणेन स्यात्, श्रवणमात्रस्य तु का कथा स तु युक्तितोऽर्थान्मननादपि न निवर्त्यते (दिङ्मूढवत् अपरोक्षात्-ऋते) दिशोविषये मूढो दिङ्मूढस्तस्य दिशामोहवतो दिग्भ्रमवतो मनुष्यस्येव यथा तस्य दिग्भ्रमो साक्षात् सूर्योदयदर्शनेन विना न निवर्तते तद्वत् सोऽविवेकोऽपि

इनकी व्याख्या ठीक नहीं है।

तर्हि स एतादृशोऽविवेकस्तु श्रवणेनैव निवर्तिष्यते किं विवेकदर्शनाभ्यासेन महताऽध्यात्मप्रयासेन ।
अत्रोच्यते - क्या यह सुनने मात्र से ही अविवेक दूर हो जाएगा (ये प्रसंग तो पहले सूत्र में ही हो गया है)

थोड़ा युक्ति तर्क लगाने मात्र से ही विवेक हो जावे अधिक परिश्रम क्यों करें?

युक्तितोऽपि न बाध्यते दिङ्मूढवदपरोक्षादृते ॥५९॥

सूत्रार्थ= वह अविवेक मनन करने से भी दूर नहीं होता, साक्षात् विवेक का प्रत्यक्ष किए बिना, दिङ्मूढ व्यक्ति के समान।

भाष्य विस्तार = किं श्रवणेन स्यात्, श्रवणमात्रस्य तु का कथा स तु युक्तितोऽर्थान्मननादपि न निवर्त्यते। सुनने से क्या होता है, श्रवण मात्र की कथा ही क्या। कहानी केवल वाली मात्र से गुरु से सुन लिया इससे तो अविवेक हटने वाला नहीं, कोई बैठ के युक्ति से मनन-चिंतन-विचार करे तो ठोड़े चिंतन मात्र से भी अविवेक नहीं हटने वाला। (यहाँ चिंतन का, श्रवण का निषेध नहीं है, उसकी अपर्याप्तता बता रहे हैं) दिशोविषये मूढो दिङ्मूढस्तस्य दिशामोहवतो दिग्भ्रमवतो मनुष्यस्येव दिङ्मूढ उसे कहते हैं जिसे दिशा के संबंध में भ्रम हो अर्थात् दिशा के विषय में जो मूढ़ हो जिसको दिशा के संबंध में मोह हो गया भ्रम हो गया ऐसे मनुष्य के समान यथा तस्य दिग्भ्रमो साक्षात् सूर्योदयदर्शनेन विना न निवर्तते ऐसा मनुष्य का भ्रम दिशा के संबंध में साक्षात् सूर्य दर्शन के बिना हटता नहीं है तद्वत् सोऽविवेकोऽपि नापगच्छति स्वप्रतिद्वन्दिना विवेकदर्शनाभ्यासेन विना उसी प्रकार से जो अविवेक है वह भी अपने विरोधी विवेक दर्शन अभ्यास के बिना नहीं हटता ॥५९॥

अथ स विवेकप्रकारो वर्ण्यते - अब विवेक का प्रकार बताते हैं कि विवेक कैसे-कैसे होगा-

अचाक्षुषाणामनुमानेन बोधो धूमादिभिरिववहेः ॥६०॥

सूत्रार्थ= जो वस्तुएँ आँख से नहीं दिखती उनका अनुमान से ज्ञान कर लेंगे जैसे धुआँ चिंगारी आदि के द्वारा अप्रत्यक्ष अग्नि का ज्ञान होता है।

भाष्य विस्तार = अप्रत्यक्षाणां बोधो विवेको भवत्यनुमाने प्रमाणेन। जो आँखों से दिखती है उनका तो प्रत्यक्ष हो जाएगा, जो आँखों से नहीं दिखती उनके विषय में तत्त्वज्ञान कैसे होगा? उसके विषय में बताते हैं- अप्रत्यक्षाणां जो अप्रत्यक्ष है अर्थात् आँखों से दिखते नहीं हैं उनका बोधो विवेको भवति जो ज्ञान

नापगच्छति स्वप्रतिद्वन्दिना विवेकदर्शनाभ्यासेन विना ॥ ५९ ॥

अथ स विवेकप्रकारो वर्ण्यते -

अचाक्षुषाणामनुमानेन बोधो धूमादिभिरिव वह्नेः ॥ ६० ॥

(अचाक्षुषाणाम्-अनुमानेन बोधः) अप्रत्यक्षाणां बोधो विवेको भवत्यनुमाने प्रमाणेन । कथम् । उच्यते (धूमादिभिः-इव वह्नेः) यथा धूमादिभिर्धूमविस्फुलिंगचटचटा-शब्दैरप्रत्यक्षस्याग्नेर्बोधो विवेकोऽनुमानाज्जायते । तत्र प्रत्यक्षपदार्थास्तु स्थूलभूतानि देहादयश्चाथाप्रत्यक्षास्तद्विन्ना अन्ये प्रकृत्यादयः शेषाः सन्ति ॥ ६० ॥

अनुमानेन विवेकप्राप्तये तेषां प्रत्यक्षाणां कार्यकारणभावः प्रदर्श्यते -

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान्

होगा तत्त्वज्ञान होगा अनुमाने प्रमाणेन वह अनुमान प्रमाण से हो जाएगा। कथं उच्यते? कैसे होगा इसको समझाते हैं यथा धूमादिभिर्धूमविस्फुलिंगचटचटाशब्दैरप्रत्यक्षस्याग्नेर्बोधो विवेकोऽनुमानाज्जायते। जैसे धुआँ आदि उठाने लगे फिर चट चटचटाहट शब्द सुन करके इतना सब देख कर के जो अग्नि दिख नहीं रही है अप्रत्यक्ष है उसका अनुमान लगा लिया कि अग्नि के जलने से धुआँ आदि चट पट आवाज आ रही है, चिंगारी उठ रही है । तत्र प्रत्यक्षपदार्थास्तु स्थूलभूतानि देहादयश्चाथाप्रत्यक्षास्तद्विन्ना अन्ये प्रकृत्यादयः शेषाः सन्ति । वहाँ जो (संसार के) पदार्थ है स्थूल भूत आदि वे तो प्रत्यक्ष हैं और देह आदि का भी प्रत्यक्ष हो जाएगा इनसे संबन्धित सारा अविवेक हट जाएगा और स्थूलभूत और शरीर के अतिरिक्त मन इंद्रियाँ आदि सूक्ष्म पदार्थ हैं उनका अनुमान से ज्ञान कर लेंगे। जैसे धुआँ देखकर अग्नि का ज्ञान कर लिया वैसे जगत के पदार्थ देखकर मूल प्रकृति का भी अनुमान से ज्ञान कर लेंगे। ऐसे तत्त्वज्ञान हो जाएगा और सब अविद्या अविवेक हट जाएगा ॥ ६० ॥

अनुमानेन विवेकप्राप्तये तेषां प्रत्यक्षाणां कार्यकारणभावः प्रदर्श्यते - अनुमान से विवेक प्राप्त करने के लिए उन प्रत्यक्ष पदार्थों का कार्य कारण भाव दिखलाया जाता है-

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान्

महतोऽहंकारोऽहंकारात्पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं तन्मात्रेभ्यःस्थूलभूतानि पुरुष इति

पञ्चविंशतिर्गणः ॥ ६१ ॥

सूत्रार्थ= सत्त्व रज तम की समान अवस्था प्रकृति है, प्रकृति से महतत्त्व, महतत्त्व से अहंकार, अहंकार से पाँच तन्मात्राएँ, मन और दोनों प्रकार की इंद्रियाँ तथा तन्मात्रा से स्थूल भूतों की उत्पत्ति होती है, और पच्चीसवा पदार्थ पुरुष (जीवात्मा और परमात्मा) है, ये पच्चीस पदार्थों का समूह जानने योग्य है।

भाष्य विस्तार= (सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः) सत्त्वरजस्तमांसि प्रकाशद्रवत्वस्तब्धत्वमयानि प्रकाशगतिस्थितिरूपशक्तिभूतानि वस्तूनि तेषां यद्वा यैर्जगति प्रकाशद्रवत्व-स्तब्धत्वानि प्रकाशगतिस्थितयो वा प्रवर्तन्ते तथाविधानां वस्तुशक्तिरूपाणां साम्यावस्था समावस्था निश्चेष्टा सरलाऽनुद्धूतस्वरूपाऽवस्था प्रकृतिरुच्यते । ये मूल प्रकृति का स्वरूप बतलाया है- सत्त्वरजस्तमांसि

[यह केवल निजी प्रयोग हेतु, अप्रकाशित, संशोधन अपेक्षित संग्रह है]

**महतोऽहंकारोऽहंकारात्पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति
पञ्चविंशतिर्गणः ॥ ६१ ॥**

(सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः) सत्त्वरजस्तमांसि प्रकाशद्रवत्वस्तब्ध- त्वमयानि प्रकाशगतिस्थितिरूपशक्तिभूतानि वस्तूनि तेषां यद्वा यैर्जगति प्रकाशद्रवत्वस्तब्धत्वानि प्रकाशगतिस्थितयो वा प्रवर्तन्ते तथाविधानां वस्तुशक्तिरूपाणां साम्यावस्था समावस्था निश्चेष्टा सरलाऽनुद्धूतस्वरूपाऽवस्था प्रकृतिरुच्यते (प्रकृतेः-महान्) ततः प्रकृतेर्महत्तत्त्वमुद्भवति (महतः-अहंकारः) महत्तत्त्वादहंकारनामा प्रकृतेर्द्वितीयो विकारो जायते (अहंकारात् पञ्चतन्मात्राणि-उभयम्-इन्द्रियम्) अहंकाराद् बाह्ये जगति पञ्चतन्मात्राणि सूक्ष्मभूतानि देहे ज्ञानकर्मेन्द्रियगणश्च सम्भवति (तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि) सूक्ष्मभूतेभ्यः पृथिव्यादीनि स्थूलभूतानि व्यज्यन्ते (पुरुषः) पुरुषश्च तेचनसत्ता तद्भिन्ना (इति पञ्चविंशतिः-गणः)

सत्त्व रज और तम ये तीन हैं, कैसे गुण वाले हैं? प्रकाशद्रवत्वस्तब्धत्वमयानि प्रकाश वाले गतिशील और स्तब्धता वाले इस स्वरूप वाले हैं ये तीनों दूसरे शब्दों में कहा प्रकाशगतिस्थितिरूपशक्तिभूतानि वस्तूनि प्रकाश गति स्थिरतारूप वाले ये पदार्थ हैं तेषां इनकी साम्यावस्था का नाम प्रकृति है। यद्वा यैर्जगति प्रकाशद्रवत्व-स्तब्धत्वानि प्रकाशगतिस्थितयो वा प्रवर्तन्ते भाष्यकार ने इनको और खोला-जिन परमाणुओं के माध्यम से संसार में प्रकाश होता है स्तब्धता होती है और गति होती है ये तीन व्यवहार (क्रियाएँ) देखी जाती हैं तथाविधानां जिनके द्वारा देखी जाती हैं- उस स्वरूप वाले वस्तुशक्तिरूपाणां वस्तु रूप व शक्तिरूप वाले हैं, उन सत्त्व रज तम की साम्यावस्था अर्थात् समावस्था अर्थात् निश्चेष्ट अवस्था, इसमें कोई गति नहीं है चुप चाप पड़े हैं सत्त्व रज तम सरलाऽनुद्धूतस्वरूपाऽवस्था प्रकृतिरुच्यते सरल अवस्था में उसमें कोई चीज अनुभूत नहीं हो रही उस अवस्था को प्रकृति कहते हैं। ततः प्रकृतेर्महत्तत्त्वमुद्भवति जो सत्त्व रज तम बिखरे हुए पड़े थे उन से ईश्वर ने पहली वस्तु बनाई जिसका नाम 'महतत्व' है महत्तत्त्वादहंकारनामा प्रकृतेर्द्वितीयो विकारो जायते महत्तत्त्व से अर्थात् उसके पश्चात् फिर अहंकार नामक प्रकृति का दूसरा विकार उत्पन्न होता है (अहंकारात् पञ्चतन्मात्राणि-उभयम्-इन्द्रियम्) अहंकाराद् बाह्ये जगति पञ्चतन्मात्राणि सूक्ष्मभूतानि देहे ज्ञानकर्मेन्द्रियगणः मनश्च सम्भवति। अब अहंकार से क्या क्या बना ये बताते हैं- अहंकार के पश्चात् जो वस्तुएँ बनी वो बाह्य जगत में कार्य करने वाली पाँच तन्मात्राएँ अर्थात् सूक्ष्मभूत बने और शरीर में कार्य करने वाली ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय का समुदाय और मन उत्पन्न हुआ। सूक्ष्मभूतेभ्यः पृथिव्यादीनि स्थूलभूतानि व्यज्यन्ते उन पाँच तन्मात्राओं से पृथ्वी आदि पाँच स्थूल भूत प्रकट होते हैं। (शब्द तन्मात्रा से आकाश स्थूलभूत फिर स्पर्श से वायु, रस से जल, रूप से अग्नि, गंध से पृथिवि स्थूल भूत की रचना हुई) पुरुषश्च चेतनसत्ता तद्भिन्ना, इत्येष पञ्चविंशतिर्गणो बोध्यो विज्ञेयो विवेचनीयो विवेकेऽपेक्षणीयोऽस्ति ॥ ६१ ॥ २४ से भिन्न पुरुष चेतन सत्ता है (पुरुष के दो अर्थ= एक जीवात्मा दूसरा ईश्वर)। इस प्रकार से इन पच्चीस पदार्थों को जानना चाहिए विवेक करना चाहिए इनका विवेचन करना चाहिए, ये जानने योग्य हैं।

जो आँख से दिखती हैं घर, मोटर, कार आदि उनका प्रत्यक्ष हो जाएगा और जो आँख से नहीं दिखती उनको अनुमान से जान लेंगे इस प्रकार से बार सुनने मनन करने से विचार करने से और कुछ चीजों का बाह्य

इत्येष पञ्चविंशतिर्गणो बोध्यो विज्ञेयो विवेचनीयो विवेकेऽपेक्षणीयोऽस्ति ॥ ६१ ॥

तत्रानुमानप्रकारः प्रातिलोम्येन -

स्थूलात् पञ्चतन्मात्रस्य ॥ ६२ ॥

(स्थूलात्) पृथिव्यादिस्थूलभूतगणात् कार्यात् तत्कारणस्य (पञ्चतन्मात्रस्य) सूक्ष्मभूतगणस्याविशेषस्यानुमानेन बोधो विवेकः कार्यः ॥ ६२ ॥

पुनः -

बाह्याभ्यन्तराभ्यां तैश्चाहंकारस्य ॥ ६३ ॥

(बाह्याभ्यन्तराभ्यां तैः-च) बाह्याभ्यन्तराभ्यामिन्द्रियगणाभ्यां तथा तश्च पञ्चतन्मात्रैः

प्रत्यक्ष करके तत्त्वज्ञान हो जाएगा ये तत्त्वज्ञान अविवेक का नाश करेगा जब अविवेक का नाश होगा तो बंधन का नाश होगा और बंधन का नाश होने से न शरीर धारण करना पड़ेगा और न दुःख आवेंगे।

तत्रानुमानप्रकारः प्रातिलोम्येन - अब उलटे क्रम से स्थूल से सूक्ष्म की ओर चल करके इसका अनुमान करेंगे-

स्थूलात् पञ्चतन्मात्रस्य ॥ ६२ ॥

सूत्रार्थ= पाँच स्थूल भूतों के समुदाय से उसके कारण तन्मात्राओं का ज्ञान होता है।

भाष्य विस्तार = मोटे तौर पर कार्य को देखकर कारण का अनुमान होता है (वस्त्र को देखकर सूती धागों का अनुमान) पृथिव्यादिस्थूलभूतगणात् जो पृथ्वी आदि स्थूल भूतों का समुदाय है कार्यात् उस कार्य रूप पृथ्वी आदि पाँच भूतों से तत्कारणस्य उसके कारण का सूक्ष्मभूतगणस्य सूक्ष्म भूत समुदाय उनका अविशेषस्य (अविशेष का अर्थ तन्मात्राएँ योगदर्शन में कहीं थी) जो सूक्ष्म है प्रकट नहीं है ऐसी पाँच तन्मात्राओं का अनुमानेन बोधो विवेकः कार्यः अनुमान प्रमाण से ज्ञान कर लेना चाहिए ॥ ६२ ॥

पुनः -

बाह्याभ्यन्तराभ्यां तैश्चाहंकारस्य ॥ ६३ ॥

सूत्रार्थ= बाह्य और आभ्यन्तर इंद्रियों से तथा तन्मात्राओं के द्वारा अहंकार का ज्ञान होता है।

भाष्य विस्तार = बाह्याभ्यन्तराभ्यामिन्द्रियगणाभ्यां तथा तैश्च पञ्चतन्मात्रैः अहंकारस्यानुमानेन बोधो विवेकः कार्यो जैसे हमने पहले अर्थ किया था “उभयमिन्द्रियम्” से वैसा ही अर्थ यहाँ करेंगे। बाह्याभ्यन्तराभ्यामिन्द्रियगणाभ्यां बाह्य इंद्रियों और आंतरिक इंद्रियों इन दोनों के समुदाय से तथा एवं तैश्च पञ्चतन्मात्रैः और उन तन्मात्राओं से अहंकारस्यानुमानेन बोधो विवेकः कार्यो इन सोलह पदार्थों से यह अनुमान कर लेना चाहिए कि इनका भी कोई कारण है। और वह है अहंकार, ऐसे अनुमान से अहंकार का ज्ञान हो गया। यदेषां वृत्तिसंस्कारो यत्र तिष्ठति सोऽहंकारोऽस्ति हि। ये जो वृत्ति संस्कार हैं ये जहाँ टहरते हैं, अर्थात्

सांख्यदर्शनम्-प्रथमोऽध्यायः

(अहंकारस्य) अहंकारस्यानुमानेन बोधो विवेकः कार्यो यदेषां वृत्तिसंस्कारो यत्र तिष्ठति सोऽहंकारोऽस्ति हि । तन्मात्राणां च संहतसूक्ष्मभावो यस्मिन् भवति ॥ ६३ ॥

पश्चात् -

तेनान्तःकरणस्य ॥ ६४ ॥

(तेन) अहंकारेण कार्येण (अन्तःकरणस्य) तत्कारणभूतस्य महत्तत्त्वस्यानुमानेन बोधो विवेकः कार्यो यद्बाह्यप्रसारतः केन्द्रसंकाचो यस्मिन् भवति ॥ ६४ ॥

तदनु -

ततः प्रकृतेः ॥ ६५ ॥

टूट-फूट कर जिसमें जाकर मिलेंगी वह अहंकार ही है। तन्मात्राणां च संहतसूक्ष्मभावो यस्मिन् भवति तन्मात्राओं का भी सूक्ष्म भाग टूट फूट कर जिसमें जाकर टिकेगा वह अहंकार है ॥ ६३ ॥

पश्चात् -

तेनान्तःकरणस्य ॥ ६४ ॥

सूत्रार्थ= उस कार्य रूपी अहंकार से उसके कारण द्रव्य अन्तः करण अर्थात् महत्तत्त्व का ज्ञान कर लेना चाहिए।

भाष्य विस्तार = उस अहंकार रूपी कार्य द्रव्य से तत्कारणभूतस्य महत्तत्त्वस्य उसका जो कारणभूत है महत्तत्त्व उसका अनुमानेन बोधो विवेकः कार्यो अनुमान से बोध कर लेना चाहिए कि ये भी कोई कार्य है तो इसका भी कोई कारण होगा, तो अहंकार का कारण महत्तत्त्व। यद्बाह्यप्रसारतः केन्द्रसंकाचो यस्मिन् भवति जो बाहर के फैलाव से वापिस भीतर को लौट रहे हैं जिस केंद्र में संकुचित होता जा रहा है अहंकार उसका भी कारण महत्तत्त्व है ॥ ६४ ॥

तदनु -

ततः प्रकृतेः ॥ ६५ ॥

सूत्रार्थ= उस महत्तत्त्व से प्रकृति का अनुमान होता है।

भाष्य विस्तार = ततो महत्तत्त्वात् कार्यात् जो महत्तत्त्व रूपी कार्य है उससे तत्कारणभूतायाः प्रकृतेः उसका जो कारण भूत द्रव्य है प्रकृति, उस प्रकृति का अनुमानेन अनुमान प्रमाण से बोधो विवेकः कार्यः उसका भी ज्ञान कर लेना चाहिए कि ये भी कार्य द्रव्य है तो इसका भी कोई कारण होगा सर्वथा निस्तब्धत्वं यस्मिन् भवति जिस प्रकृति में सर्वथा निस्तब्धता होती है (कोई गति हलचल नहीं) उस मूल प्रकृति तक अनुमान से पहुँच जाएंगे ॥ ६५ ॥

कार्यकारणप्रक्रियामनुसृत्य प्रकृतिपर्यन्तोऽनुमानप्रकारो दर्शितोऽत्रेदानीं पुरुषस्य बोधायानुमानप्रकारः प्रदर्श्यते- कार्य कारण प्रक्रिया का अनुसरण करके प्रकृति तक पहुँच गए वहाँ तक

सांख्यदर्शनम्-प्रथमोऽध्यायः

(ततः प्रकृतेः) ततो महत्तत्त्वात् कार्यात् तत्कारणभूतायाः प्रकृतेरनुमानेन बोधो विवेकः कार्यः सर्वथा निस्तब्धत्वं यस्मिन् भवति ॥ ६५ ॥

कार्यकारणप्रक्रियामनुसृत्य प्रकृतिपर्यन्तोऽनुमानप्रकारो दर्शितोऽत्रेदानीं पुरुषस्य बोधायानुमानप्रकारः प्रदर्श्यते -

संहतपरार्थत्वात् पुरुषस्य ॥ ६६ ॥

(संहतपरार्थत्वात् पुरुषस्य) सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः सा च त्रिगुणसंहता तत्कार्याणि च महत्तत्त्वादीनि संहतानि सन्त्यन्योऽन्यसंहतानि तर्हि प्रकृतिपर्यन्तानि सर्वाणि वस्तूनि संहतानि, संहतं हि परार्थं भवति “परार्थं संहत्यकारित्वात्” (योग ०४.२४) तस्य संहतस्य वस्तुजातस्य परार्थत्वात् स परोभूतः पुरुषोऽस्तीति तस्य पुरुषस्यानुमानेन बोधो विवेकः सम्पद्यते ॥ ६६ ॥

अनुमान करने का प्रकार दिखला दिया, अब इस सूत्र में पुरुष का ज्ञान करने के लिए अनुमान कैसे किया जाए, इस प्रक्रिया को दिखलाते हैं-

संहतपरार्थत्वात् पुरुषस्य ॥ ६६ ॥

सूत्रार्थ= संघात के “पर के” लिए होने से अर्थात् दूसरे के प्रयोजन को सिद्ध करने वाला होने से पुरुष का अनुमान होता है।

भाष्य विस्तार = कह रहे हैं- सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः सा च त्रिगुणसंहता सत्त्व, रज और तम की जो साम्यावस्था है वो है प्रकृति। वो तीन गुणों का संघात है। तत्कार्याणि च महत्तत्त्वादीनि संहतानि सन्ति (अब जब मूल प्रकृति ही तीन पदार्थो ५ का समुदाय है उससे जो भी वस्तु बनेगी वो भी संघात होंगी) प्रकृति से जो कार्य द्रव्य उत्पन्न हुए वे महत्त्व आदि ये सब भी संघात रूप है। अन्योन्यसंहतानि ये भी एक दूसरे के साथ परमाणु को जोड़ जोड़के बनाए गए तर्हि प्रकृतिपर्यन्तानि सर्वाणि वस्तूनि संहतानि, इस प्रकार से पाँच महाभूत से लेकर प्रकृति तक सारी वस्तुएँ संघात रूप हैं। अब कहते हैं नियम संहतं हि परार्थं भवति जो संघात पदार्थ होता है वह दूसरों के लिए होता है, इसलिए योगदर्शन में कहा “परार्थं संहत्यकारित्वात्” (योग ०४.२४) “ये जितने भी संघात पदार्थ हैं वे दूसरे के लिए होते हैं” इस नियम से तस्य संहतस्य वस्तुजातस्य परार्थत्वात् स परोभूतः पुरुषोऽस्ति वह जो संघात रूप वस्तु है सारी वह सब दूसरे के लिए हैं उस संघात से भिन्न जो पदार्थ है उसी का नाम पुरुष है। इति तस्य पुरुषस्यानुमानेन बोधो विवेकः सम्पद्यते इस पूरे जगत के संघात रूप पदार्थ है, इनका जो भोक्ता है वो एक खंड पदार्थ होना चाहिए। इससे उस भोक्ता पुरुष का अनुमान से बोध कर लेना चाहिए ॥ ६६ ॥

या खलु प्रकृतिर्महदादेर्विकारजातस्य मूलमुक्तं किं तस्याः प्रकृतेरपि मूलेन भवितव्यं न वेत्याकांक्षायामुच्यते - जो प्रकृति महत्त्व आदि सभी उत्पन्न पदार्थों का मूल कारण बताई गई थी, क्या उस प्रकृति का और भी कोई कारण होना चाहिए? अथवा नहीं होना चाहिए? ऐसा प्रश्न होने पर ये उत्तर देते हैं-

मूले मूलाभावादमूलं मूलम् ॥ ६७ ॥

या खलु प्रकृतिर्महदादेर्विकारजातस्य मूलमुक्तं किं तस्याः प्रकृतेरपि मूलेन भवितव्यं न वेत्याकांक्षायामुच्यते -

मूले मूलाभावादमूलं मूलम् ॥६७॥

(मूले मूलाभावात्) मूले तन्मूलस्याभावो भवति । तस्मात् (अमूलमूलम्) मूलं भवत्यमूलं मूलस्य नहि मूलं कल्पनीयम्, प्रकृतिरेव महदादेर्मूलं नहि तस्या मूलभूताया अपि मूलेन भाव्यम् ॥६७॥

मूलस्याप्यन्यमूलकल्पनायाम् -

पारम्पर्येऽप्येकत्र परिनिष्ठेति संज्ञामात्रम् ॥६८॥

(पारम्पर्ये-अपि) मूलभूतायाः प्रकृतेरपि परं मूलमन्यदिति कल्पनायां पुनस्तस्मादपि परं तन्मूलमन्यत्पुनस्तस्मात्परमन्यदिति मूलपरम्परा प्रसज्यते तत्रेत्थं पारम्पर्ये परस्परमिति प्रवाहेऽपि (एकत्र

सूत्रार्थः= अंतिम कारण के और कारण का अभाव होने से अंतिम कारण विना कारण वाला होता है।

भाष्य विस्तार = मूले तन्मूलस्याभावो भवति। जो मूल कारण होता है उसका और मूल कारण नहीं होता, अंतिम कारण का कारण नहीं होता। तस्मात् मूलं भवत्यमूलं इसलिए जो मूल होता है वह विना मूल वाला होता है मूलस्य नहि मूलं कल्पनीयम्, मूल का मूल कल्पित नहीं करना चाहिए (कारण का कारण का कारण का कारण कहीं तो रुकोगे? अंतिम कारण का आगे नहीं सोचना चाहिए) प्रकृतिरेव महदादेर्मूलं प्रकृति ही महद आदि सभी कारणों का मूल=अंतिम कारण है, नहि तस्या मूलभूताया अपि मूलेन भाव्यम् तो जो अंतिम मूल कारण है उसका और मूल कारण सूक्ष्म द्रव्य नहीं होना चाहिए, यही न्याय, बुद्धिमत्ता व तर्कपूर्ण है ॥६७॥

मूलस्याप्यन्यमूलकल्पनायाम् - मूल के भी और मूल की कल्पना करते जाएंगे तब क्या होगा?

पारम्पर्येऽप्येकत्र परिनिष्ठेति संज्ञामात्रम् ॥६८॥

सूत्रार्थः= कारण के कारण होने की परंपरा में कहीं एक पदार्थ पर वह परंपरा समाप्त अवश्य होगी, उसका नाम मात्र का ही भेद रहेगा।

भाष्य विस्तार = मूलभूतायाः प्रकृतेरपि परं मूलमन्यदिति कल्पनायां पुनस्तस्मादपि परं तन्मूलमन्यत्पुनस्तस्मात्परमन्यदिति मूलपरम्परा प्रसज्यते मूलभूत प्रकृति है उस प्रकृति का भी और आगे कोई मूल अन्य पदार्थ हो ऐसी कल्पना करें फिर उससे आगे और कोई सूक्ष्म कारण हो उसका और कारण हो इस प्रकार से कारण के कारण की परंपरा चल पड़ेगी तत्रेत्थं पारम्पर्ये परस्परमिति प्रवाहेऽपि इस परंपरा में परम परम कारण कारण ऐसे प्रवाह में परिणाम ये निकलेगा कस्मिंश्चिदेकस्मिन् वस्तुनि परिसमाप्तिः कथनपरिसमाप्तिर्वा विचारपरिसमाप्तिस्तु भविष्यति कहीं न कहीं एक वस्तु पर जाकर के अगला कारण मानने की कहीं तो समाप्ती होगी अथवा कहीं तो परिसमाप्ति विचार की समाप्ती होगी ही, जो उत्पन्न न हुआ हो उसको अंतिम कारण तो मानना ही पड़ेगा। क्यों अनवस्थादोषपरिहाराय तर्हि यस्मिन् समाप्तिस्तन्मूलं सर्वतोमूलममूलं प्रकृतिर्वाच्येति जहां भी कथन परिसमाप्ति होगी, क्यों होगी? अनवस्था दोष को हटाने के लिए कहीं न कहीं तो रुकना पड़ेगा,

सांख्यदर्शनम्-प्रथमोऽध्यायः

परिनिष्ठा-इति संज्ञामात्रम्) कस्मिंश्चिदेकस्मिन् वस्तुनि परिसमाप्तिः कथनपरिसमाप्तिर्वा विचारपरिसमाप्तिस्तु भविष्यत्येवानवस्थादोषपरिहाराय तर्हि यस्मिन् समाप्तिस्तन्मूलं सर्वतोमूलममूलं प्रकृतिर्वाच्येति गतं भिन्ननाम्नि संज्ञा मात्रभेद एव न मूलत्वभेदो न मूलस्यामूलत्वभेदश्च ॥ ६८ ॥

प्रकृतेः संहतपरार्थत्वे पूर्वपक्ष उत्थाप्यते -

समानः प्रकृतेर्द्वयोः ॥ ६९ ॥

(प्रकृतेः-द्वयोः समानः) प्रकृतेरिति पञ्चमीनिर्देशः । प्रकृतिसकाशाद् द्वयोर्मुक्तबद्धयोः पुरुषयोः समानोऽर्थलाभोऽस्ति प्रकृतिर्हि परमार्था पुरुषार्था तच्चेदमुक्तमेवानन्तरसूत्रे “संहतपरार्थत्वात् पुरुषस्य” ६६ तथैव योगदर्शनेऽपि” परार्थं संहत्यकारित्वात्” (योग ०४.२४) तेन समानोऽर्थः सिध्येत् प्रकृतिसकाशाद् द्वयोर्मुक्तबद्धयोः पुरुषयोः कथं कस्मैचिदपवर्गफलं कस्मैचिद् भोगः फलमभिव्यज्यते

अगर रुकेंगे नहीं तो फिर अनवस्था दोष आयेगा, कारण का भी और कारण इस परंपरा में तो समाप्ती होगी ही नहीं, दूसरा व्यवहार में बहुत से दोष आ जाएंगे। यस्मिन् समाप्ति जहां पर जाके इस बात की समाप्ति होगी तन्मूलम वो मूल कहलाएगा सर्वतोमूलम वो सबसे अंतिम कारण होगा अमूलम उसका और कोई कारण नहीं होगा प्रकृतिर्वाच्येति और उसी का नाम प्रकृति कहना चाहिए गतं भिन्ननाम्नि संज्ञा मात्रभेद एव न मूलत्वभेदो न मूलस्यामूलत्वभेदश्च इस तरह से केवल नाम मात्र का भेद रहा हम इसे प्रकृति कह रहे हैं आप भले ही ५० वा पदार्थ कहलो, नाम मात्र का भेद होने से सिद्धान्त का भेद तो नहीं है, जब वेद कह रहा है कि प्रकृति ही आदि मूल है तो शब्द प्रमाण से स्वीकार कर लेना चाहिए, इसलिए इसको आदिमूल कारण मान लेना चाहिए ॥ ६८ ॥

प्रकृतेः संहतपरार्थत्वे पूर्वपक्ष उत्थाप्यते - प्रकृति संहत रूप है, और संहत परार्थ के लिए होता है । इस स्थिति में पूर्वपक्ष उठाया जाता है-

समानः प्रकृतेर्द्वयोः ॥ ६९ ॥

सूत्रार्थ= जब प्रकृति परार्थ है तो प्रकृति से सब जीवात्माओं को समान लाभ होना चाहिए।

भाष्य विस्तार = प्रकृतेरिति पञ्चमीनिर्देशः । सूत्र में जो प्रकृतेः शब्द है इसमें पंचमी विभक्ति अथवा षष्ठी भी हो सकती है, यहाँ पंचमी अर्थ लेना चाहिए, पंचमी का निर्देश किया गया है। प्रकृतिसकाशाद् द्वयोर्मुक्तबद्धयोः पुरुषयोः समानोऽर्थलाभोऽस्ति प्रकृतिर्हि परमार्था पुरुषार्था तच्चेदमुक्तमेवानन्तरसूत्रे “संहतपरार्थत्वात् पुरुषस्य” ६६ यहाँ कहते हैं प्रकृतिसकाशाद् प्रकृति से द्वयोर्मुक्तबद्धयोः पुरुषयोः मुक्तात्मा और बद्ध आत्मा दोनों को समानोऽर्थलाभोऽस्ति समान अर्थ लाभ होना चाहिए (प्रयोजन समान सिद्ध होना चाहिए), क्योंकि बताया ही था कि प्रकृतिर्हि परमार्था पुरुषार्था प्रकृति परमार्थ के लिए है, पुरुष के प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए है । यह बात पिछले सूत्र ६६ में कही गई थी। तथैव वैसे ही योगदर्शनेऽपि योगदर्शन में भी कहा “परार्थं संहत्यकारित्वात्” वह वस्तु परार्थ होती है जो संहत होती है। तेन समानोऽर्थः सिध्येत् इस कारण से दोनों को समान लाभ होने चाहिए। प्रकृतिसकाशाद् द्वयोर्मुक्तबद्धयोः पुरुषयोः कथं कस्मैचिदपवर्गफलं कस्मैचिद् भोगः फलमभिव्यज्यते । पूर्वपक्षी प्रश्न उठा रहा है कि दो प्रकार के व्यक्ति हैं

।

‘द्वयोः’ इत्यस्यार्थोऽनिरुद्धवृत्तौ ‘वादिप्रतिवादिनोः’ विज्ञानभिक्षुभाष्ये ‘वादिप्रतिवादिनोः अथवा प्रकृतिपुरुषयोः’ अर्थःकृतः, उभयत्राप्यर्थायुक्तिः। नह्यत्र वादिप्रतिवादिनौ प्रत्यक्षं सूत्रे प्रसज्येते। अग्रिमसूत्रासांगत्यं चापतति तथार्थविधाने तस्मात्तयोर्न युक्तार्थकारिता ॥ ६९ ॥

समाधत्ते -

अधिकारित्रैविध्यान्न नियमः ॥ ७० ॥

(अधिकारित्रैविध्यात्) अधिकारिणामुत्तममध्यममन्दरूपत्रिविधत्वात् (न नियमः)
समानार्थसाधनस्य नियमो न भवति, तत्रोत्तमाधिकारी क्षिप्रं मुक्तो भवति मध्यमाधिकारी

एक ऊंचे वैराग्य वाले जो मुक्ति को प्राप्त होने वाले हैं उनको तो प्रकृति मोक्ष देने वाली है, और बाकी जो रागी द्वेषी है उनको यह मोक्ष देती नहीं। दोनों को अलग-अलग फल दे रही है प्रकृति।

‘द्वयोः’ इत्यस्यार्थोऽनिरुद्धवृत्तौ ‘वादिप्रतिवादिनोः’ विज्ञानभिक्षुभाष्ये ‘वादिप्रतिवादिनोः अथवा प्रकृतिपुरुषयोः’ अर्थःकृतः, उभयत्राप्यर्थायुक्तिः। स्वामी ब्रह्ममुनि जी कहते हैं ‘द्वयोः’ इस शब्द का अर्थ अनिरुद्धवृत्ति में किया है ‘वादिप्रतिवादिनोः’ वादि और प्रतिवादी और विज्ञानभिक्षु भाष्य में दो अर्थ किए हैं ‘वादिप्रतिवादिनोः और प्रकृतिपुरुषयोः’ ये दोनों टीकाओं में अर्थ अयुक्त है। नह्यत्र वादिप्रतिवादिनौ प्रत्यक्षं सूत्रे प्रसज्येते। यहा इस सूत्र में वादि और प्रतिवादी का कोई प्रसंग ही नहीं है। अग्रिमसूत्रासा इत्थं चापतति तथार्थविधाने तस्मात्तयोर्न युक्तार्थकारिता उन दोनों ने जो अर्थ किया है उस अर्थ के साथ अगले सूत्र के साथ संगति नहीं बैठती, वैसा अर्थ करने में जैसा उन्होंने किया, इसलिए उनका अर्थ=व्याख्या ठीक नहीं है ॥ ६९ ॥

समाधत्ते -

अधिकारित्रैविध्यान्न नियमः ॥ ७० ॥

सूत्रार्थ= मोक्ष प्राप्त करने के अधिकारी तीन प्रकार के हैं उत्तम, मध्यम और मंद। प्रकृति से सबको समान लाभ मिले, ऐसा कोई नियम नहीं है।

भाष्य विस्तार = अधिकारिणामुत्तममध्यममन्दरूपत्रिविधत्वात् अब ७० वे सूत्र में सिद्धांती कहता है कि- मोक्ष प्राप्ति के अधिकारी तीन प्रकार के होते हैं, उत्तम, मध्यम और मंदरूप अधिकारी समानार्थसाधनस्य नियमो न भवति, इसलिए सबको समान अर्थ लाभ होगा, ऐसा कोई नियम नहीं है। तत्रोत्तमाधिकारी क्षिप्रं मुक्तो भवति इन तीनों अधिकारियों में से जो उत्तम अधिकारी है उसका मोक्ष शीघ्रता से इसी जन्म में हो जाएगा मध्यमाधिकारी चिरेणानेकजन्मजन्मान्तराण्यतिबाह्य मुक्तिभागभवति जो माध्यम अधिकारी है उसको देर से होगा मोक्ष लंबे समय तक अनेक जन्म जन्मान्तरों के बाद मोक्ष प्राप्त होगा जो तीसरे अधिकारी हैं मन्दस्तु बद्धः सन् भोगमेवानुधावति जो मंद अधिकारी है वह तो बंधन में पड़ा हुआ भोगों के पीछे भागता रहता है ॥

७० ॥

चिरेणानेकजन्मजन्मान्तराण्यतिबाह्य मुक्तिर्भाग्भवति मन्दस्तु बद्धः सन् भोगमेवानुधावति ॥ ७० ॥

कार्यकारणभावमाश्रित्यानुमानेन प्रकृतेरप्रत्यक्षायाः पुनः प्रकृतितद्विकाराणां च संहतत्वमवलम्ब्य पुरुषस्य च विवेकप्रकारं प्रदर्शयैदानीं प्रकृतेः पूर्वापरकार्यक्रममाह -

महदाख्यमाद्यं कार्यं तन्मनः ॥ ७१ ॥

(महदाख्यम्-आद्यं कार्यम्) ' प्रकृतेर्महान् ' इत्युक्तं तन्महदाख्यं प्रकृतेराद्यं कार्यमस्ति (तन्मनः) तच्च सामष्टिकं मनो मननसाधनमध्यवसायात्मकमन्तःकरणम् ॥ ७१ ॥

कार्यकारणभावमाश्रित्यानुमानेन प्रकृतेरप्रत्यक्षायाः पुनः प्रकृतितद्विकाराणां च संहतत्वमवलम्ब्य पुरुषस्य च विवेकप्रकारं प्रदर्शयैदानीं प्रकृतेः पूर्वापरकार्यक्रममाह - कार्य कारण भाव को आधार बना कर अनुमान प्रमाण से जो कि आँख से नहीं दिखती ऐसी प्रकृति के और प्रकृति व उसके विकारी पदार्थ उनके संहत स्वरूप के आधार पर और पुरुष का विवेक प्रकार दिखलाकर के अब फिर प्रकृति के पूर्वापर कार्यक्रम को दिखलाते हैं-

महदाख्यमाद्यं कार्यं तन्मनः ॥ ७१ ॥

सूत्रार्थ= महत नाम वाला प्रकृति का प्रथम कार्य है, उसे मन=अन्तःकरण (बुद्धि) कहते हैं।

भाष्य विस्तार = ' प्रकृतेर्महान् ' इत्युक्तं " प्रकृति से महतत्व बनता है " ऐसा कहा गया था तन्महदाख्यं प्रकृतेराद्यं कार्यमस्ति (प्रकृति से महतत्व बना) वो जो महतत्व है वह प्रकृति का पहल कार्य है, तच्च सामष्टिकं मनो मननसाधनमध्यवसायात्मकमन्तःकरणम् । तच्च सामष्टिकं यहाँ ' सामष्टिकं ' का कोई अर्थ नहीं है, यहाँ जो मनः शब्द है उसे महतत्व के नाम से कह दिया, मन का अर्थ इंद्रियों को निर्देश करने वाला उभय इंद्रिय नहीं है। महतत्व का नाम भी ' मन ' है ये बात इस सूत्र में बताई जा रही है, मन नाम क्यों है? " मन ज्ञाने " धातु है से ' मनः ' शब्द बना है । और इसका अर्थ है ज्ञान कराने वाला साधन। ज्ञान कई प्रकार का होता है एक है भ्रांतिवाला ज्ञान जिसे अविवेक कह रहे हैं । दूसरा संशयरूप ज्ञान है, तीसरा निश्चयात्मक ज्ञान है। निश्चयात्मक ज्ञान कराने वाला होने से इसका नाम ' मन ' है और बुद्धि (महतत्व) का कार्य निश्चयात्मक ज्ञान कराना है। मननसाधनमध्यवसायात्मकमन्तःकरणम् मनन निर्णय कराने वाला निश्चय कराने वाला अंतःकरण है ॥ ७१ ॥

चरमोऽहंकारः ॥ ७२ ॥

सूत्रार्थ= महतत्व के बात होने वाला कार्य अहंकार है ।

भाष्य विस्तार = ' महतोऽहंकारः ' ' महतत्व से अहंकार बना ' इति य उक्तः स यह जो कहा गया था वह महत्तत्त्वतश्चरमस्तत्पश्चाद्भूतः महतत्व के पश्चात बाद में उत्पन्न होने वाला कार्यत्वमापन्नोऽहंकारोऽस्ति जो कार्य स्वरूप को प्राप्त हुआ था वो अहंकार कहलाता है ॥ ७२ ॥

तत्कार्यत्वमुत्तरेषाम् ॥ ७३ ॥

चरमोऽहंकारः ॥ ७२ ॥

(चरमः-अहंकारः) 'महतोऽहंकारः' इति य उक्तः स महत्तत्त्वतश्चरमस्तत्पश्चाद्भूतः कार्यत्वमापन्नोऽहंकारोऽस्ति ॥ ७२ ॥

तत्कार्यत्वमुत्तरेषाम् ॥ ७३ ॥

(उत्तरेषां तत्कार्यत्वम्) 'अहंकारात् पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियम्' इत्येषामुत्तरेषां तत्कार्यत्वमहंकारकार्यत्वं पुनश्च तन्मात्रकार्याणां स्थूलभूतानां तत्कार्यत्वं तन्मात्रकार्यत्वमित्यप्युक्तं भवति ॥ ७३ ॥

तदत्र -

आद्यहेतुता तद्द्वारा पारम्पर्येऽप्यणुवत् ॥ ७४ ॥

सूत्रार्थ= अहंकार के बाद जो सोलह पदार्थ हैं वे अहंकार के कार्य हैं । अहंकार से बने हैं ।

भाष्य विस्तार = 'अहंकारात् पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियम्' ६१ वे सूत्र में कहा था 'अहंकार से पाँच तन्मात्राएँ और दोनों प्रकार की इंद्रियाँ उत्पन्न हुई थीं' इत्येषामुत्तरेषां तत्कार्यत्वमहंकारकार्यत्वं पुनश्च तन्मात्रकार्याणां स्थूलभूतानां तत्कार्यत्वं तन्मात्रकार्यत्वमित्यप्युक्तं भवति । इत्येषामुत्तरेषां अगले अगले वाले पदार्थ पीछे वाले के कार्य हैं तत्कार्यत्वमहंकारकार्यत्वं इन सबका जो बाद में उत्पन्न हुए महत्त्व के पश्चात् तन्मात्राएँ इंद्रियाँ आदि वो सब अहंकार के कार्य हैं पुनश्च और फिर तन्मात्रकार्याणां जो तन्मात्रारूपी कार्य हैं स्थूलभूतानां तन्मात्राओं से जो स्थूल भूत उत्पन्न हुए वे तत्कार्यत्वं तन्मात्रकार्यत्वमित्यप्युक्तं भवति इस सूत्र में उसका भी कथन हो गया कि जो पाँच महाभूत हैं वे तन्मात्राओं के कार्य हैं ॥ ७३ ॥

तदत्र -

आद्यहेतुता तद्द्वारा पारम्पर्येऽप्यणुवत् ॥ ७४ ॥

सूत्रार्थ= जो सर्वप्रथम कारणता है वो प्रकृति की है कार्य कारण प्रवाह के द्वारा ऐसी परंपरा खोजने में जब प्रयोग करेंगे तो इस परंपरा में आद्यहेतुता प्रकृति की मिलेगी, जैसे घड़े को तोड़ने पर उसका आदि कारण अणु मिलता है ।

भाष्य विस्तार = प्रकृतेः कार्य महत्तत्त्वं तस्य कार्यमहंकारोऽहंकारस्य कार्यं तन्मात्राणि तन्मात्राणां कार्याणि स्थूलभूतानीति कार्यपारम्पर्येऽपि प्रकृति का जो कार्य है वो महत्त्व है उसका कार्य अहंकार है, अहंकार का कार्य तन्मात्राएँ हैं, तन्मात्राओं के कार्य स्थूलभूत हैं इस प्रकार कार्य परंपरा होने पर भी उक्तकार्यकारणप्रवाहद्वाराऽऽद्यहेतुता, जैसा ऊपर कार्य कारण प्रवाह बतलाया इस प्रवाह के द्वारा इस परंपरा में जो आदि हेतु बनेगा । वो कौन होगा? आदौ भव आद्यः, जो आदि में हो उसका नाम है 'आद्य' आद्यश्च हेतुराद्यहेतु जो सबसे आरंभ में होने वाला हेतु है वो होगा आद्यहेतु कारण । तस्य भाव आद्यहेतुता अब हेतु में 'भव' प्रत्यय लगाया 'तल' तल का फिर 'ता' बन जाता है, प्राथमिककारणता तो आद्यहेतुता 'प्रथमकारणता'

सांख्यदर्शनम्-प्रथमोऽध्यायः

(पारम्पर्ये-अपि) प्रकृतेः कार्यं महत्तत्त्वं तस्य कार्यमअहंकारोऽअहंकारस्य कार्यं तन्मात्राणि तन्मात्राणां कार्याणि स्थूलभूतानीति कार्यपारम्पर्येऽपि (तद्द्वारा-आद्यहेतुता) उक्तकार्यकारणप्रवाहद्वाराऽऽद्यहेतुता, आदौ भव आद्यः, आद्यश्च हेतुराद्यहेतुस्तस्य भाव आद्यहेतुता प्राथमिककारणता (अणुवत्) अणुवद्विज्ञेयाऽन्वेष्ट्या यथा कस्यचिन्महत्परिमाणवतः कार्यवस्तुनो घटादिकस्य कारणतायामणुस्तस्यात्यन्तसूक्ष्मभाग आद्यं कारणं भवति तथैवात्रापि निर्णेतव्याऽऽद्यकारणता यदतः परं किं सूक्ष्मं पुनस्ततः परं किमिति प्रातिलोम्येन ॥ ७ ४ ॥

पूर्वभावित्वे द्वयोरेकतरस्य हानेऽन्यतरयोगः ॥ ७ ५ ॥

(द्वयोः पूर्वभावित्वे) प्रकृतिपुरुषयोरखिलकार्यात् पूर्वसत्तावत्त्वे सति (एकतरस्य हाने)

ऐसा बनेगा । प्राथमिककारणता जिस पदार्थ में होगी, वो क्या है बताते हैं, तो आद्य हेतुता अणुवद्विज्ञेयाऽन्वेष्ट्या अणुवत के समान समझनी चाहिए । एक दृष्टान्त देते हैं यथा कस्यचिन्महत्परिमाणवतः कार्यवस्तुनो घटादिकस्य कारणतायामणुस्तस्यात्यन्तसूक्ष्मभाग आद्यं कारणं भवति जैसे किसी महत् परिमाण वाले बड़े आकार वाले पदार्थ का कार्यवस्तुनो घटादिकस्य जैसे घड़ा है वस्त्र, दीवार, मकान है इनका जो आदि कारण होगा कारणतायाम इनका कारण इनको तोड़ते तोड़ते जब अंतिम कण मिला पार्थिव अणु ये इसका मूल कारण है जैसे घड़े आदि को तोड़ते समय अंतिम कारण पार्थिव अणु मिला इसी प्रकार से तस्य अत्यन्त सूक्ष्मभाग आद्यं कारणं भवति उसका अंतिम सूक्ष्म कारण आदिकरण होता है तथैवात्रापि निर्णेतव्याऽऽद्यकारणता उसी प्रकार जब जगत कि आदि कारणता ढूँढ़ेंगे तो यहाँ भी ऐसे ही स्थूल भूत तन्मात्राएँ को तोड़ते चले जाएंगे खोजते जाएंगे तब जो अंतिम कारण मिले वही मूल कारण है यदतः परं किं सूक्ष्मं पुनस्ततः परं किमिति प्रातिलोम्येन इस प्रकार से पृथ्वी का कारण सूक्ष्म पदार्थ तन्मात्राओं का अहंकार उसका महत्त्व फिर प्रकृति इसका कोई कारण नहीं ये अंतिम है । इस प्रकार से अंतिम कारण खोजते खोजते प्रकृति पर जाकर रुकेंगे ॥ ७४ ॥

पूर्वभावित्वे द्वयोरेकतरस्य हानेऽन्यतरयोगः ॥ ७ ५ ॥

सूत्रार्थ= दो वस्तुओं के पूर्णतः विद्यमान होने पर दो में से एक (पुरुष) की सर्वप्रथम कारणता असिद्ध होने पर दूसरी वस्तु प्रकृति को जगत का सर्वप्रथम कारण मानना चाहिए ।

भाष्य विस्तार = प्रकृतिपुरुषयोरखिलकार्यात् पूर्वसत्तावत्त्वे सति एकतरस्यैकस्यचिदाद्यहेतुताहाने प्राथमिककारणत्वासिद्धौ आदिमूल कारण क्या है इसकी खोज करते हैं, दो वस्तु हैं एक प्रकृति दूसरा पुरुष । प्रकृतिपुरुषयोरखिलकार्यात् पूर्वसत्तावत्त्वे सति अखिल सम्पूर्ण जगत में जो पदार्थ बनाए गए इस सम्पूर्ण जगत के उत्पन्न पदार्थों से प्रकृति और पुरुष ये दोनों पूर्व सत्ता वाले थे (जगत बनने से पहले ये दोनों विद्यमान थे) उन्हीं में से कोई न कोई कारण होगा क्योंकि जगत का कारण जगत से पहले होना चाहिए था एकतरस्यैकस्यचिदाद्यहेतुताहाने जब हमने पुरुष के विषय में सोचा कि क्या जीवात्मा जगत का उपदान कारण हो सकता है? नहीं हो सकता । क्योंकि वह चेतन पदार्थ है । जो ठोस पदार्थ है बड़े बड़े तो इनका उपदान कारण भी कोई ठोस स्थूल होना चाहिए । क्या पुरुष ठोस है पत्थर की तरह? नहीं है । इस प्रकार से एक वस्तु

सांख्यदर्शनम्-प्रथमोऽध्यायः

एकतरस्यैकस्यचिदाद्यहेतुताहाने प्राथमिककारणत्वासिद्धौ (अन्यतरयोगः) तद्विन्नस्याद्यहेतुतायोगः प्राथमिककारणत्वयोगो विज्ञेयः। तत्र पुरुषे न पारम्पर्येणाणुत्वमस्ति, यथा योगदर्शनस्य व्यासभाष्ये सूचितम् “पार्थिवस्याणोर्गन्धतन्मात्रं सूक्ष्मो विषयः, आप्यस्य रसतन्मात्रं तैजसस्य रूपतन्मात्रं वायवीयस्य स्पर्शतन्मात्रम्, आकाशस्य शब्दतन्मात्रमिति, तेषामअहंकारः, अस्यापि लिंगमात्रं सूक्ष्मो विषयः, लिंगस्यालिंगं सूक्ष्मो विषयः, न चालिंगात्परं सूक्ष्ममस्ति, यथा लिंगात्परमलिंगस्य सौक्ष्म्यं न चैवं पुरुषस्य किन्तु लिंगस्यान्वयिकारणं पुरुषो न भवति, अतः प्रधाने सौक्ष्म्यं निरतिशयं व्याख्यातम्” (योग ०१.४५ व्यासः) तस्मादखिलकार्यजाते प्रकृतेराद्यहेतुता प्राथमिककारणतेति गतम् ॥ ७५ ॥

प्रकृतेराद्यहेतुता प्रतिपाद्यतेऽणुवदितिदृष्टान्तेन तर्ह्यणुरेव भवतु सर्वस्य जगत आद्यहेतुरित्याकांक्षायामुच्यते -

जगत के उपदान कारण होने में असिद्ध हो गई, इसलिए कहा एक वस्तु तो आद्य हेतु होने में असिद्ध हो गई प्राथमिककारणत्वासिद्धौ वो प्रथम कारण सिद्ध नहीं हो सकी। तब तद्विन्नस्याद्यहेतुतायोगः प्राथमिककारणत्वयोगो विज्ञेयः पुरुष से भिन्न दूसरी वस्तु वो है प्रकृति। प्रकृति की आद्य हेतुता, उसी को प्राथमिक कारण मानना चाहिए, ये सिद्ध हुआ। तत्र पुरुषे न पारम्पर्येणाणुत्वमस्ति, जैसी परंपरा से अणुता (सूक्ष्म से भी सूक्ष्म ये कार्य कारण परंपरा थी) ये जैसी प्राकृतिक द्रव्य में थी वैसी पुरुष में नहीं, पुरुष में तो ऐसी परंपरा से स्थूलता है नहीं यथा योगदर्शनस्य व्यासभाष्ये सूचितम् “पार्थिवस्याणोर्गन्धतन्मात्रं सूक्ष्मो विषयः, जैसी योगदर्शन के व्यास भाष्य में बताई गई सूक्ष्मता है वैसी पुरुष में नहीं घटती। पार्थिव अणु का जो सूक्ष्म पदार्थ है, वह है गंध तन्मात्रा। आप्यस्य रसतन्मात्रं तैजसस्य रूपतन्मात्रं वायवीयस्य स्पर्शतन्मात्रम्, आकाशस्य शब्दतन्मात्रमिति, जलीय पदार्थ का सूक्ष्म विषय है वह रस तन्मात्रा, तेजस का रूप तन्मात्रा, वायु का स्पर्श तन्मात्रा और आकाश का शब्द तन्मात्रा है। तेषामअहंकारः, इन सबका जो और सूक्ष्म विषय है वो है अहंकार। अस्यापि लिंगमात्रं सूक्ष्मो विषयः, इस अहंकार का भी सूक्ष्म विषय लिंगमात्र=महतत्व है, लिंगस्यालिंगसूक्ष्मो विषयः, लिंग का सूक्ष्म विषय अलिंग है। अलिंग नाम प्रकृति का है (सत्त्व रज तम)। न चालिंगात्परं सूक्ष्ममस्ति, और इस अलिंग से सूक्ष्म कुछ भी नहीं है। यथा लिंगात्परमलिंगस्य सौक्ष्म्यं न चैवं पुरुषस्य जैसी सूक्ष्मता महतत्व की तुलना में प्रकृति की है और उसका उपदान भी है, इस प्रकार से पुरुष में ऐसी सूक्ष्मता नहीं है किन्तु लिंगस्यान्वयिकारणं पुरुषो न भवति, लिंग=महतत्व का अन्वयी कारण पुरुष नहीं होता अपितु प्रकृति होती है। अतः प्रधाने सौक्ष्म्यं निरतिशयं व्याख्यातम्” इसलिए प्रधान में सबसे अधिक सूक्ष्मता स्वीकार की गई, कार्य कारण परंपरा से सबसे अधिक सूक्ष्मता प्रकृति की मानी गई (योग १.४५ व्यासः) तस्मादखिलकार्यजाते प्रकृतेराद्यहेतुता प्राथमिककारणतेति गतम् इस सम्पूर्ण कार्य पदार्थ में प्रकृति की आद्य हेतुता है अर्थात् प्राथमिक कारणता है, ये सिद्ध हुआ ॥ ७५ ॥

प्रकृतेराद्यहेतुता प्रतिपाद्यतेऽणुवदितिदृष्टान्तेन तर्ह्यणुरेव भवतु सर्वस्य जगत आद्यहेतुरित्याकांक्षायामुच्यते- प्रकृति की आद्य हेतुता प्रतिपादित की है की प्रकृति सबसे आदि मूल कारण है और इसको सिद्ध करने के लिए ‘अणुवत’ ये दृष्टांत दिया अब पूर्वपक्षी कहता है कि अणु को ही सब जगत का आदिमूल

परिच्छिन्नत्वान्न सर्वोपादानम्* ॥ ७६ ॥

(परिच्छिन्नत्वात्) अणोः परिच्छिन्नत्वादेकदेशित्वात् (सर्वोपादानं न) सर्वस्य जगत उपादानं न भवितुमर्हति, एकैकस्य घटादिकस्य वस्तुनः पार्थिवादिकस्य पदार्थस्य वा तत्तदणुः स्यादुपादानं कारणं न सर्वेषां वस्तूनां पार्थिवाप्य तैजसवायव्याकाशीयानां पदार्थानामणुरेकः सर्वोपादानं भवति किन्तु प्रत्येकस्य पृथक् पृथक् पदार्थस्य पृथक्पृथगेवाणुरुपादानं भवितुमर्हेत् सर्वोपादानं न । तस्मात् प्रकृतिरेव सर्वोपादानं तस्या एव सर्वोपादानत्वादाद्यहेतुतासम्भवः ॥ ७६ ॥

पुनश्च -

तदुत्पत्तिश्रुतेश्च ॥ ७७ ॥

कारण मान लें तो । ऐसा प्रश्न होने पर उत्तर देते हैं-

परिच्छिन्नत्वान्न सर्वोपादानम्* ॥ ७६ ॥

सूत्रार्थ= घट आदि पदार्थों का एक एक अणु एक देशी होने से सम्पूर्ण जगत के वस्तुओं का एक अणु उपादान कारण नहीं हो सकता ।

भाष्य विस्तार = अणोः परिच्छिन्नत्वादेकदेशित्वात् अणु के परिच्छिन्न होने से अर्थात् एक देशी होने से सर्वस्य जगत उपादानं न भवितुमर्हति, सारे जगत का उपादान कारण नहीं हो सकता। एकैकस्य घटादिकस्य वस्तुनः पार्थिवादिकस्य पदार्थस्य वा तत्तदणुः स्यादुपादानं कारणं (एक एक वस्तु के अणु उसी एक एक वस्तु का उपादान कारण मानें जाएंगे) जो जो परमाणु जिस जिस वस्तु में विद्यमान है वह उस उस वस्तु का उपादान कारण माना जाएगा एक वस्तु में विद्यमान अणु सबका उपादान कारण नहीं माना जाएगा । न सर्वेषां वस्तूनां पार्थिवाप्य तैजसवायव्याकाशीयानां पदार्थानामणुरेकः सर्वोपादानं भवति पार्थिव जलीय वायवीय अग्नि आकाशीय पदार्थों का एक ही परमाणु सबका उपादान कारण नहीं हो सकता। किन्तु प्रत्येकस्य पृथक्-पृथक् पदार्थस्य पृथक्पृथगेवाणुरुपादानं भवितुमर्हेत् सर्वोपादानं न। किन्तु प्रत्येक वस्तु का परमाणु उस उस वस्तु का उपादान बन सकता है सब वस्तुओं का उपादान नहीं हो सकता क्योंकि वह एक देशीय है। तस्मात् प्रकृतिरेव सर्वोपादानं तस्या एव सर्वोपादानत्वादाद्यहेतुतासम्भवः अणु हर वस्तु में विद्यमान नहीं है इसलिए हर वस्तु का वह उपादान नहीं हो सकता, जबकि सत्त्व रज तम प्रत्येक वस्तु में विद्यमान है पूरे ब्रह्माण्ड में फैली है इसलिए वही प्रकृति सबका उपादान कारण है ॥ ७६ ॥

पुनश्च -

तदुत्पत्तिश्रुतेश्च ॥ ७७ ॥

सूत्रार्थ= प्रकृति से ही सारे कार्य जगत की उत्पत्ति हुई है यह वेद से भी सिद्ध है ।

भाष्य विस्तार = उत्पत्तिरत्र न भावनिर्देशः किन्तु कर्मनिर्देशः, उत्पत्तिरत्र न भावनिर्देशः अब यहाँ सूत्र में 'तदुत्पत्ति' शब्द है इस उत्पत्ति के ऊपर ये चर्चा है 'उत्पत्ति' में 'क्ति' प्रत्यय है जो कि यहाँ भाव अर्थ में नहीं है किन्तु कर्मनिर्देशः किन्तु यहाँ उत्पत्ति का अर्थ कर्म है जो उत्पन्न हुआ है पदार्थ वो है। क्तिन्

(तदुत्पत्तिश्रुतेः-च) उत्पत्तिरत्र न भावनिर्देशः किन्तु कर्मनिर्देशः, क्तिन् प्रत्ययस्य कर्मण्यपि विधानात् । तस्मात्-उत्पत्तिरर्थात् सृष्टिः, तदुत्पत्तिश्रुतेस्तस्मिन्सृष्टिश्रुतेः, तच्छब्देन सैव प्रकृतिर्गृह्यते या प्रक्रियते, प्रकृतेः सृष्टिश्रुते प्रकृतेर्विकृतिविषयिका श्रुतिरस्तीति हेतोश्च प्रकृतिरेव सर्वोपादानमाद्यहेतुः । श्रुतिः खलु “तम आसीत् तमसा गूढमग्रेऽप्रकेतं सर्वं सलिलमा इदम् । तुच्छ्येनाभ्वापिहितं यदासीत्तन्महिना जायतैकम् ॥” (ऋ ० १०. १२९. ३) ‘आभु’ अपिहितं यदासीत्तन्महिना जायतैकम् । यत् ‘आभु’ आसीत् तत उत्पत्तिश्रुतिः, तदेवैकं जायते महिना महत्तत्त्वरूपेण प्रथमा विकृतिः सृष्टिः । “इयं विसृष्टिर्यत आबभूव” (ऋ ० १०.१२९. ७) यत्पूर्वमुक्तम् ‘आभु’ ततः ‘आबभूव सृष्टिः’ इति कथनं च योगानुसारि । “तद्धेदं तर्ह्यव्याकृतमासीत्तन्नामरूपाभ्यामेव व्याक्रियत” (बृह ० १.४-७) “अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः” (श्वेता ० ४.५) “प्रधानाज्जायते सृष्टिः” इति

प्रत्ययस्य कर्मण्यपि विधानात् क्तिन् प्रत्यय का कर्म में विधान है तस्मात्-उत्पत्तिरर्थात् सृष्टिः, यदि भाव वाचक मानेगे तो ‘उत्पन्न होने कि प्रक्रिया’ ये अर्थ होगा और यदि कर्म वाचक मानेगे तो ‘उत्पन्न हुआ द्रव्य’ तो उत्पत्ति का अर्थ हो जाएगा ‘सृष्टि’ ये अंतर आएगा । तदुत्पत्तिश्रुतेस्तस्मिन्सृष्टिश्रुतेः, प्रकृति से सृष्टि का उत्पन्न होना सुनाई देता है, तच्छब्देन सैव प्रकृतिर्गृह्यते या प्रक्रियते, सूत्र में जो ‘तदुत्पत्ति’ शब्द आया है उसमें जो ‘तद’ शब्द है इस तद शब्द से प्रकृति का ग्रहण करना चाहिए प्रकृतेः सृष्टिश्रुते प्रकृतेर्विकृतिविषयिका श्रुतिरस्तीति हेतोश्च प्रकृतिरेव सर्वोपादानमाद्यहेतुः । प्रकृतेः सृष्टिश्रुते प्रकृति से सृष्टि का उत्पन्न होना सुनाई देने से प्रकृतेर्विकृतिविषयिका श्रुतिरस्ति विकृति के विषय में ये श्रुति है कि प्रकृति से ही विकृति (विशेष रूप से बनी) बनी है इति प्रकृतिरेव सर्वोपादानमाद्यहेतुः ऐसा श्रुति वचन मिलता है इस कारण से प्रकृति ही सबका उपादान आदिमूल कारण है । श्रुतिः खलु “तम आसीत् तमसा गूढमग्रेऽप्रकेतं सर्वं सलिलमा इदम् । तुच्छ्येनाभ्वापिहितं यदासीत्तन्महिना जायतैकम् ॥” (ऋ ० १०. १२९. ३) भाष्यकार इसकी व्याख्या करते हैं ‘आभु’ अपिहितं यदासीत्तन्महिना जायतैकम् । आभु नाम है यहाँ प्रकृति का । प्रलय अवस्था में जगत उत्पत्ति से पूर्व आभु नाम वाली प्रकृति थी वो ढकी हुई थी वह एक महत्त्व के रूप में प्रकट हुई यत् ‘आभु’ आसीत् तत उत्पत्तिश्रुतिः, जो आभु नाम का पदार्थ था उसी से उत्पत्ति सुनाई दे रही है तदेवैकं जायते महिना महत्तत्त्वरूपेण प्रथमा विकृतिः सृष्टिः । वही एक महत्त्व के रूप में प्रकट हुआ वो पहली विकृति रूप सृष्टि थी जिसका नाम था महत्त्व । “इयं विसृष्टिर्यत आबभूव” यह विविध प्रकार की सृष्टि जिस उपदान से प्रकट हुई है यत्पूर्वमुक्तम् ‘आभु’ ततः ‘आबभूव सृष्टिः’ इति कथनं च योगानुसारि । ये जो ‘आभु’ नाम की प्रकृति है जो पूर्व में बताई थी, ततः ‘आबभूव सृष्टिः’ उसी से सारी सृष्टि उत्पन्न हुई इति कथनं च योगानुसारि ये कथन योगानुसार=प्रसंगानुसार है । “तद्धेदं तर्ह्यव्याकृतमासीत्तन्नामरूपाभ्यामेव व्याक्रियत” प्रलय अवस्था में जब कुछ भी बना हुआ नहीं था उस समय नाम और रूप के माध्यम से वह प्रकट हुआ जगत बनकर के “अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः” इसमें कहते हैं कि एक प्रकृति को जो कभी जन्म नहीं लेती ऐसी एक मूल प्रकृति को लाल सफेद और काले रंग वाली (सत्त्व रज तम वाली) बहुत सी प्रजा को वो उत्पन्न करती है, समान रूप वाली को उत्पन्न करती है । एक और वचन उद्धृत किया है

श्रुतिनाम्नाऽनिरुद्धवृत्तौ कुतश्चिदुद्धृतं वचनम् ॥ ७७ ॥

प्रकृतेरदृश्यत्वात्सा न वस्तु तर्हि स्यादवस्तुनः सृष्टिः । उच्यते -

नावस्तुनो वस्तुसिद्धिः ॥ ७८ ॥

(अवस्तुनः-वस्तुसिद्धिः-न)अवस्तुनोऽभावात्-अभावरूपात् खलु वस्तु-
सिद्धिर्जगद्रूपवस्तुसिद्धिर्न भवति । तस्माज्जगत उपादानकारणं प्रकृतिर्वस्तुरूपा नाभावरूपा ॥ ७८ ॥

जगदपि खल्ववस्तु भवतु । अत्रोच्यते -

“प्रधानाज्जायते सृष्टिः” इत श्रुतिनाम्नाऽनिरुद्धवृत्तौ कुतश्चिदुद्धृतं वचनम् ये भी एक वचन है जो अनिरुद्ध वृत्ती में उद्धृत किया है “उस प्रधान से सृष्टि बनी” ॥ ७७ ॥

प्रकृतेरदृश्यत्वात्सा न वस्तु तर्हि स्यादवस्तुनः सृष्टिः । उच्यते - पूर्वपक्षी कहता है कि प्रकृति के अदृश्य होने से, वो कोई वस्तु थोड़ी है फिर तो अवस्तु से सृष्टि बनी । ऐसा मानना चाहिए । इसका उत्तर देते हैं-

नावस्तुनो वस्तुसिद्धिः ॥ ७८ ॥

सूत्रार्थ= अवस्तु=अभाव से वस्तु कि उत्पत्ति नहीं होती है ।

बाध्य विस्तार = अवस्तुनोऽभावात्-अभावरूपात् खलु वस्तु- सिद्धिर्जगद्रूपवस्तुसिद्धिर्न भवति । सिद्धांती ने उत्तर दिया जो अवस्तु है अभाव रूप है उससे भाव रूप जगत कि सिद्धि किसी वस्तु कि सिद्धि नहीं होती तस्माज्जगत उपादानकारणं प्रकृतिर्वस्तुरूपा नाभावरूपा इसलिए जगत का उपदान कारण वो प्रकृति वस्तु रूप है अभावरूप नहीं है ॥ ७८ ॥

जगदपि खल्ववस्तु भवतु । अत्रोच्यते - जगत भी अवस्तु हो जावे, उसे भी अवस्तु माने लें तो । इस का उत्तर देते हैं-

अबाधाददुष्टकारणजन्यत्वाच्च नावस्तुत्वम् ॥ ७९ ॥

सूत्रार्थ= प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से जगत का खण्डन न होने से और दोष रहित नेत्र आदि साधनों से जगत की प्रतीति होने के कारण जगत का अभाव रूप नहीं है ।

सूत्रार्थ= जगतोऽबाधात्, सिद्धांती कहता है कि जगत का बाध नहीं होता प्रमाणेन जगतो बाधो न भवति किन्तु प्रत्यक्षादिभिः प्रमाणैरुपलभ्यते एक हेतु दिया जगत को सत्तात्मक सिद्ध करने का कि जगत अभाव रूप नहीं है कि प्रमाण से जगत का बाध (खंडन) नहीं होता किन्तु प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से सब जगत दिखता है दूसरा हेतु तथा दुष्टकारणजन्यमपि न जगत्, और यह जो जगत है वह दुष्ट कारण से बना हुआ नहीं है, जगत का जो ज्ञान हो रहा है वह दुष्ट कारण से नहीं अपितु सही कारण से ज्ञान हो रहा है । यथा कामलादिनेत्रदोषात् पीतशंखप्रतीतिर्भवति । जैसे किसी को कामला (पीलिया) रोग हो जाए आँख में और उसे सफ़ेद शंख भी पीला दिखता है यह नेत्र दोष के कारण दिख रही है । सिद्धांती कह रहा है हमें

अबाधाददुष्टकारणजन्यत्वाच्च नावस्तुत्वम् ॥७९॥

(अबाधात्-अदुष्टकारणजन्यत्वात्-च) जगतोऽबाधात्, प्रमाणेन जगतो बाधो न भवति किन्तु प्रत्यक्षादिभिः प्रमाणैरुपलभ्यते तथाऽदुष्टकारणजन्यमपि न जगत्, यथा कामलादिनेत्रदोषात् पीतशंखप्रतीतिर्भवति । तस्मात् (अवस्तुत्वं न) जगतोऽवस्तुत्वं न किन्तु वस्तुरूपमेवास्ति, तेन वस्तुत्वे सति जगतस्तस्य कारणेनापि वस्तुना भाव्यं यतो नावस्तुनो वस्तुसिद्धिः ॥ ७९ ॥

तस्मात् -

नेत्र रोग हो गया हो हमको जगत पीला दिख रहा हो ऐसा नहीं है तस्मात् जगतोऽवस्तुत्वं न किन्तु वस्तुरूपमेवास्ति, इसलिए जगत का अवस्तुत्व नहीं है किन्तु वस्तु रूप ही है। ऐसा ही मानना चाहिए। तेन वस्तुत्वे सति जगतस्तस्य कारणेनापि वस्तुना भाव्यं यतो नावस्तुनो वस्तुसिद्धिः इस कारण से जगत को वस्तु रूप मान लेने पर उसका कारण भी वस्तु रूप होना चाहिए क्योंकि सृष्टि का ये नियम है अभाव से भाव की उत्पत्ति नहीं होती। जगत जब सत्तात्मक है प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से सिद्ध होता है इसका मूल कारण द्रव्य प्रकृति भी सत्तात्मक है ये सिद्ध हुआ। तो पूर्वपक्षी की दोनों बातें गलत सिद्ध हुई एक तो प्रकृति को अभाव रूप कह रहा था और दूसरा जगत को भी ॥ ७९ ॥

तस्मात् -

भावे तद्योगेन तत्सिद्धिरभावे तदभावात् कुतस्तरां तत्सिद्धिः ॥ ८० ॥

सूत्रार्थ= कारण द्रव्य के विद्यमान होने पर उसके संबंध से कार्य वस्तु की सिद्धि हो जाती है, और यदि कारण न हो फिर कार्य की सिद्धि कैसे हो सकती है ।

भाष्य विस्तार = कारणस्य वस्तुत्वे सति तत्सम्बन्धेन कार्यस्यापि वस्तुत्वसिद्धिर्भवति। भावे शब्द का अर्थ है 'कारणस्य भावे' कारण की सत्ता होने पर कारण के विद्यमान होने पर तत्सम्बन्धेन उसके संबंध से कार्यस्यापि वस्तुत्वसिद्धिर्भवति कार्य सत्तात्मक होगा अर्थात् कार्य वस्तु की सिद्धि होती है। अब इसके उलटके बोलते हैं कारणस्याभावेऽवस्तुत्वे तदभावयोगात् कुतो हि जगत्सिद्धिर्भवेन्न कुतोपीत्यर्थः जब कारण का अभाव होगा वस्तुरूप होगा ही नहीं तब कारण का अभाव होने से फिर जगत की सिद्धि कैसे हो जाएगी? अर्थात् किसी भी प्रकार से नहीं बनेगा। अस्ति हि जगत् तस्मात् प्रकृत्याख्येन भावपदार्थेन जगत्कारणेन भवितव्यमेव तो कह रहे हैं अस्ति हि जगत् जगत तो है, वह तो दिख रहा है प्रमाणों से सिद्ध हो रहा है तस्मात् इसलिए प्रकृत्याख्येन भावपदार्थेन जगत्कारणेन प्रकृति नामक भाव पदार्थ जो कि जगत का कारण है उसका अस्तित्व भवितव्यमेव होना ही चाहिए, अर्थात् प्रत्येक स्थिति में प्रकृति सत्तात्मक है तभी उससे ये जगत बन पाया, अन्यथा नहीं बनता ॥ ८० ॥

अथ -

न कर्मण उपादानत्वायोगात् ॥ ८१ ॥

सूत्रार्थ= कर्म से जगत की उत्पत्ति नहीं है। कर्म में उपादान बनने की योग्यता न होने से ।

भावे तद्योगेन तत्सिद्धिरभावे तदभावात् कुतस्तरां तत्सिद्धिः ॥ ८० ॥

(भावे) कारणस्य वस्तुत्वे सति (तद्योगेन) तत्सम्बन्धेन (तत्सिद्धिः) कार्यस्यापि वस्तुत्वसिद्धिर्भवति (अभावे) कारणस्याभावेऽवस्तुत्वे (तदभावात्) तदभावयोगात् (कुतस्तरां तत्सिद्धिः) कुतो हि जगत्सिद्धिर्भवेन्न कुतोपीत्यर्थः । अस्ति हि जगत् तस्मात् प्रकृत्याख्येन भावपदार्थेन जगत्कारणेन भवितव्यमेव ॥ ८० ॥

अथ -

न कर्मण उपादानत्वायोगात् ॥ ८१ ॥

(न कर्मणः) यदि केनचित्कल्प्येत काऽऽवश्यकता भावरूपायाः प्रकृतेर्जगत्सिद्धौ यस्या विवेकोऽक्ष्येत भवतु कर्मणो जगत्सिद्धिः । तर्हि न कर्मणो जगत्सिद्धिः सम्भवति । यतः (उपादानत्वायोगात्)

भाष्य विस्तार = यदि केनचित्कल्प्येत काऽऽवश्यकता भावरूपायाः प्रकृतेर्जगत्सिद्धौ यस्या विवेकोऽक्ष्येत भवतु कर्मणो जगत्सिद्धिः । यदि केनचित्कल्प्येत यदि कोई व्यक्ति ऐसी कल्पना करे काऽऽवश्यकता 'क्या आवश्यकता है भावरूपायाः भाव रूप प्रकृतेर्जगत्सिद्धौ प्रकृति से जगत् की उत्पत्ति मानने की' यदि ऐसा मान लेंगे तो फिर यस्या विवेकोऽक्ष्येत उस प्रकृति का विवेक भी करना पड़ेगा (यदि प्रकृति को सत्तात्मक मान लेंगे उससे जगत् की उत्पत्ति मान लेंगे तो फी उसकी जानकारी=विवेक करना पड़ेगा) भवतु कर्मणो जगत्सिद्धिः । सीधे कर्म से जगत् की उत्पत्ति मान लो, ऐसा यदि कोई कहे तर्हि न कर्मणो जगत्सिद्धिः सम्भवति । सिद्धांती कह रहा है कि आपकी मान्यता के अनुसार कर्म से जगत् की उत्पत्ति नहीं हो सकती । यतः कर्मणो द्रव्यनिष्ठत्वाद् द्रव्याद्विभ्रं न तत् स्वसत्ताकं क्योंकि कर्म तो द्रव्य निष्ठ है अर्थात् कर्म द्रव्य में टिकता है द्रव्य के सहारे ही कर्म किया जाता है, द्रव्य से भिन्न उसकी सत्ता नहीं है भवतु तत् कार्यस्य लक्षणं न तूपादानं तस्याद्रव्यत्वादुपादानत्वायोग्यत्वमस्ति । ठीक है भवतु तत् कार्यस्य लक्षणं न तूपादानं कर्म कार्य का लक्षण तो माना जा सकता है, (कार्य जगत् को देखकर ये अनुमान तो किया ही जा सकता है कि कर्म से ये हुआ है, प्रकृति के मूल कारण द्रव्य में ईश्वर ने क्रिया की उस क्रिया का परिणाम ये हुआ की कारण द्रव्य कार्य द्रव्य में परिवर्तित हो गया और जगत् बन गया) परंतु प्रकृति को कारण उपादान से हटा देवे और कर्म को उपादान द्रव्य मान ले ये संभव नहीं है क्योंकि उसका स्वतंत्र अस्तित्व ही नहीं है । और वह द्रव्य ही नहीं है क्रिया है तस्याद्रव्यत्वादुपादानत्वायोग्यत्वमस्ति और क्रिया किसी द्रव्य का उपादान कारण नहीं बन सकती उसमें योग्यता नहीं है, इसलिए कर्म को जगत् का उपादान नहीं मान सकते । उपादानं तु तदेव भवति यद्रूपान्तरत्वमादत्ते परिणामते कर्म तु द्रव्यस्थं यावत्कर्मणोऽन्तः स्यात् तावदेवावतिष्ठते न स्थायि उपादान तो वही हो सकता है जो भिन्न रूप को धारण करे (जो वस्तु अन्य अन्य रूप को धारण कर लेती है वो उपादान बन सकती है, वह अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखती है) और परिणाम को प्राप्त होता रहता है जबकि कर्म तु द्रव्यस्थं कर्म तो द्रव्य में स्थित रहता है यावत्कर्मणोऽन्तः स्यात् जब तक कर्म का अन्त होवे तावदेवावतिष्ठते वह उतनी देर तक ठहरता है न स्थायि वह स्थायी तो है नहीं । किन्तु प्रकृतेरेव परिणामो जगत् तस्मात् प्रकृतेर्विवेकोऽपेक्ष्यते हि किन्तु प्रकृति का ही ये परिणाम है जो जगत् है इसलिए प्रकृति का विवेक

कर्मणो द्रव्यनिष्ठत्वाद् द्रव्याद्धिन्नं न तत् स्वसत्ताकं भवतु तत् कार्यस्य लक्षणं न तूपादानं तस्याद्रव्यत्वादुपादानत्वायोग्यत्वमस्ति । उपादानं तु तदेव भवति यद्रूपान्तरत्वमादत्ते परिणमते कर्म तु द्रव्यस्थं यावत्कर्मणोऽन्तः स्यात् तावदेवावतिष्ठते न स्थायि किन्तु प्रकृतेरेव परिणामो जगत् तस्मात् प्रकृतेर्विवेकोऽपेक्ष्यते हि ॥ ८१ ॥

नानुश्रविकादपि तत्सिद्धिः साध्यत्वेनावृत्तियोगादपुरुषार्थत्वम् ॥ ८२ ॥

(आनुश्रविकात्-अपि तत्सिद्धिः-न) अनुश्रयते वेदादित्यानुश्रविकः, अनुश्रवो वेदोपदेशः । न भवतु कर्म जगत् उपादानं किन्तु प्रकृतिर्जगत उपादानं पुनः प्रकृतेर्विवेकोऽपेक्ष्यते-इत्युच्यते परन्तु यदानुश्रविकं कर्म तस्मान्मोक्षसिद्धिर्भविष्यतीति प्रसंगेखलूच्यते-आनुश्रविकाद् वैदिककर्मणोऽपि मोक्षसिद्धिर्न भविष्यति । यतः (साध्यतेवेन) यथा लौकिककर्मणः फलं साध्यकोटौ तद्वद्वैदिककर्मणः अपेक्षित है उसे जानना ही पड़ेगा ॥ ८१ ॥

नानुश्रविकादपि तत्सिद्धिः साध्यत्वेनावृत्तियोगादपुरुषार्थत्वम् ॥ ८२ ॥

सूत्रार्थ= वेदोक्त यज्ञ आदि कर्मों से भी मोक्ष प्राप्ति नहीं हो सकती, यज्ञ आदि कर्म मोक्ष प्राप्त कराने में असमर्थ होने से, पुनर्जन्म होने के कारण पुरुष का प्रयोजन (सम्पूर्ण दुःख निवृत्ति) सिद्ध नहीं होता ।

भाष्य विस्तार = अनुश्रयते वेदादित्यानुश्रविकः, सूत्र में जो आनुश्रविक शब्द है उसकी व्याख्या करते हैं कि इस शब्द का तात्पर्य क्या है वेद से हम सुनते हैं वेद से ऋषियों ने जाना फिर उन्होंने अपने शिष्यों को सिखाया, ये आनुश्रविक है । अनुश्रवो वेदोपदेशः । अनुश्रव नाम है वेद उपदेश का (क्योंकि वेद आरंभ में सुन सुनके ही सीखा गया) न भवतु कर्म जगत् उपादानं किन्तु प्रकृतिर्जगत उपादानं पूर्व पक्षी कहता है कि कर्म जगत् उपादानं न भवतु कर्म जगत् का उपादान कारण न बन पाए, न सही किन्तु प्रकृतिर्जगत उपादानं किन्तु प्रकृति जगत् का उपादान बन जाए (ये भी मान लिया कि कर्म नहीं प्रकृति है जगत् का उपादान) पुनः प्रकृतेर्विवेकोऽपेक्ष्यते फिर प्रकृति को उपादान मान लिया तो उसका विवेक भी कारण पड़ेगा उसको भी जानना पड़ेगा इत्युच्यते ऐसा आपने (सिद्धांती) कहा । परन्तु यदानुश्रविकं कर्म तस्मान्मोक्षसिद्धिर्भविष्यतीति प्रसंगेखलूच्यते पूर्वपक्षी कहता है सिद्धांती से आपने कहा प्रकृति को जानो विवेक को प्राप्त करो फिर मोक्ष होगा । परन्तु परंतु वेदों में जो कर्म करने को बताया है (यज्ञ दान सेवा परोपकर आदि) क्या इन कर्मों से मोक्ष नहीं होता ? यदानुश्रविकं कर्म तस्मान्मोक्षसिद्धिर्भविष्यति इन आनुश्रविक कर्मों के करने से मोक्ष सिद्ध हो जाएगा ? इति प्रसंगेखलूच्यते ऐसा प्रश्न उपस्थित होने पर सिद्धांती उत्तर देता है आनुश्रविकाद् वैदिककर्मणोऽपि मोक्षसिद्धिर्न भविष्यति । आनुश्रविक से वैदिक कर्म से भी जैसे- यज्ञ, दान, सेवा, परोपकार, वैदिक कर्म, उपदेश करना, पढ़ाना आदि से मोक्ष की सिद्धि नहीं हो सकती । यतः क्योंकि यथा लौकिककर्मणः फलं साध्यकोटौ तद्वद्वैदिककर्मणः फलमपि साध्यकोटौ साध्यत्वेन फलक्षयप्रसंगः । यहाँ जो वैदिक कर्म है वो सकाम कर्म हैं यथा लौकिककर्मणः फलं साध्यकोटौ जैसे लौकिक कर्मों (नौकरी, धन्धा, व्यापार, कारीगरी, मजदूरी आदि) का फल साध्य कोटि में है (साध्य कोटि= इनसे मोक्ष प्राप्त नहीं होता) इससे मोक्ष सिद्ध नहीं होता, इनसे तो जीवन चलता है लौकिक व्यवहार चलते हैं । तद्वद्वैदिककर्मणः फलमपि साध्यकोटौ

सांख्यदर्शनम्-प्रथमोऽध्यायः

फलमपि साध्यकोटौ साध्यत्वेन फलक्षयप्रसंगः। उच्यते च “तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते, एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते” (छन्दो ० ८.१.६) पुनः (आवृत्तियोगात्) पुरुषस्यावृत्तियोगो भविष्यति। अतः (अपुरुषार्थत्वम्) अपुरुषार्थत्वं स्यात् ॥ ८२ ॥

किन्तु -

तत्र प्राप्तविवेकस्यानावृत्तिश्रुतिः ॥ ८३ ॥

(तत्र) प्रकृतिपुरुषविषये (प्राप्तविवेकस्य) प्राप्तो विवेको येन विदुषा तस्य (अनावृत्तिश्रुतिः) अनावृत्तिश्रुतिरस्ति “तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया विद्ययाऽऽत्मानमन्विष्यएतममृतमभयमेतत्परायणमेतस्मान्न पुनरावर्तन्ते” (प्रश्नो ०१.१०) ॥ ८३ ॥

विवेकमन्तरेण कर्मणा तु -

वैसे ही जो वैदिक कर्म हैं से भी मोक्ष की सिद्धि नहीं हो सकती क्योंकि ये सकाम भावना से किए जा रहे हैं। क्योंकि इन कर्मों में तत्त्वज्ञान नहीं है जिससे वैराग्य भी नहीं फिर निष्काम कर्म भी नहीं। साध्यत्वेन फलक्षयप्रसंगः। चूंकि ये सकाम कर्म हैं साध्य कोटि में नहीं हैं, इनका फल लौकिक जाति-आयु-भोग है। प्रमाण देते हैं- उच्यते च “तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते, एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते” (छन्दो ० ८.१.६) कहते हैं जैसे तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते, इस जन्म में सांसारिक कर्म से जो फल प्राप्त होता है वह उपभोग कर यहीं समाप्त हो जाता है एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते और जो दान सेवा परोपकार यज्ञ आदि कर्म किए उनका फल अगला जन्म है वह भी उपभोग के बाद नष्ट हो जाएगा। इसलिए सकाम कर्मों से मोक्ष प्राप्त नहीं होगा। पुनः पुरुषस्यावृत्तियोगो भविष्यति। जो लौकिक कर्म थे उनका फल वर्तमान जन्म में भोग लेते हैं जो आध्यात्मिक सामाजिक कर्म हैं उनका फल अगले जन्म में भोग लेते हैं। फिर संसार में लौटना पड़ेगा अगला जन्म लेना पड़ेगा। अतः अपुरुषार्थत्वं स्यात् अतः मोक्ष मार्ग में तो इन कर्मों की अपुरुषार्थता है अर्थात् इन लौकिक व वैदिक कर्मों से मोक्ष नहीं मिलेगा ॥ ८२ ॥

किन्तु -

तत्र प्राप्तविवेकस्यानावृत्तिश्रुतिः ॥ ८३ ॥

सूत्रार्थ= प्रकृति और पुरुष के संबंध में विवेक प्राप्त कर लेने वाले व्यक्ति का पुनर्जन्म नहीं होता, ऐसा श्रुति कहती है।

भाष्य विस्तार = प्रकृतिपुरुषविषये प्राप्तो विवेको येन विदुषा तस्य अनावृत्तिश्रुतिरस्ति कहते हैं सकाम कर्म से मोक्ष तो मिलेगा नहीं परंतु प्रकृतिपुरुषविषये प्रकृति पुरुष के विषय में प्राप्तो विवेको येन विदुषा जिस विद्वान् ने विवेक प्राप्त कर लिया उसको तत्त्वज्ञान ईश्वर-जीव-प्रकृति का ठीक-ठीक ज्ञान हो जाएगा तस्य अनावृत्तिश्रुतिरस्ति उसका अगला जन्म रुक जाएगा अर्थात् उसका मोक्ष हो जाएगा उसकी संसार में आवृत्ति नहीं होगी। श्रुति में कहा “तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया विद्ययाऽऽत्मानमन्विष्यएतममृतमभयमेतत्परायणमेतस्मान्न पुनरावर्तन्ते” जो मनुष्य तप से, ब्रह्मचर्य के पालन से श्रद्धा से

सांख्यदर्शनम्-प्रथमोऽध्यायः

दुःखाद् दुःखं जलाभिषेकवन्न जाड्यविमोक्षः* ॥८४॥

(दुःखात्-दुःखम्) विवेकमन्तरेणानुश्रविककर्मणस्तु दुःखाद्दुःखमाप्नुयात्, एकं दुःखं निवृत्तमपरं दुःखमुपतिष्ठते तन्निवृत्तौ पुनरपरं दुःखमावर्तते । एवम् (जलाभिषेकवत्-जाड्यविमोक्षः-न) यथा जलाभिषेकाज्जाड्यार्तस्य त्वग्विष्टब्धरोग- युक्तस्य विष्टब्धगात्रस्य शीतेन पीडितस्य वा जाड्यविमोक्षो न भवति ॥८४॥

काम्ये कर्मणि भवतु संसारदुःखसम्पर्को न त्वकाम्ये, तेनाकाम्येन कर्मणा स्यादेव विमोक्षः । अत्रोच्यते -

काम्याकाम्येऽपि साध्यत्वाविशेषात् ॥८५॥

विद्या= शास्त्रों के अध्ययन से, आत्मा परमात्मा की खोज करते हैं वे लोग इस मोक्ष को प्राप्त हो जाएंगे जहां पर कोई भय नहीं ये जीवात्मा का सर्वोच्च स्थान है, मोक्ष को प्राप्त होकरके तुरन्त अगला जन्म नहीं मिलता (प्रश्नो ०१.१०) ॥८३॥

विवेकमन्तरेण कर्मणा तु -

दुःखाद् दुःखं जलाभिषेकवन्न जाड्यविमोक्षः* ॥८४॥

सूत्रार्थ= तत्त्वज्ञान के बिना केवल यज्ञादि वैदिक कर्म से व्यक्ति एक दुःख के बाद दूसरे दुःख को प्राप्त होता रहता है, जैसे शीतल जल से स्नान करने वाले को ठंड से मुक्ति नहीं मिलती ।

भाष्य विस्तार = विवेकमन्तरेणानुश्रविककर्मणस्तु दुःखाद्दुःखमाप्नुयात्, तत्त्वज्ञान को प्राप्त किए बिना आनुश्रविक कर्म करने से तो एक दुःख के बाद दूसरा दुःख आता रहेगा, एकं दुःखं निवृत्तमपरं दुःखमुपतिष्ठते एक दुःख के हटने पर दूसरा दुःख आकर घेर लेगा तन्निवृत्तौ पुनरपरं दुःखमावर्तते । उस दुःख की निवृत्ति होने पर आगे और फिर दुःख आते रहेंगे । एवं इस प्रकार से यथा जलाभिषेकाज्जाड्यार्तस्य त्वग्विष्टब्धरोग- युक्तस्य विष्टब्धगात्रस्य शीतेन पीडितस्य वा जाड्यविमोक्षो न भवति । जैसे कोई जल से भिगा हुआ है और ठंड के कारण दुःखी है इसके साथ ही शरीर=त्वचा सिकुड़ी हुई है ठंड के कारण शीत से पहले से ही दुःखी है और उपर से ठंडे पानी से नहाले इस स्थिति में उसको ठंड से मुक्ति नहीं मिलेगी । इसलिए तत्त्वज्ञान के बिना आध्यात्मिक कार्य करना ठीक नहीं है ॥८४॥

काम्ये कर्मणि भवतु संसारदुःखसम्पर्को न त्वकाम्ये, तेनाकाम्येन कर्मणा स्यादेव विमोक्षः । अत्रोच्यते - पूर्वपक्षी कहता है-यदि सकाम कर्म करेंगे तब तो संसार में जन्म लेना पड़ेगा और संसार के दुःखों को भोगना पड़ेगा और यदि निष्काम कर्म करेंगे तब तो संसार का दुःख नहीं भोगना पड़ेगा, इससे निष्काम कर्म करेंगे फिर तो मोक्ष हो जाएगा । इस पर कहते हैं-

काम्याकाम्येऽपि साध्यत्वाविशेषात् ॥८५॥

सूत्रार्थ= तत्त्वज्ञान शत प्रतिशत प्राप्त किए बिना सकाम या निष्काम कोई भी कर्म करने पर मोक्ष नहीं हो पाएगा, क्योंकि उन कर्मों का फल मोक्ष नहीं है ।

(काम्याकाम्ये-अपि) विवेकमन्तरेण काम्ये वाऽकाम्येऽपि कर्मणि तथैव दुःखप्रसंगो भवति न विमोक्षः (साध्यत्वाविशेषात्) फलस्यावरत्वात् क्षयित्वाच्च ॥ ८५ ॥

विवेकस्य साधनत्वे मोक्षफलक्षयो नेत्याह -

निजमुक्तस्य बन्धध्वंसमात्रं परं न समानत्वम् ॥ ८६ ॥

(निजमुक्तस्य) स्वरूपतो मुक्तस्य पुरुषस्य (बन्धध्वंसमात्रं परम्) विवेकात् खलु बन्धस्य ध्वंसमात्रं भवति तदेव परमभीष्टमत्यन्तपुरुषार्थत्वं मोक्षो वेति (न समानत्वम्) तत्रान्यैः साध्यफलैः सहास्य न समानत्वमस्ति नहि मोक्षस्य तद्वत्क्षयप्रसंगः ॥ ८६ ॥

विवेकसम्पादनाय सन्ति प्रमाणान्यपि साधनत्वेनोपयुक्तानीत्युच्यते -

भाष्य विस्तार = विवेकमन्तरेण काम्ये वाऽकाम्येऽपि कर्मणि तथैव दुःखप्रसंगो भवति न विमोक्षः सिद्धांती कहता है यदि आपको विवेकमन्तरेण तत्त्वज्ञान नहीं हुआ काम्ये वाऽकाम्येऽपि कर्मणि फिर आप चाहे सकाम कर्म करो या निष्काम, तथैव दुःखप्रसंगो भवति उस निष्काम कर्म करने पर भी दुःख का प्रसंग अगला जन्म होता ही रहेगा, न विमोक्षः मोक्ष नहीं होगा फलस्यावरत्वात् क्षयित्वाच्च उसका फल भी अवर है पास वाला है निकट वाला है, क्षयित्वाच्च उसका फल क्षीण हो जाएगा तो मोक्ष नहीं हो जाएगा ॥ ८५ ॥

विवेकस्य साधनत्वे मोक्षफलक्षयो नेत्याह - सूत्र का अर्थ और इसकी भूमिका भिन्न है इसलिए भूमिका परिवर्तित करते हैं- मोक्ष का स्वरूप क्या है? मोक्ष की परिभाषा क्या है?

निजमुक्तस्य बन्धध्वंसमात्रं परं न समानत्वम् ॥ ८६ ॥

सूत्रार्थ= स्वरूप से मुक्त जीवात्मा के बंधन का विनाश हो जाना ही मोक्ष का स्वरूप है। इस मोक्ष फल की अन्य लौकिक फल से समानता नहीं है।

भाष्य विस्तार = स्वरूपतो मुक्तस्य पुरुषस्य विवेकात् खलु बन्धस्य ध्वंसमात्रं भवति कहते हैं स्वरूपतो मुक्तस्य पुरुषस्य जो जीवात्मा स्वरूप, स्वभाव से ही मुक्त है इतना होने पर भी विवेकात् खलु बन्धस्य ध्वंसमात्रं भवति तत्त्वज्ञान प्राप्त होने पर जो शरीर के साथ जीवात्मा का बंधन है वह नष्ट हो जाता है तदेव परमभीष्टमत्यन्तपुरुषार्थत्वं मोक्षो वेति तो ये जो बंधन कट गया इसी का नाम परम है सूत्र में 'परम' शब्द है इसे खोलते हैं- इसका ही नाम अभीष्ट है (हम यही चाहते हैं कि मोक्ष मिले), इसी का नाम अत्यंत पुरुषार्थ है (हमारा अंतिम प्रयोजन यही है कि दुःख छूटना चाहिए) अथवा मोक्ष भी इसी का नाम है। तत्रान्यैः साध्यफलैः सहास्य न समानत्वमस्ति अन्य साध्य फलों के साथ इसकी समानता नहीं है नहि मोक्षस्य तद्वत्क्षयप्रसंगः अन्य लौकिक फलों के तुल्य मोक्ष के फल का क्षय प्रसंग नहीं है, वह तो करोड़ों अरबों वर्षों तक चलेगा ॥ ८६ ॥

विवेकसम्पादनाय सन्ति प्रमाणान्यपि साधनत्वेनोपयुक्तानीत्युच्यते -विवेक प्राप्ति करने के लिए प्रमाण की आवश्यकता है जो साधन के रूप में उपयोग किए जा सकते हैं । इस विषय में कहते हैं-

द्वयोरेकतरस्य वाऽप्यसन्निकृष्टार्थपरिच्छिन्तिः प्रमा, तत्साधकतमं यत्तत्* त्रिविधं प्रमाणम्+ ।

तत्सिद्धौ सर्वसिद्धेर्नाधिक्यसिद्धिः ॥ ८७- ८८ ॥

(द्वयोः-एकतरस्य वा-अपि) प्रकृतिपुरुषयोर्विवेकाय यद्वैकतरस्य पदार्थस्य प्रकृतेः पुरुषस्य विवेकायापि (असन्निकृष्टार्थपरिच्छिन्तिः प्रमा) अनधिगतार्थस्य परिनिष्ठा परिज्ञानं निश्चयः प्रमाऽपेक्ष्यते (तत्साधकतमं यत् तत् त्रिविधं प्रमाणम्) तस्य साधकतमं यत् तत् त्रिविधं प्रमाणं भवति (तत्सिद्धौ सर्वसिद्धेः) शास्त्रान्तरेषु स्युरधिकानि प्रमाणानि किन्त्वत्र तु त्रिविधप्रमाणसिद्धौ त्रिविधप्रमाणस्वीकारे त्रिविधप्रमाणव्यवहारे सर्वसिद्धेः प्रकृतिपुरुषविवेकयोग्यसर्वार्थसिद्धेः (न-आधिक्यसिद्धिः) प्रमाणत्रयादधिकस्य सिद्धिरत्र सांख्यप्रक्रियायां नापेक्ष्यते ॥ ८७- ८८ ॥

द्वयोरेकतरस्य वाऽप्यसन्निकृष्टार्थपरिच्छिन्तिः प्रमा, तत्साधकतमं यत्तत्* त्रिविधं प्रमाणम्+ ।

तत्सिद्धौ सर्वसिद्धेर्नाधिक्यसिद्धिः ॥ ८७- ८८ ॥

सूत्रार्थ= प्रकृति और पुरुष इन दो का ज्ञान प्राप्त करना हो अथवा दो में से किसी एक का । इन अज्ञात पदार्थों का निश्चयात्मक ज्ञान का नाम है 'प्रमा' । जो इस प्रमा की प्राप्ति का साधन है वह तीन प्रकार का है ।

भाष्य विस्तार = इन दो सूत्रों में परस्पर संबंध है । प्रकृतिपुरुषयोर्विवेकाय यद्वैकतरस्य पदार्थस्य प्रकृतेः पुरुषस्य विवेकायापि प्रकृति पुरुष दोनों का विवेक करना हो अथवा दोनों में से किसी एक का ज्ञान करना हो, चाहे प्रकृति का करें अथवा पुरुष का विवेक प्राप्त करें । किसी भी पदार्थ का ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त करना हो अनधिगतार्थस्य परिनिष्ठा परिज्ञानं निश्चयः प्रमाऽपेक्ष्यते 'प्रमा' शब्द का अर्थ है=ज्ञान । अनधिगतार्थस्य 'अधिगत' कहते हैं जो प्राप्त हो चुका है और अनधिगत का अर्थ है जो अभी प्राप्त नहीं हुआ । जिस वस्तु का ठीक से ज्ञान नहीं हुआ है उस वस्तु का परिनिष्ठा परिज्ञानं निश्चयः परिनिष्ठा अर्थात् परिज्ञान अर्थात् निश्चय ठीक ठीक ज्ञान कि अमुक वस्तु ऐसी ही है, इस ज्ञान का नाम है 'प्रमा' । तस्य साधकतमं यत् तत् त्रिविधं प्रमाणं भवति उसका जो साधकतम है प्राप्त कराने का साधन (किसी वस्तु की प्राप्ति कराने में जो निकट का साधन होता है, उसे 'करण' कहते हैं -व्याकरण भाष्य) है वह तीन प्रकार का प्रमाण होता है । शास्त्रान्तरेषु स्युरधिकानि प्रमाणानि किन्त्वत्र तु त्रिविधप्रमाणसिद्धौ त्रिविधप्रमाणस्वीकारे त्रिविधप्रमाणव्यवहारे सर्वसिद्धेः प्रकृतिपुरुषविवेकयोग्यसर्वार्थसिद्धेः कहते हैं शास्त्रान्तरेषु स्युरधिकानि प्रमाणानि शास्त्रों में अधिक प्रमाण स्वीकार किए गए हैं, (सांख्यकार कहते हैं अन्यो ने अपने प्रयोजन सिद्धि के लिए अनेक प्रमाण माने हो, परंतु यहाँ तीन प्रमाणों से ही कार्य सिद्धि हो रही है) किन्त्वत्र किन्तु यहाँ तो तु त्रिविधप्रमाणसिद्धौ तीन प्रमाण सिद्ध होने पर त्रिविधप्रमाणस्वीकारे तीन प्रमाण स्वीकार कर लेने पर त्रिविधप्रमाणव्यवहारे तीन प्रकार के प्रमाणों से व्यवहार सर्वसिद्धेः सारे सिद्ध हो जाएंगे । इसलिए प्रकृतिपुरुषविवेकयोग्यसर्वार्थसिद्धेः प्रकृति पुरुष विवेक की सिद्धि इनसे हो जाएगी । प्रमाणत्रयादधिकस्य सिद्धिरत्र सांख्यप्रक्रियायां नापेक्ष्यते तीन प्रमाणों से सिद्धि होने से यहाँ अधिक की प्रक्रिया यहाँ संख्या में अपेक्षित नहीं है ॥ ८७- ८८ ॥

तत्र प्रमाणत्रये विभाग उच्यते लक्षणं चैकैकस्य प्रदर्श्यते । प्रथमम् - प्रमाण के तीन विभाग होने

तत्र प्रमाणत्रये विभाग उच्यते लक्षणं चैकैकस्य प्रदर्श्यते । प्रथमम् -

यत्सम्बन्धसिद्धं तदाकारोल्लेखि विज्ञानं तत्प्रत्यक्षम् ॥ ८९ ॥

(यत्सम्बन्धसिद्धम्) यस्य सम्बन्धो यत्सम्बन्धस्तेन सिद्धं यत्सम्बन्धसिद्धम् । यस्य वस्तुनः सम्बन्धेन सिद्धं पुरुषेऽधिगतम् (तदाकारोल्लेखि विज्ञानम्) तद्वस्तुस्वरूपोद्भासि विज्ञानं भवति (तत् प्रत्यक्षम्) तत् प्रत्यक्षं प्रमाणम् ॥ ८९ ॥

अतः प्रत्यक्षलक्षणे यत्सम्बन्धसिद्धमित्येवोक्तं पुरुषस्य वस्तुना सह सम्बन्धद्वाराप्राप्तं ज्ञानं प्रत्यक्षं

पर अब एक एक प्रमाण के विषय में बतलाया जाएगा लक्षण सहित । प्रथम प्रमाण- प्रत्यक्ष प्रमाण (सबसे अधिक बलवान प्रमाण है)

यत्सम्बन्धसिद्धं तदाकारोल्लेखि विज्ञानं तत्प्रत्यक्षम् ॥ ८९ ॥

सूत्रार्थ= आत्मा के साथ जिस किसी भी वस्तु के साक्षात् सम्बन्ध से प्राप्त होने वाला और उस वस्तु के स्वरूप को प्रकट करने वाला जो ज्ञान है वह प्रत्यक्ष प्रमाण कहलाता है ।

भाष्यार्थ= इस सूत्र को व्याकरण से खोल रहे हैं। व्याकरण शास्त्र का नियम है जितने समास पद हैं उनको तोड़ तोड़के विभक्ति सहित समझाते हैं। जिसका जो संबंध है यस्य और संबंध इन दो शब्दों को जोड़कर एक समस्त पद बना यत्संबन्धः फिर कहते हैं तेन सिद्धं यत्सम्बन्धसिद्धम्। उस वस्तु के सम्बन्ध से सिद्ध होने वाला प्राप्त होने वाला उसको बोलेंगे 'यत्सम्बन्धसिद्धम्' ये समस्त शब्द हो गया। यस्य वस्तुनः सम्बन्धेन सिद्धं पुरुषेऽधिगतम् जिस वस्तु के सम्बन्ध से सिद्ध हुआ अर्थात् पुरुष में प्राप्त हुआ= ज्ञान । (जिस किसी वस्तु के सम्बन्ध से जीवात्मा को ज्ञान होता है) तद्वस्तुस्वरूपोद्भासि विज्ञानं भवति उस वस्तु के स्वरूप को प्रकट करने वाला ज्ञान विशेष ज्ञान होता है तत् प्रत्यक्षं प्रमाणम् उसको प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं ॥ ८९ ॥

अतः प्रत्यक्षलक्षणे यत्सम्बन्धसिद्धमित्येवोक्तं पुरुषस्य वस्तुना सह सम्बन्धद्वाराप्राप्तं ज्ञानं प्रत्यक्षं लक्षितं यहाँ सूत्र की भूमिका में चर्चा उठते हैं- इस प्रत्यक्ष लक्षण में कहा- जिस किसी भी वस्तु के सम्बन्ध से ज्ञान प्राप्त हो, आत्मा का किसी भी वस्तु के साथ सीधा सम्बन्ध के द्वारा होता ज्ञान, वो प्रत्यक्ष बतलाया है स वस्तुसम्बन्धः पुरुषस्य केनोपकरणेन भवतीति तूक्तमेव न तेनात्र प्रत्यक्षलक्षणे दोषः प्रतिभातीति भ्रान्तिरपाक्रियते -उस वस्तु के साथ आत्मा का सम्बन्ध किस उपकरण के कारण होता है? पूर्वपक्षी कहता है इस कारण से हमें प्रत्यक्ष लक्षण में दोष दिखाई देता है । इस भ्रांति को दूर करते हैं-

योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वान्न दोषः ॥ ९० ॥

सूत्रार्थ= योगियों का आंतरिक प्रत्यक्ष भी पूर्व सूत्र में बतलाए गए प्रत्यक्ष लक्षण में संग्रहीत होने से पूर्व सूत्रोक्त प्रत्यक्ष लक्षण में कोई दोष नहीं है।

भाष्य विस्तार = योगिनामबाह्यप्रत्यक्षमनिन्द्रियप्रत्यक्षमान्तरिकप्रत्यक्षं भवति तदप्यनेन गृहीतं स्यात्। योगियों का अबाह्य प्रत्यक्ष अर्थात् अनिन्द्रिय प्रत्यक्ष, तो योगियों का आंतरिक प्रत्यक्ष जो की बाहरी इंद्रियों के बिना ही होता है, वो प्रत्यक्ष भी तो होता है इसी सूत्र से इसका भी ग्रहण हो जावे, इसलिए सामान्य

लक्षितं स वस्तुसम्बन्धः पुरुषस्य केनोपकरणेन भवतीति तूक्तमेव न तेनात्र प्रत्यक्षलक्षणे दोषः प्रतिभातीति भ्रान्तिरपाक्रियते -

योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वान्न दोषः ॥ १० ॥

(योगिनाम्-अबाह्यप्रत्यक्षत्वात्) योगिनामबाह्यप्रत्यक्षमनिन्द्रियप्रत्यक्षमान्तरिकप्रत्यक्षं भवति तदप्यनेन गृहीतं स्यात् । संसारिणां बाह्यं प्रत्यक्षं बाह्येन्द्रियेण वस्तुसम्बन्धजनितं भवति योगिनां प्रत्यक्षं तु खल्वबाह्यप्रत्यक्षमान्तरिकप्रत्यक्षमन्तःकरणेन वस्तुसम्बन्धसिद्धं भवति । अत्रास्माकं प्रत्यक्षलक्षणे 'यत्सम्बन्धसिद्धम्' इति सम्बन्धसिद्धत्वलक्षणं तूभयेषां संसारिणां योगिनां च प्रत्यक्षे समानमतो न दोषो यतो योगिनामबाह्यप्रत्यक्षमपि गृहीतं स्यादनेन प्रत्यक्षलक्षणेनेति सांख्यानां प्रत्यक्षलक्षणपरिभाषायामित्याशयः । अनिरुद्धवृत्तौविज्ञानभिक्षुभाष्ये चास्मात् पूर्वं प्रत्यक्षलक्षणकं सूत्रं बाह्यप्रत्यक्षलक्षणपरमैन्द्रियिकप्रत्यक्षलक्षणपरं व्याख्यातम्, अत एवोक्तं ताभ्यां यत् "बाह्यप्रत्यक्षलक्षणमिदं

शब्द कहा 'यत्संबंध सिद्धम्' । संसारिणां बाह्यं प्रत्यक्षं बाह्येन्द्रियेण वस्तुसम्बन्धजनितं भवति संसारी लोगों का सामान्य लोगों का जो बाहरी प्रत्यक्ष होता है बाहरी इंद्रियों से वस्तुओं के साथ सम्बन्ध से होता है । योगिनां प्रत्यक्षं तु खल्वबाह्यप्रत्यक्षमान्तरिकप्रत्यक्षमन्तःकरणेन वस्तुसम्बन्धसिद्धं भवति । योगियों का प्रत्यक्ष तो अबाह्य प्रत्यक्ष होता है, अंदर की वस्तुओं का प्रत्यक्ष अन्तःकरण (मन) के द्वारा होता है । (जब तक जीवात्मा शरीर के बंधन में तब तक बिना साधन के कोई ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता) अत्रास्माकं प्रत्यक्षलक्षणे 'यत्सम्बन्धसिद्धम्' इति सम्बन्धसिद्धत्वलक्षणं तूभयेषां संसारिणां योगिनां च प्रत्यक्षे समानो यहाँ जो हमने प्रत्यक्ष का लक्षण किया है, हमारे इस प्रत्यक्ष लक्षण में जो शब्द प्रयोग किया 'यत्सम्बन्धसिद्धम्' जिस भी वस्तु के सम्बन्ध से प्राप्त होने वाला ये जो लक्षण है वह तो दोनों में योगियों में और सांसारिक लोगो के प्रत्यक्ष के प्रत्यक्ष में समान है । अतो न दोषो यतः योगिनामबाह्यप्रत्यक्षमपि गृहीतं स्यादनेन प्रत्यक्षलक्षणेनेति सांख्यानां प्रत्यक्षलक्षणपरिभाषायामित्याशयः । इसलिए इस परिभाषा में कोई दोष नहीं है । योगियों का आंतरिक प्रत्यक्ष भी इसी प्रत्यक्ष लक्षण से ग्रहीत होगा, इस कारण से सांख्य विद्या को जानने मानने वाले लोगों का प्रत्यक्ष लक्षण की परिभाषा में ये आशय है । कोई कमी अथवा अधूरापन नहीं है ।

अनिरुद्धवृत्तौविज्ञानभिक्षुभाष्ये चास्मात् पूर्वं प्रत्यक्षलक्षणकं सूत्रं बाह्यप्रत्यक्षलक्षणपरमैन्द्रियिकप्रत्यक्षलक्षणपरं व्याख्यातम्, अनिरुद्ध वृत्ति में और विज्ञान भिक्षु भाष्य में इससे पूर्व सूत्र में प्रत्यक्ष लक्षण विषयक सूत्र उन्होंने बताया है कि ८९ वे सूत्र में केवल बाह्यप्रत्यक्ष का लक्षण बताया है, उनकी व्याख्या में आंतरिक लक्षण को नहीं स्वीकारा । अत एवोक्तं ताभ्यां यत् "बाह्यप्रत्यक्षलक्षणमिदं लौकिकम्, योगिप्रत्यक्षन्तु-अबाह्यमलौकिकं च" ये अनिरुद्ध वृत्ति के वचन हैं इसलिए उन दोनों ने ऐसी बात कही है । इसलिए उन्हें पहले अनिरुद्ध का वचन दिखाया है, इस ८९ वे सूत्र में जो ये लक्षण बताया है प्रत्यक्ष का, ये बाह्य प्रत्यक्ष का लौकिक का लक्षण है और योगियों का प्रत्यक्ष तो आंतरिक होता है उसको अगले सूत्र में बताएँगे । इस तरह से उन्होंने व्याख्या की है । 'ऐन्द्रियिकप्रत्यक्षमेवात्र लक्ष्यं योगिनश्चाबाह्यप्रत्यक्षकाः' विज्ञानभिक्षु ने कहा - इस (८९ वे) सूत्र में केवल इंद्रियिक प्रत्यक्ष को बताना ही लक्ष्य है सूत्रकार का, जबकि योगी का तो अबाह्य प्रत्यक्ष होता है । ये कही और बताएँगे । इत्थमुभयत्रापि सूत्रमन्यथा हि व्याख्यातम् । इन

सांख्यदर्शनम्-प्रथमोऽध्यायः

लौकिकम्, योगिप्रत्यक्षन्तु-अबाह्यमलौकिकं च'' (अनिरुद्धः) 'ऐन्द्रियिकप्रत्यक्षमेवात्र लक्ष्यं योगिनश्चाबाह्यप्रत्यक्षकाः'' (विज्ञानभिक्षुः) इत्थमुभयत्रापि सूत्रमन्यथा हि व्याख्यातम् । पूर्वसूत्रे नेन्द्रियशब्द उपात्तः बाह्येन्द्रियेण वान्तःकरणेन वा सम्बन्धसिद्धं प्रत्यक्षमिति सामान्यलक्षणं 'यत्सम्बन्धसिद्धम्' पदेन सूचितमत एव तत्र सूत्रोक्ते प्रत्यक्षलक्षणे न दोषस्तत्र योगिप्रत्यक्षेऽपि तद्व्याप्तेरभीष्टत्वात् ॥ ९० ॥

पुनश्च -

लीनवस्तुलब्धातिशयसम्बन्धाद्वाऽदोषः ॥ ९१ ॥

(वा) अथवा (लीनवस्तुलब्धातिशयसम्बन्धात्-अदोषः) लीनानां सूक्ष्माणामतीन्द्रियाणां वस्तूनां लब्धोऽतिशयोऽप्रतिबद्धो निरन्तर आत्म्यीकृतः सम्बन्धो भवति हि योगिनां यथोक्तं योगदर्शने

दोनों टीकाकारों ने इस सूत्र कि गलत व्याख्या की है। पूर्वसूत्रे नेन्द्रियशब्द उपात्तः स्वामी ब्रह्ममुनि जी कहते हैं- पूर्व सूत्र में इंद्रिय शब्द को ग्रहण ही नहीं किया बाह्येन्द्रियेण वान्तःकरणेन वा सम्बन्धसिद्धं प्रत्यक्षमिति सामान्यलक्षणं 'यत्सम्बन्धसिद्धम्' पदेन सूचितं बाह्य इंद्रिय से हो चाहे अन्तःकरण से जिस भी साधन के संबंध से ज्ञान प्राप्त हो उसी का नाम प्रत्यक्ष है। इस प्रकार से ये सामान्य लक्षण किया है 'यत्सम्बन्धसिद्धम्' इस शब्द से सूचित किया है। अत एव तत्र सूत्रोक्ते प्रत्यक्षलक्षणे न दोषः इसलिए उस सूत्र में बताए प्रत्यक्ष लक्षण में कोई दोष नहीं है। तत्र योगिप्रत्यक्षेऽपि तद्व्याप्तेरभीष्टत्वात् क्योंकि ये समान परिभाषा है 'यत्सम्बन्धसिद्धम्' ये दोनों तरह के प्रत्यक्ष में ठीक बैठती है इसलिए कोई अधूरेपन का कोई दोष नहीं आता ॥ ९० ॥

पुनश्च -

लीनवस्तुलब्धातिशयसम्बन्धाद्वाऽदोषः ॥ ९१ ॥

सूत्रार्थ= योगियों का सूक्ष्म पदार्थों के साथ सीधा स्पष्ट संबंध होता है, इसलिए उस पूर्व परिभाषा में कोई दोष नहीं है। योगियों का आंतरिक प्रत्यक्ष का भी उसमें समावेश हो जाता है।

भाष्य विस्तार = (वा) अथवा (लीनवस्तुलब्धातिशयसम्बन्धात्-अदोषः) लीनानां सूक्ष्माणामतीन्द्रियाणां वस्तूनां लब्धोऽतिशयोऽप्रतिबद्धो निरन्तर आत्म्यीकृतः सम्बन्धो भवति हि योगिनां अथवा एक और हेतु से ये सिद्ध करते हैं कि पूर्व में कोई दोष नहीं है। लीनानां सूक्ष्माणामतीन्द्रियाणां लीनानां अर्थात् जो सूक्ष्म पदार्थ होते हैं इंद्रियाँ, तन्मात्राएँ, मन आदि उन वस्तुओं का लब्ध, अतिशय, प्रतिबद्ध, निरन्तर, आत्म्यीकृत ये सब पर्यायवाची शब्द हैं, ये संबंध के विशेषण हैं। इन सूक्ष्म पदार्थों का भी सीधा-सीधा आत्म्यीकृत साक्षात् संबंध होता है योगियों का (इन पदार्थों का और योगियों का सीधा आंतरिक संबंध होता है और उस आंतरिक संबंध होने से सूक्ष्म पदार्थों का ज्ञान होता है, वह ज्ञान भी योगियों का है आंतरिक है और सूक्ष्म द्रव्यों के साथ होता है, इस हेतु से भी पूर्व सूत्र में कोई कमी नहीं है) यथोक्तं योगदर्शने जैसा कि योगदर्शन में कहा गया "परमाणुपरममहत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः" इस चित्त का वशीकर योगी लोग कहाँ तक करते हैं छोटे छोटे से अणु से लेकर बड़े से बड़े सूर्यादि पदार्थ तक योगियों का वशीकर अर्थात् मन टिकता है, इन पदार्थों के साथ साक्षात् संबंध स्थापित कर लेते हैं। तो इस सूत्र में बताया कि सूक्ष्म पदार्थों के साथ योगियों का संबंध होता है (योग ०१.४०) इतिहेतोरुक्तप्रत्यक्षलक्षणेऽदोषो न दोषोऽस्ति इस कारण से भी उक्त

[यह केवल निजी प्रयोग हेतु, अप्रकाशित, संशोधन अपेक्षित संग्रह है।]

“परमाणुपरममहत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः” (योग ०१.४०) इति हेतोरुक्तप्रत्यक्षलक्षणेऽदोषो न दोषोऽस्ति । पूर्वसूत्रेऽन्तःकरणसम्बन्धसिद्ध-त्वाद् दोषपरिहारोऽत्र सूत्रे निरन्तरात्मसम्बन्धसिद्धत्वाद् दोषनिराकरणमिति विशेषः ।

अनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये चात्र प्रत्यक्षलक्षणप्रसंगे नितान्तासत्यकल्पना कृता । तत्र “योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वान्न दोषः” ९० इति सूत्रमुभयत्र पूर्वप्रत्यक्षलक्षणाद् भिन्नविषयकं व्याख्यातं यत् पूर्वत्वैन्द्रियिकस्य बाह्येन्द्रियसाध्यस्य लौकिकस्य प्रत्यक्षस्य लक्षणमुक्तं न योगिनां प्रत्यक्षस्याबाह्यस्य “बाह्यप्रत्यक्षलक्षणमिदं लौकिकं योगिप्रत्यक्षं त्वबाह्यमलौकिकं च, अतो नाव्यापकत्वदोषः”

प्रत्यक्ष लक्षण में भी कोई दोष नहीं है। पूर्वसूत्रेऽन्तःकरणसम्बन्धसिद्धत्वाद् दोषपरिहारोऽत्र अब ये दिखाना चाह रहे हैं ब्रह्ममुनि जी के दो सूत्रों में अंतर क्या है ९० और ९१ में ये बताया गया ‘कि प्रत्यक्ष लक्षण में कोई कमी नहीं’ तो दो सूत्रों में दो हेतु दिए गए हैं, उनमें आपस में अंतर क्या है? ये बता रहे हैं- पूर्वसूत्रेऽन्तःकरणसम्बन्धसिद्धत्वाद् दोषपरिहारः पूर्वसूत्र में तो ये कहा था दोष का जो निराकरण किया समाधान किया इस दृष्टि से किया कि जो योगियों का संबंध होता है सूक्ष्म संबंध होता है योगियों का जो आंतरिक प्रत्यक्ष होता है वह अन्तःकरण के माध्यम से होता है। वहाँ ये हेतु था । इस तरह से दोष का समाधान किया और अत्र सूत्रे निरन्तरात्मसम्बन्धसिद्धत्वाद् दोषनिराकरणमिति विशेषः इस सूत्र में पिछले सूत्र से ये भिन्नता है कि पहले बताया कि अन्तःकरण से संबंध होता है यहा बताया कि सीधा सम्बंध होता है और सूक्ष्म पदार्थों के साथ सम्बंध होता है, इन दो हेतुओं से एक ही बात सिद्ध की परिभाषा में कोई कमी अथवा दोष नहीं है।

अब यहाँ से खण्डन मंडन टीका टिप्पणी आदि है अनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये चात्र प्रत्यक्षलक्षणप्रसंगे नितान्तासत्यकल्पना कृता । अनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये च अनिरुद्ध वृत्ति में और विज्ञान भिक्षु भाष्य में अत्र प्रत्यक्षलक्षणप्रसंगे इस प्रत्यक्ष लक्षण वाले इस प्रसंग में इन सूत्रों में नितान्तासत्यकल्पना कृता नितान्त असत्य कल्पना की गयी है। तत्र “योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वान्न दोषः” ९० इति सूत्रमुभयत्र पूर्वप्रत्यक्षलक्षणाद् भिन्नविषयकं व्याख्यातं यहाँ जो ९० वा सूत्र है पूर्वप्रत्यक्ष लक्षण से भिन्न वाला व्याख्यान किया गया है यत् पूर्वत्वैन्द्रियिकस्य बाह्येन्द्रियसाध्यस्य लौकिकस्य प्रत्यक्षस्य लक्षणमुक्तं पहले तो ८९ वे सूत्र में एन्द्रियक प्रत्यक्ष का बाह्य इंद्रियों से सिद्ध होने वाला लौकिक प्रत्यक्ष का लक्षण किया गया है न योगिनां प्रत्यक्षस्याबाह्यस्य जो योगियों का अबाह्य प्रत्यक्ष है उसकी चर्चा नहीं की “बाह्यप्रत्यक्षलक्षणमिदं लौकिकं योगिप्रत्यक्षं त्वबाह्यमलौकिकं च, अतो नाव्यापकत्वदोषः” इसलिए इसमें अव्यापकता का दोष नहीं है। अधूरापन का दोष नहीं, पूरी परिभाषा है। “ऐन्द्रियिकप्रत्यक्षमेवात्र लक्ष्यं योगिनश्चाबाह्यप्रत्यक्षकाः, अतो न दोषः” विज्ञानभिक्षु ने कहा कि इस सूत्र में इतना ही बताना लक्ष्य है कि एन्द्रियक प्रत्यक्ष ही है योगी तो आंतरिक प्रत्यक्ष वाले होते हैं, इसलिए इसमें कोई दोष नहीं है। पुनश्च “लीनवस्तुलब्धातिशयसम्बन्धाद्वादोषः” इति सूत्रे योगिनां प्रत्यक्षस्यापि लक्षणं मतं तस्मिन्नेवैकस्मिन् सूत्रे अब कहते हैं कि जो ९१ वे वा “लीनवस्तुलब्धातिशयसम्बन्धाद्वादोषः” सूत्र है इस सूत्र कि व्याख्या हुए उन्होंने कहा कि योगियों का जो

सांख्यदर्शनम्-प्रथमोऽध्यायः

(अनिरुद्धः) “ ऐन्द्रियिकप्रत्यक्षमेवात्र लक्ष्यं योगिनश्चाबाह्यप्रत्यक्षकाः, अतो न दोषः ” (विज्ञानभिक्षुः) पुनश्च “ लीनवस्तुलब्धा-तिशयसम्बन्धाद्वादोषः ” (९१) इति सूत्रे योगिनां प्रत्यक्षस्यापि लक्षणं मतं तस्मिन्नेवैकस्मिन् सूत्रे “ अथवा लक्षणेन योगिप्रत्यक्षस्यापि संग्रह इति पक्षान्तरमाह - लीनवस्तुलब्धातिशयसम्बन्धाद्वादोषः ” (अनिरुद्धः) “ वास्तवं समाधानमाह-लीनवस्तुलब्धा-तिशयसम्बन्धाद्वादोषः ” (विज्ञानभिक्षुः) किं यत् “ योगिनामबाह्य-प्रत्यक्ष त्वान्न दोषः ” (९०) तथा “ लीनवस्तुलब्धा-तिशयसम्बन्धाद्वादोषः ” (९१) इति सूत्रद्वयं पूर्वोक्तस्य “ यत्सम्बन्धसिद्धं तदाकारोल्लेखि विज्ञानं तत्प्रत्यक्षम् ” (८०) इति सूत्रस्य व्याख्यानभूतं सांख्यकाराद् भिन्नस्य कस्यचिद् व्याख्याकारस्य वचनं यत् “ योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वान्न दोषः ” (९०) इति सूत्राद् सन्तोषं प्राप्य पुनर्वास्तविक- समाधानम् “ लीनवस्तुलब्धातिशयसम्बन्धाद्वादोषः ” (९१) इति वचनं पुरः स्थापयति

आंतरिक प्रत्यक्ष है अलौकिक। उसका लक्षण भी इन्होंने स्वीकार कर लिया “ अथवा लक्षणेन योगिप्रत्यक्षस्यापि संग्रह इति पक्षान्तरमाह - लीनवस्तुलब्धातिशयसम्बन्धाद्वादोषः ” अथवा कह कर के दूसरा पक्ष स्वीकार कर लिया अथवा लक्षणेन वो ८९ वे सूत्र से जिसमें प्रत्यक्ष का लक्षण कहा था, उस लक्षण वाले सूत्र से योगियों का आंतरिक प्रत्यक्ष भी स्वीकार है, इसलिए अब दूसरे पक्ष को कह रहे हैं, ये तो शब्द थे अनिरुद्ध के। अब विज्ञानभिक्षु के शब्द “ वास्तवं समाधानमाह-लीनवस्तुलब्धातिशयसम्बन्धाद्वादोषः ” वास्तविक समाधान अब कहते हैं। (विज्ञानभिक्षुः) किं यत् “ योगिनामबाह्य-प्रत्यक्ष त्वान्न दोषः ” (९०) तथा “ लीनवस्तुलब्धा-तिशयसम्बन्धाद्वादोषः ” (९१) इति सूत्रद्वयं पूर्वोक्तस्य “ यत्सम्बन्धसिद्धं तदाकारोल्लेखि विज्ञानं तत्प्रत्यक्षम् ” (८०) इति सूत्रस्य व्याख्यानभूतं सांख्यकाराद् भिन्नस्य कस्यचिद् व्याख्याकारस्य वचनं यत् “ योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वान्न दोषः ” (९०) इति सूत्राद् सन्तोषं प्राप्य पुनर्वास्तविक- समाधानम् “ लीनवस्तुलब्धा-तिशयसम्बन्धाद्वादोषः ” (९१) इति वचनं पुरः स्थापयति। इस पर टिप्पणी लिखते हैं ब्रह्ममुनि जी ये जो दो सूत्र थे ९० और ९१ वे ये जो पूर्वोक्त (९० वा) सूत्र का व्याख्यान भूत है क्या? व सांख्यकार से भिन्न व्याख्याकार का वचन है? इस ९१ वे सूत्र से संतोष प्राप्त न करके उस समाधान में उसको पूरा संतोष नहीं है, इसलिए कहता है कि वास्तविक समाधान तो अब है। इस तरह से कहना कोई बुद्धिमत्ता नहीं है कि सूत्रकारस्यावास्तविकेन समाधानेनापि भाव्यं ९१ वे सूत्र में कह रहे हैं कि वास्तविक समाधान तो अब है, क्या ९० वा सूत्र व्यर्थ था? क्या सूत्रकार नकली समाधान भी कहता है? ये आपत्ति उठाई ब्रह्ममुनि जी ने विज्ञानभिक्षु पर। नैष शिष्टाचारः समाचारो वा तत्र साक्षात्कृतामृषीणाम् ईश्वर का साक्षात्कार करने वाले शिष्टाचारी ऋषि लोगों का ऐसा व्यवहार आचरण नहीं होता कि पहले अवास्तविक समाधान करें। पुनश्च “ योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वान्न दोषः ” (९०) तथा “ लीनवस्तुलब्धा-तिशयसम्बन्धाद्वादोषः ” (९१) इति सूत्रे तु सांख्यशास्त्रस्य स्तः फिर सूत्र ९० और ९१ ये तो सांख्यकार के हैं, किसी और व्याख्याकार के थोड़ी हैं जो स्वयम अपनी बात कहे फिर खंडन करे ये कोई बुद्धिमत्ता तो नहीं, न हि कस्यचिद् व्याख्याकर्तुः वह किसी अन्य व्याख्याकार के वचन नहीं है। तस्मादनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये चैष प्रसंगोऽनवबुद्धान्यथा व्याख्यातः। अत एव अनिरुद्ध वृत्ती में और विज्ञानभिक्षु भाष्य में ये जो प्रसंग है ‘प्रत्यक्ष लक्षण वाला’ ये ठीक से बिना समझे ही उन्होंने गलत

। किं सूत्रकारस्यावास्तविकेन समाधानेनापि भाव्यं नैष शिष्टाचारः समाचारो वा तत्र साक्षात्कृतामृषीणाम् । पुनश्च “योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वान्न दोषः” (१०) तथा “लीनवस्तुलब्धा-तिशयसम्बन्धाद्वाऽदोषः” (११) इति सूत्रे तु सांख्यशास्त्रस्य स्तः, न हि कस्यचिद् व्याख्याकर्तुः । तस्मादनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये चैष प्रसङ्गेऽनवबुद्धान्यथा व्याख्यातः । अतएवाग्रे “ईश्वरासिद्धेः” (१२) इति सूत्रव्याख्यानमप्ययुक्तं जातम् । वस्तुतः ईश्वरसाधनायैव योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वान्न दोषः” (१०) तथा “लीनवस्तुलब्धा-तिशयसम्बन्धाद्वाऽदोषः” (११) इति सूत्राभ्यां योगिनाम- बाह्यप्रत्यक्षस्याप्यन्तर्भावः पूर्वप्रत्यक्षलक्षणे स्यादिति कृत्वा “यत्सम्बन्धसिद्धं तदाकारोल्लेखि विज्ञानं तत्प्रत्यक्षम्” (८९) सूत्रे ‘यत्सम्बन्धसिद्धम्’ सामान्यलक्षणपरं पदं रक्षितम् । यत ऐन्द्रियिकप्रत्यक्षेश्वरस्य सिद्धिर्न भवति तत्रेश्वरासिद्धिप्रसक्तिर्न भवेदत एव योगिप्रत्यक्षेण तत्सिद्धिर्भवेदिति प्रत्यक्षस्य सामान्यं लक्षणं सूत्रे

व्याख्यान कर दिया है। अतएवाग्रे “ईश्वरासिद्धेः” (१२) इति सूत्रव्याख्यानमप्ययुक्तं जातम् । अब इससे अगला जो सूत्र है उसका व्याख्यान भी आयुक्त हो जाता है। वस्तुतः ईश्वरसाधनायैव योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वान्न दोषः” (१०) तथा “लीनवस्तुलब्धा-तिशयसम्बन्धाद्वाऽदोषः” (११) इति सूत्राभ्यां योगिनाम- बाह्यप्रत्यक्षस्याप्यन्तर्भावः पूर्वप्रत्यक्षलक्षणे स्यादिति कृत्वा “यत्सम्बन्धसिद्धं तदाकारोल्लेखि विज्ञानं तत्प्रत्यक्षम्” (८९) सूत्रे ‘यत्सम्बन्धसिद्धम्’ सामान्यलक्षणपरं पदं रक्षितम् । वास्तव में ईश्वर कि सिद्धि करने के लिए ही सूत्र कि रचना इस प्रकार कि की। और सूत्रकार ने क्या कहा- योगियों का जो आंतरिक प्रत्यक्ष होता है, इसलिए परिभाषा में कोई दोष नहीं है । यहा योगियों का प्रत्यक्ष दिखलाना था जिससे ईश्वर की सिद्धि की जाएगी और सीधा सीधा सूक्ष्म संबंध होता है इस तरह से बताकर कहा कि परिभाषा में कोई दोष नहीं है, इसलिए ‘यत्सम्बन्धसिद्धं’ सामान्य लक्षण बताने वाला शब्द रखा । ताकि दोनों प्रकार का अर्थ हो आंतरिक प्रत्यक्ष भी और बाह्यप्रत्यक्ष पर भी। यतः ऐन्द्रियिकप्रत्यक्षेश्वरस्य सिद्धिर्न भवति क्योंकि ऐन्द्रियिक प्रत्यक्ष से तो ईश्वर कि सिद्धि नहीं होती । परंतु ईश्वर कि सिद्धि तो करना ही है इसलिए उसको इस प्रकार से व्यवस्थित किया। तत्रेश्वरासिद्धिप्रसक्तिर्न भवेदत एव योगिप्रत्यक्षेण तत्सिद्धिर्भवेदिति प्रत्यक्षस्य सामान्यं लक्षणं सूत्रे निर्दिष्टं यत्सम्बन्धसिद्धमिति । वास्तविक बात तो ये है जो उनको समझ में नहीं आई कि सूत्रकार ने बहुत बुद्धिमत्ता से काम लिया ठीक ढंग से बात को व्यवस्थित किया कि ऐन्द्रियिक प्रत्यक्ष से तो ईश्वर कि सिद्धि हो नहीं पाएगी, कभी कोई ईश्वर को माने ही नहीं। कोई कहे कि ‘ईश्वर का प्रत्यक्ष तो होता ही नहीं’ ऐसी समस्या न हो इसलिए सामान्य शब्द रखा ‘यत्सम्बन्धसिद्धं’ कि आंतरिक प्रत्यक्ष भी उसी परिभाषा से सिद्ध हो रहा है, बाकी भ्रांति निवारण के लिए दो सूत्र बनाए काही कोई ये न मान ले कि ‘आंतरिक प्रत्यक्ष तो होता ही नहीं’, इसलिए स्पष्टीकरण के लिए दो सूत्र बनाए। आश्रय ५ ह्येतत् “ईश्वरासिद्धेः” (१२) सूत्रावतरणे विज्ञानभिक्षुरैन्द्रियिकप्रत्यक्षस्येश्वरसिद्धावव्याप्तिदोषं निराकरोतीश्वरनिषेधात् तस्येश्वरस्य “सन्निकर्षाजन्यत्वात्” इत्युक्त्वा परन्तु “सौक्ष्म्यादनुपलब्धिः” (१०९) सूत्रे “योगजधर्मस्य चोत्तेजकतया प्रकृतिपुरुषादीनां प्रत्यक्षप्रमा भवति” (विज्ञानभिक्षुः) आश्रय की बात है की “ईश्वरासिद्धेः” ये जो सूत्र है, इस सूत्र के अवतरण=भूमिका में विज्ञान भिक्षु ने ये कहा कि इंद्रिय प्रत्यक्ष का ईश्वर सिद्धि में अव्याप्ति है, तो इस अव्याप्ति दोष का निराकरण करता है ईश्वर का निषेध करते हुए

सांख्यदर्शनम्-प्रथमोऽध्यायः

निर्दिष्टं यत्सम्बन्धसिद्धमिति। आश्चर्यं ह्येतत् “ईश्वरासिद्धेः” (१ २) सूत्रावतरणे विज्ञानभिक्षुरैन्द्रियिकप्रत्यक्षस्येश्वरसिद्धावव्याप्तिदोषं निराकरोतीश्वरनिषेधात् तस्येश्वरस्य “सन्निकर्षाजन्यत्वात्” इत्युक्त्वा परन्तु “सौक्ष्म्यादनुपलब्धिः” (१ ० ९) सूत्रे “योगजधर्मस्य चोत्तेजकतया प्रकृतिपुरुषादीनां प्रत्यक्षप्रमा भवति” (विज्ञानभिक्षुः) यद्येवं तर्हीश्वरविषये प्रत्यक्षस्याव्याप्तिपरिहारो व्यर्थो यतस्तस्यापि योगजधर्मेण प्रत्यक्षता सम्भवति ॥ १ १ ॥

स एष योगिनामबाह्यप्रत्यक्षप्रकारोऽवश्यं स्वीकार्यो यतो बाह्यप्रत्यक्षेण -

ईश्वरासिद्धेः ॥ १ २ ॥

(ईश्वरासिद्धेः) ईश्वरस्यासिद्धिदोषप्रसङ्गात्-ईश्वरस्य सिद्धिर्बाह्यप्रत्यक्षेणैन्द्रियिकप्रत्यक्षेण न

विज्ञान भिक्षु ने कहा कि ईश्वर का सन्निकर्ष हो ही नहीं सकता। उसका ज्ञान सन्निकर्षजन्य नहीं है। ऐसा कहकर के “सौक्ष्म्यादनुपलब्धिः” इस सूत्र कि व्याख्या में कहते हैं। जब योगज धर्म कि अधिकता होती है (व्यक्ति समाधि लगता है ध्यान लगता है मन को एकाग्र करता है तो इससे उसकी योग्यता बढ़ जाती है) उस योग्यता के बढ़ने से उसने प्रकृति पुरुष का आंतरिक प्रत्यक्ष स्वीकार कर लिया कि अंदर से उसको ज्ञान हो जाता है। (तो इस प्रकार से विरुद्ध बात करते हैं) यद्येवं तर्हीश्वरविषये प्रत्यक्षस्याव्याप्तिपरिहारो व्यर्थो यतस्तस्यापि योगजधर्मेण प्रत्यक्षता सम्भवति अगर दूसरे सूत्र की व्याख्या उनकी ठीक है (विज्ञानभिक्षु की) के योगज धर्म की अधिकता होने से मन की एकाग्रता अच्छी हो जाने से प्रकृति पुरुष का आंतरिक ज्ञान हो जाता है। यदि उनकी ये बात ठीक है तो पहले जो कहा था ‘कि ईश्वर का सन्निकर्ष होता ही नहीं’। ईश्वर के विषय में जो प्रत्यक्ष में अव्याप्ति का परिहार्य किया कि “सन्निकर्षाजन्यत्वात्” ये समाधान व्यर्थ है। क्योंकि उसको भी योगज धर्म से प्रत्यक्ष का स्वीकार करते हैं। इस तरह से भाष्य उनका ठीक नहीं है। ये सारी टीका टिप्पणी पूरी हुई ॥ १ ॥

स एष योगिनामबाह्यप्रत्यक्षप्रकारोऽवश्यं स्वीकार्यो यतो बाह्यप्रत्यक्षेण - ये जो योगियों का आंतरिक प्रत्यक्ष की विधि है, वो अवश्य ही स्वीकार करनी चाहिए क्योंकि बाह्य प्रत्यक्ष से ईश्वर की असिद्धि हो जाने से

ईश्वरासिद्धेः ॥ १ २ ॥

सूत्रार्थ= क्योंकि बाह्य प्रत्यक्ष से ईश्वर की असिद्धि होती है, इस कारण से योगियों का आंतरिक प्रत्यक्ष अवश्य मानना चाहिए ।

भाष्य विस्तार = ईश्वरस्यासिद्धिदोषप्रसङ्गात्-ईश्वरस्य सिद्धिर्बाह्यप्रत्यक्षेणैन्द्रियिकप्रत्यक्षेण न भवति, एक एक शब्द को खोला उन्होंने ईश्वरस्य असिद्धि दोष प्रसङ्गात् ईश्वर की असिद्धि का दोष प्रसङ्ग आने से इसे और समझाते हैं ईश्वरस्य सिद्धिः बाह्य प्रत्यक्षेण एन्द्रियिक प्रत्यक्षेण न भवति ईश्वर की सिद्धि= ज्ञान है वह बाह्य प्रत्यक्ष से इंद्रियों के प्रत्यक्ष से संभव नहीं होता। नहि बाह्यप्रत्यक्षस्य विषय ईश्वरः, न ही बाह्य प्रत्यक्ष का विषय ईश्वर है। श्रुतिश्च वदति हीश्वरस्य प्रत्यक्षत्वम् श्रुति भी कहती है ईश्वर का प्रत्यक्ष होता है

सांख्यदर्शनम्-प्रथमोऽध्यायः

भवति, नहि बाह्यप्रत्यक्षस्य विषय ईश्वरः, श्रुतिश्च वदति हीश्वरस्य प्रत्यक्षत्वम् “त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि” (तै ०३ ० १ . १ . १) एवं योगिनामबाह्यप्रत्यक्षमपेक्ष्यतेऽत एव सांख्ये प्रत्यक्षलक्षणं सामान्यं यद्योगिनां प्रत्यक्षेऽपि घटते, योगिनामबाह्यप्रत्यक्षेण भविष्यति हीश्वरसिद्धिः ॥ १ २ ॥

योगिनामबाह्यप्रत्यक्षमनपेक्ष्य साध्यते यदीश्वरस्तर्हि -

मुक्तबद्धयोरन्यतराभावान्न तत्सिद्धिः ॥ १ ३ ॥

(मुक्तबद्धयोः-अन्यतराभावात्) तथाभूत ईश्वरो मुक्तबद्धयोरन्यतरस्माद् भिन्नो न भविष्यति स मुक्तो जीवन्मुक्तो बद्धो वा भविष्यति ताभ्यां भिन्नो न भविष्यति । एतेन (तत्सिद्धिः-न) योगिनामबाह्यप्रत्यक्षसाध्यस्येश्वरस्यसिद्धिर्न भविष्यति, अस्ति योगिनां प्रत्यक्षीभूत ईश्वरो यता च श्रुतिस्तस्य

“त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि” हे ईश्वर आप ! प्रत्यक्ष ब्रह्म है, मैं आपको प्रत्यक्ष करके आपकी व्याख्या करूंगा, आपके विषय में बताऊंगा। एवं योगिनामबाह्यप्रत्यक्षमपेक्ष्यतेऽत एव सांख्ये प्रत्यक्षलक्षणं सामान्यं यद्योगिनां प्रत्यक्षेऽपि घटते, कह रहे हैं एवं योगिनां इस प्रकार से योगियों का अबाह्य प्रत्यक्ष अपेक्ष्यते अबाह्य प्रत्यक्ष आवश्यक है (तभी तो ईश्वर की सिद्धि हो पाएगी) अत एव इसीलिए सांख्ये सांख्य विद्या में प्रत्यक्षलक्षणं सामान्यं प्रत्यक्ष लक्षण सामान्य शब्दों में किया है यद्योगिनां प्रत्यक्षेऽपि घटते जो योगियों के प्रत्यक्ष में भी घटता है। योगिनामबाह्यप्रत्यक्षेण भविष्यति हीश्वरसिद्धिः योगियों के आंतरिक प्रत्यक्ष से ईश्वर की सिद्धि हो जाएगी ॥ १ २ ॥

योगिनामबाह्यप्रत्यक्षमनपेक्ष्य साध्यते यदीश्वरस्तर्हि - योगियों के आंतरिक प्रत्यक्ष को स्वीकार किए बिना यदि ईश्वर की सिद्धि की जाएगी, तब क्या होगा -

मुक्तबद्धयोरन्यतराभावान्न तत्सिद्धिः ॥ १ ३ ॥

सूत्रार्थ= यदि आँख से ईश्वर को देखेंगे तो, वह जीवन मुक्त अथवा बद्ध इन दो से अलग तीसरा न होने से वास्तविक ईश्वर की सिद्धि न हो पाएगी।

भाष्य विस्तार = तथाभूत ईश्वरो मुक्तबद्धयोरन्यतरस्माद् भिन्नो न भविष्यति कहते हैं तथाभूत ईश्वरः उस तरह का ईश्वर जिसे आप बाह्य प्रत्यक्ष से देखना चाहते हैं मुक्तबद्धयोरन्यतरस्माद् भिन्नो न भविष्यति (यहां मुक्त शब्द से जीवन मुक्त व्यक्ति लेना है, क्योंकि जो मुक्तात्मा है वह भी आँख से नहीं दिखती) या तो वह जीवन मुक्त व्यक्ति होगा अथवा बद्ध होगा इन दो में से कोई एक होगा, इन दो से अलग तीसरा कोई न होगा स मुक्तो जीवन्मुक्तो बद्धो वा भविष्यति वह जो आँख से दिखेगा वह या तो जीवन मुक्त होगा अथवा बद्ध होगा ताभ्यां भिन्नो न भविष्यति इन दो से भिन्न न होगा। एतेन योगिनामबाह्यप्रत्यक्षसाध्यस्येश्वरस्यसिद्धिर्न भविष्यति, यदि हम आँख से ईश्वर को देखेंगे तब योगियों के आंतरिक प्रत्यक्ष से जो ईश्वर सिद्ध होता है, उस वास्तविक ईश्वर की सिद्धि नहीं हो सकेगी अस्ति योगिनां प्रत्यक्षीभूत ईश्वरो यता च श्रुतिस्तस्य प्रत्यक्षत्वं वदति जबकि योगियों का प्रत्यक्षीभूत ईश्वर तो है और श्रुति

प्रत्यक्षत्वं वदति ॥ ९ ३ ॥

तत्र च -

उभयथाप्यसत्करत्वम् ॥ ९ ४ ॥

(उभयथा-अपि-असत्करत्वम्) उभयथा प्रकारेणापि मुक्तस्य बद्धस्य चेश्वरत्वेऽसत्करत्वमैश्वर्यायोग्यत्वं जगद्रचनादिव्यवहारेऽकिञ्चित्करत्वमस्ति मुक्तस्य प्रयोजनाभावादथ बद्धस्य च सामर्थ्याभावात् ॥ ९ ४ ॥

यदि लोके कश्चिदीश्वरः प्रत्यक्षं प्रसिध्येत् तर्हि -

मुक्तात्मनः प्रशंसोपासासिद्धस्य वा ॥ ९ ५ ॥

ईश्वर के प्रत्यक्ष को बतलाती है ॥ ९ ३ ॥

तत्र च - इस स्थिति में-

उभयथाप्यसत्करत्वम् ॥ ९ ४ ॥

सूत्रार्थ= बद्ध या जीवन मुक्त व्यक्ति का ईश्वर मानने पर उन दोनों में ईश्वर की योग्यता सृष्टि रचना आदि सिद्ध नहीं हो पाएगी, दोनों में यह सामर्थ्य नहीं होने से ।

भाष्य विस्तार = भाष्यकार कहते हैं उभयथा प्रकारेणापि दोनों ही प्रकार से मुक्तस्य बद्धस्य चेश्वरत्वे जीवन मुक्त को अथवा बद्ध को ईश्वर मान लो तब असत्करत्वं असत्करत्वं ये दोष आएगा अर्थात् ऐश्वर्य अयोग्यत्वं उसमें ईश्वर वाले गुण सिद्ध नहीं हो पाएंगे और जगद्रचनादिव्यवहारे जगत रचना आदि व्यवहार में अकिञ्चित्करत्वमस्ति वह सृष्टि रचना आदि कर ही न सकेगा (इसलिए शरीर धारी को ईश्वर मानना ठीक नहीं है) अब जो आँख से दिख रहे हैं 'जीवन मुक्त और बद्ध' उनके विषय में कह रहे हैं मुक्तस्य प्रयोजनाभावाद जो जीवन मुक्त है उसका सृष्टि बनाना तो प्रयोजन नहीं है अथ बद्धस्य च सामर्थ्याभावात् और जो बद्ध आत्मा है उसका सामर्थ्य नहीं है जगत रचना करने की (स्वामी विवेकानंद जी के मत में दोनों के लिए एक ही हेतु 'सामर्थ्याभावात्' लगाना चाहिए क्योंकि जीवन मुक्त भी सामर्थ्यवान नहीं जगत रचन में) ॥ ९ ४ ॥

यदि लोके कश्चिदीश्वरः प्रत्यक्षं प्रसिध्येत् तर्हि - प्रश्न उठाया कि यदि संसार में कोई व्यक्ति ईश्वर नाम से प्रसिद्ध हो जाए तो तब इसका उत्तर देते हैं-

मुक्तात्मनः प्रशंसोपासासिद्धस्य वा ॥ ९ ५ ॥

सूत्रार्थ= शरीर धारी किसी व्यक्ति को यदि ईश्वर मान लें तो वह उस जेवण मुक्त अथवा योगाभ्यास उपासना आदि से विशिष्ट योग्यता प्राप्त बद्ध व्यक्ति की प्रशंसा मात्र है, वह वास्तविक ईश्वर नहीं है ।

भाष्य विस्तार = जीवन्मुक्तस्य चरमदेहस्य (उपासासिद्धस्य वा) अथवा ध्यानोपासनया सिद्धिः प्राप्तस्य बद्धस्य यथाऽद्यत्वे जैनतीर्थ १ रनाम्ना पौराणिकावतार-नाम्ना प्रसिद्धस्य-ब्रह्ममुनिः प्रशंसामात्रं न तु वस्तुतः ईश्वरः स भवति । कह रहे हैं जीवन्मुक्तस्य चरमदेहस्य जो जीवन मुक्त होमा चरम देह वाला

[यह केवल निजी प्रयोग हेतु, अप्रकाशित, संशोधन अपेक्षित संग्रह है ।]

सांख्यदर्शनम्-प्रथमोऽध्यायः

(मुक्तात्मनः) जीवन्मुक्तस्य चरमदेहस्य (उपासासिद्धस्य वा) अथवा ध्यानोपासनया सिद्धिः प्राप्तस्य बद्धस्य यथाऽद्यत्वे जैनतीर्थ १ रनाम्ना पौराणिकावतार-नाम्ना प्रसिद्धस्य-ब्रह्ममुनिः प्रशंसामात्रं न तु वस्तुत ईश्वरः स भवति । तस्मादीश्वर- प्रत्यक्षार्थं योगिनामान्तरिकप्रत्यक्षस्यावश्यकताऽस्तीति हेतोरत्र योगिनामयोगिनामुभयेषां प्रत्यक्षस्य सामान्यं लक्षणं कृतमतो नात्र प्रत्यक्षलक्षणे दोषः ॥ ९ ५ ॥

अस्तु तर्हि योगिनामान्तरिकप्रत्यक्षग्राह्यः पुरुषविशेष ईश्वरः “क्लेश कर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः” (योग ० १ . २ ४) यः खलु वैदिकसिद्धान्ते स्वीक्रियते, परन्तु तस्य नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाववत्त्वात् कथमीश्वरत्वमधिष्ठातृत्वं चेत्याकांक्षायामुच्यते -

तत्सन्निधानादधिष्ठातृत्वं मणिवत् ॥ ९ ६ ॥

अंतिम शरीर वाला होगा, अगला शरीर धारण नहीं करेगा जिसका मोक्ष होने वाला है जो या फिर अथवा ध्यानोपासनया सिद्धिः प्राप्तस्य ध्यान उपासना के द्वारा जिनहोने सिद्ध प्राप्त कर ली हो (अच्छी योग्यता बना ली, काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष आदि पर विजय प्राप्त कर ली, या मन इंद्रियों पर पूरा संयम है। इस प्रकार कि जिन्होने सिद्धि प्राप्त कर ली है) बद्धस्य यथाऽद्यत्वे जैनतीर्थ १ रनाम्ना पौराणिकावतार-नाम्ना प्रसिद्धस्य-ब्रह्ममुनिः प्रशंसामात्रं जैन तीर्थंकर, पौराणिक जिन्हे अवतार मानते हैं, स्वामी दयानन्द आदि ऐसे लोगों को यदि भगवान नाम से पुकारे अथवा कह देवे तो ये उनकी प्रशंसा मात्र है। वास्तव में वह ईश्वर नहीं हैं। तस्मादीश्वर- प्रत्यक्षार्थं योगिनामान्तरिकप्रत्यक्षस्यावश्यकताऽस्तीति हेतोरत्र योगिनामयोगिनामुभयेषां प्रत्यक्षस्य सामान्यं लक्षणं कृतमतो नात्र प्रत्यक्षलक्षणे दोषः । आगे कहा तस्मादीश्वर- प्रत्यक्षार्थ ५ इसलिए ईश्वर का प्रत्यक्ष करने के लिए योगिनामान्तरिकप्रत्यक्षस्यावश्यकताऽस्तीति योगियों के आन्तरिक प्रत्यक्ष की आवश्यकता होती है, क्योंकि उसके बिना ईश्वर की सिद्धि न हो पाएगी इति हेतो इसी कारण से अत्र यहाँ इस सूत्र में योगिनामयोगिनामुभयेषां योगी हो या अयोगी दोनों ही व्यक्तियों का प्रत्यक्षस्य सामान्यं लक्षणं कृतं दोनों का प्रत्यक्ष करने वाला सामान्य लक्षण बताया अतो नात्र प्रत्यक्षलक्षणे दोषः अतः यहाँ प्रत्यक्ष लक्षण में कोई दोष नहीं है ॥ ९ ५ ॥

अस्तु तर्हि योगिनामान्तरिकप्रत्यक्षग्राह्यः पुरुषविशेष ईश्वरः “क्लेश कर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः” हमने मान लिया कि- योगियों के आन्तरिक प्रत्यक्ष से ग्रहण करने योग्य एक पुरुष विशेष ईश्वर है । योगदर्शन के सूत्र के अनुसार क्लेश कर्म विपाक आदि से परे है, सब जीवो से भिन्न प्रकार का है (योग ० १ . २ ४) यः खलु वैदिकसिद्धान्ते स्वीक्रियते जो ईश्वर वैदिक सिद्धान्त में स्वीकार किया जाता है, वह हमने भी मान लिया, परन्तु तस्य नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाववत्त्वात् कथमीश्वरत्वमधिष्ठातृत्वं चेत्याकांक्षायामुच्यते परंतु उसका नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव होने से वह संसार का स्वामी कैसे हो गया और सब जगत का राजा कैसे हो गया? ऐसा प्रश्न होने पर उत्तर देते हैं -

तत्सन्निधानादधिष्ठातृत्वं मणिवत् ॥ ९ ६ ॥

सूत्रार्थ= प्रकृति की समीपता से ईश्वर प्रकृति का अधिष्ठाता वा स्वामी हो जाता है, जैसे लोहे की निकटता से चुंबक ।

सांख्यदर्शनम्-प्रथमोऽध्यायः

(तत्सन्निधानात्-अधिष्ठातृत्वं मणिवत्) 'तत्' शब्देन पुरुषविशेषाद् भिन्ना प्रकृतिर्गृह्यते । प्रकृतिसन्निधानात् पुरुषविशेषे तत्रेश्वरेऽधिष्ठातृत्वमीश्वरत्वं कर्तृत्वं च भवति मणिवत्, यथा लोहसन्निधानादयस्कान्तमणोराकर्षणकर्तृत्वं भवति तथैव प्रकृतिसन्निधानात्पुरुषविशेषस्येश्वरस्याधिष्ठातृत्वं जगत्कर्तृत्वं चास्ति ॥ ९ ६ ॥

एवमेव -

विशेषकार्येष्वपि जीवानाम् ॥ ९ ७ ॥

भाष्य विस्तार = 'तत्' शब्देन पुरुषविशेषाद् भिन्ना प्रकृतिर्गृह्यते । सूत्र में जो 'तत्' शब्द है जो पुरुष विशेष से भिन्न है प्रकृति अर्थ लिया जाएगा । प्रकृतिसन्निधानात् पुरुषविशेषे तत्रेश्वरेऽधिष्ठातृत्वमीश्वरत्वं कर्तृत्वं च भवति मणिवत्, प्रकृति के सन्निधान से निकटता से उस पुरुष विशेष ईश्वर में जगत का राजा संसार का स्वामी जगत का कर्ता बन गया, मणि के समान । लोहसन्निधानादयस्कान्तमणोराकर्षणकर्तृत्वं भवति जैसे लोहे की सन्निधि से जैसे चुंबक में आकर्षण कर्तित्व हो जाता है और वो चुंबक लोहे को खींच लेता है तथैव प्रकृतिसन्निधानात्पुरुषविशेषस्येश्वरस्याधिष्ठातृत्वं जगत्कर्तृत्वं चास्ति उसी प्रकार से चुंबक के समान ही प्रकृति की निकटता से पुरुष विशेष ईश्वर का आधिष्ठातृत्व हो गया और जगत का कर्तित्व हो गया । (जैसे चुंबक बिना हाथ के अपनी शक्ति से लोहे को खींच लेता है वैसे ही ईश्वर बिना हाथ पाँव के अपनी शक्ति से प्रकृति को गतिशील बना देता है) ॥ ९ ६ ॥

एवमेव -

विशेषकार्येष्वपि जीवानाम् ॥ ९ ७ ॥

सूत्रार्थ= विशेष कार्यों में जीवों का भी अधिष्ठातृत्व होता है ।

भाष्य विस्तार = अपि सम्भवार्थः सम्भवो युक्तता । सूत्र में जो 'अपि' शब्द है वह संभव अर्थ में है (संभव के भी दो अर्थ हैं प्रचलित एक ' हो सकता है ' और दूसरा ' निश्चित रूप से है ही ') और संभव का यहा अर्थ लिया जाएगा ' निश्चित रूप से ऐसा ही है ' । रसरक्तमांसमेदोऽस्थिमज्जशुक्रादीनां रचनापरिपाकौ प्राणसञ्चारश्च इति नैसर्गिकं कार्यं विहाय विशेषेषु भिन्नेषु कार्येषु सन्निधानाज्जीवानामपि भवत्येवाधिष्ठातृत्वं कहते हैं कुछ क्रियाएँ शरीर में नैसर्गिक चल रही हैं, अर्थात् जो क्रियाएँ जीव नहीं कर रहा होता, ईश्वर की व्यवस्था से चल रही हैं । रस, रक्त, मांस, मेद, मज्जा, अस्थि, शुक्र आदि की रचना और इनका परिपाक तथा प्राणों का जो संचार चल रहा है शरीर में इन नैसर्गिक कार्यों के अतिरिक्त विशेषेषु भिन्नेषु कार्येषु विशेष भिन्न कार्यों में सन्निधानात् किन्ही वस्तुओं की निकटता होने से जीवानाम अपि भवति अधिष्ठातृत्वम् जीवात्माओं का भी अधिष्ठातृत्व हो जाता है (किन्ही-किन्ही वस्तुओं के निकट होने से जीवात्मा भी उनका राजा बन जाता है) उदाहरण दे रहे हैं तद्यथा मृत्तिकासन्निधानाद् घटनिर्मातृत्वम्, जैसे कुम्हार मिट्टी के सन्निधान होने से घट का निर्माता बन जाता है, इसी तरह से अन्नसन्निधानाद् भोजनपत्तृत्वम्, किसी पाचक के निकट भोजन बनाने की सामाग्री (अन्न आदि) रखी हुई है उसने भोजन बना दिया, कार्पाससन्निधानाद् वस्त्रवातृत्वम्, जिस जुलाहे की पास कपास हो उस कपास की निकटता से वस्त्र बुनना आरंभ कर देता है वो उसका अधिष्ठाता बन जाता

सांख्यदर्शनम्-प्रथमोऽध्यायः

(विशेषकार्येषु-अपि जीवानाम्) अपि सम्भवार्थः सम्भवो युक्तता । रसरक्तमांसमेदोऽस्थिमज्जशुक्रादीनां रचनापरिपाकौ प्रामसञ्चारश्च इति नैसर्गिकं कार्यं विहाय विशेषेषु भिन्नेषु कार्येषु सन्निधानाज्जीवानामपि भवत्येवाधिष्ठातृत्वं तद्यथा मृत्तिकासन्निधानाद् घटनिर्मातृत्वम्, अन्नसन्निधानाद् भोजनपक्त्वम्, कार्पाससन्नि- धानाद् वस्त्रवातृत्वम्, प्राणिमात्रस्य स्वस्वखाद्यान्वेषयितृत्वं यथानुकूलं यथासम्भवं स्वस्वनीडबिलादिनिर्मातृत्वं तत्तत्साधनवस्तुसन्निधानाद् भवति हि ॥ ९ ७ ॥

भवतु प्रकृतिसन्निधानादीश्वरस्याधिष्ठातृत्वं प्रकृतिं जगद्रूपे परिणमयितुं परन्तु सर्गारम्भे जीवात्मनामन्तःकरणे वेदवाक्यार्थोपदेशस्तेभ्यः कर्मफलप्रदानं च कथं तेनेश्वरेण क्रियते-इत्याकांक्षायामुच्यते सूत्रद्वयेन -

सिद्धरूपबोद्धत्वाद्वाक्यार्थोपदेशः । अन्तःकरणस्य तदुज्ज्वलितत्वाल्लोहवदधिष्ठातृत्वम् ॥ ९ ८-

है। प्राणिमात्रस्य स्वस्वखाद्यान्वेषयितृत्वं यथानुकूलं यथासम्भवं स्वस्वनीडबिलादिनिर्मातृत्वं तत्तत्साधनवस्तुसन्निधानाद् भवति हि समस्त प्राणी अपना-अपना भोजन ढूँढते रहते हैं और जिसको जितना अनुकूल होता है जितना शक्ति सामर्थ्य विज्ञान ईश्वर ने दिया है विल, घोंसला, भवन आदि निर्माण कर लेते हैं वो सब उस उस वस्तु के सन्निधान से आसपास रहने निकट होने से उसके स्वामी बन जाते हैं ॥ ९ ७ ॥

भवतु प्रकृतिसन्निधानादीश्वरस्याधिष्ठातृत्वं प्रकृतिं जगद्रूपे परिणमयितुं परन्तु सर्गारम्भे जीवात्मनामन्तःकरणे वेदवाक्यार्थोपदेशस्तेभ्यः कर्मफलप्रदानं च कथं तेनेश्वरेण क्रियते भूमिका में कहते हैं भाष्यकार - कि प्रकृति की निकटता होने से ईश्वर उसका अधिष्ठाता हो जाता हो, प्रकृति को जगत रूप में परिणमित करने के लिए वो प्रकृति का अधिष्ठाता बन गया। परन्तु सृष्टि के आरंभ में जीवात्माओं के अन्तःकरण में वेद के वाक्यों व उसके अथो ५ का उपदेश किया और जीवों को कर्मफल भी प्रदान किए। ये उसने कैसे किया?-इत्याकांक्षायामुच्यते सूत्रद्वयेन - इस प्रश्न के उपास्थित होने पर इन दो सूत्रों के माध्यम से उत्तर दिया जाता है

सिद्धरूपबोद्धत्वाद्वाक्यार्थोपदेशः । अन्तःकरणस्य तदुज्ज्वलितत्वाल्लोहवदधिष्ठातृत्वम् ॥ ९ ८- ९ १ ॥

सूत्रार्थ= ईश्वर नित्य ज्ञान प्रदाता होने से सृष्टि के आरम्भ में जीवों के अन्तःकरण में वेद वाक्यार्थ का उपदेश करता है ।

और अन्तःकरण को ईश्वर द्वारा विकसित किए जाने से ईश्वर का जीवों पर अधिष्ठातृत्व या स्वामित्व होता है, जैसे लोहे में अग्नि का ।

अनयोः सूत्रयोरेकवाक्यताऽस्ति - इन दोनों सूत्रों में परस्पर संबंध है-

भाष्य विस्तार = अत्र सिद्धशब्दो नित्यार्थः । इस सूत्र में जो 'सिद्ध' शब्द आया है वह नित्य अर्थ में हैं। नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावः पुरुषः तो पुरुष जो की ईश्वर है वह नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, स्वभाव वाला है। तस्य नित्यबुद्धस्वरूपत्वात् स्वरूपतो बोधकत्वात्। उसके नित्य ही बुद्ध स्वरूप होने से अर्थात् स्वरूप से ही अनन्त ज्ञान वाला है। वेदवाक्यार्थोपदेशः खलूपपद्यते जीवात्मनामन्तःकरणे ईश्वर स्वरूप से ही बोध

[यह केवल निजी प्रयोग हेतु, अप्रकाशित, संशोधन अपेक्षित संग्रह है।]

१९११

अनयोः सूत्रयोरेकवाक्यताऽस्ति -

(सिद्धरूपबोधत्वात्) अत्र सिद्धशब्दो नित्यार्थः । नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावः पुरुषः, तस्य नित्यबुद्धस्वरूपत्वात् स्वरूपतो बोधकत्वात् । (वाक्यार्थोपदेशः) वेदवाक्यार्थोपदेशः खलूपपद्यते जीवात्मनामन्तःकरणे (अन्तःकरणस्य तदुज्ज्वलितत्वात्) जीवात्मनामन्तःकरणस्य तेन बोधकेनेश्वरेणोद्भासितत्वात् स्वकीयज्ञानेन विकसितत्वात् तत्र ज्ञानस्याविष्कृतत्वात् (लोहवदधिष्ठातृत्वम्)

कराने वाला है वह सबका गुरु शिक्षक है इसलिए वह वेद वाक्यों के अर्थों का उपदेश करता है जीवात्माओं के अन्तःकरणों में। इस प्रकार से वेद वाक्यों के उपदेश करता है, अब जीवात्मनामन्तःकरणस्य तेन बोधकेनेश्वरेणोद्भासितत्वात् स्वकीयज्ञानेन विकसितत्वात् तत्र ज्ञानस्याविष्कृतत्वात् जीवात्माओं के अन्तःकरण को तेन बोधकेनेश्वरेणोद्भासितत्वात् उद्भासित किया, प्रेरित किया स्वकीयज्ञानेन विकसितत्वात् अपने ज्ञान से उनके अन्तःकरण को विकसित किया तत्र ज्ञानस्याविष्कृतत्वात् उनके अन्तःकरण में ज्ञान स्थापित कर देने से उन चार ऋषियों को ज्ञान हो गया अन्तःकरणस्य तदुज्ज्वलितत्वादेव तेभ्यो जीवात्मभ्यः कर्मफलप्रदानायापि तेषामन्तःकरणस्य तेनेश्वरेणोद्भासितत्वात् तस्येश्वरस्याधिष्ठातृत्वमस्ति । एक दृष्टान्त के माध्यम से समझाते हैं अन्तःकरणस्य तदुज्ज्वलितत्वादेव अन्तःकरण को ईश्वर प्रेरित करता है जीवात्माओं को कर्मफल भुगवाने के लिए तेभ्यो जीवात्मभ्यः कर्मफलप्रदानायापि उन जीवात्माओं के लिए कर्मफल देने के लिए भी तेषामन्तःकरणस्य तेनेश्वरेणोद्भासितत्वात् उनके अन्तःकरण को क्रियाशील करता है इस कारण से भी तस्येश्वरस्याधिष्ठातृत्वमस्ति उस ईश्वर का अधिष्ठातृत्व है । उक्तं यथा “जीवेनात्मनाऽनु-प्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणीति” जैसा कि छंदोग्यउपनिषद् में कहा गया है कि जीवात्मा के साथ ईश्वर प्रविष्ट होकर के अर्थात् जीवात्माओं के साथ रहता हुआ ईश्वर नामरूपे व्याकरवाणीति सृष्टि के पदार्थो ५ के नाम और उनके रूप आकृतियाँ बनाता है। तच्चाधिष्ठातृत्वं लोहवत्, वह जो उसका अधिष्ठातृत्व है वह लोहे के समान है। लोहे-इव लोहवत् “तत्र तस्येव” (अष्टा ०५.१.११६) तत्रैव वत् प्रत्ययः सप्तम्याम् । अष्टाध्यायी का एक सूत्र है “तत्र तस्येव” इस में बताया कि वहाँ पर जो ‘वत्’ प्रत्यय है वह सप्तमी है, प्रथमा में नहीं है। तो लोहवत् का अर्थ हुआ ‘जैसे लोहे में’ लोहे यथाऽग्निनोद्भासितत्वादेव तस्येश्वरस्याधिष्ठातृत्वं भवति जैसे लोहे में अग्नि के द्वारा उज्ज्वलित करने पर (अग्नि के द्वारा लोहे को गरम करने पर) फिर अग्नि उसका अधिष्ठाता हो जाता है (लोहा होता है ठोस परंतु अग्नि में गरम करने से उसको जिधर चाहो मूड जाता है) स लोहं प्रविश्य नमयति लोहे में अग्नि प्रवेश करके उसे जिधर चाहे झुका देती है मोड़ देती है तथैवेश्वरो जीवात्मनामन्तःकरणं कर्मफलाभिमुखं नयति उसी प्रकार से ईश्वर उन जीवों के अन्तःकरणों में प्रविष्ट हो करके कर्मफल की ओर मोड़ देता है ॥ १८- १९ ॥

प्रत्यक्षप्रमाणस्य विषयः समाप्तः, प्रत्यक्ष प्रमाण का विषय अब समाप्त हुआ। योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वात्-लीनवस्तुलब्धातिशयसम्बन्धाच्चेश्वरस्य योगिप्रत्यक्षविषयत्वं च साधितं योगियों का अबाह्य प्रत्यक्ष होने से और सूक्ष्म वस्तुओं के साथ उनका सीधा संबंध होने से और ईश्वर योगियों के आंतरिक प्रत्यक्ष का विषय है, ये भी सिद्ध हुआ। प्रकृतिजीवात्मसु च तस्याधिष्ठातृत्वमपि व्यवस्थापितम्

सांख्यदर्शनम्-प्रथमोऽध्यायः

अन्तःकरणस्य तदुज्ज्वलितत्वादेव तेभ्यो जीवात्मभ्यः कर्मफलप्रदानायापि तेषामन्तःकरणस्य तेनेश्वरेणोज्ज्वलितत्वात् तस्येश्वरस्याधिष्ठातृत्वमस्ति । उक्तं यथा “जीवेनात्मनाऽनु- प्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणीति” (छान्दो ०६.३.२) तच्चाधिष्ठातृत्वं लोहवत्, लोहे-इव लोहवत् “तत्र तस्येव” (अष्टा ०५.१.११६) तत्रैव वत् प्रत्ययः सप्तम्याम् । लोहे यथाऽग्निनोऽज्ज्वलितेऽग्नेरधिष्ठातृत्वं भवति स लोहं प्रविश्य नमयति तथैवेश्वरो जीवात्मनामन्तःकरणं कर्मफलाभिमुखं नयति ॥ १८- १९ ॥

प्रत्यक्षप्रमाणस्य विषयः समाप्तः, योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वात्-लीनवस्तुलब्धा-
तिशयसम्बन्धाच्चेश्वरस्य योगिप्रत्यक्षविषयत्वं च साधितं प्रकृतिजीवात्मसु च तस्याधिष्ठातृत्वमपि

और प्रकृति एवं जीवात्मा पर उसका अधिष्ठातापन भी सिद्ध हो गया। अधुना तदग्रेऽवशिष्टप्रमाणविषयः प्रस्तूयते। अब उसके आगे प्रत्यक्ष प्रमाण को बताने के बाद बचे हुए प्रमाण का विषय प्रस्तुत किया जाता है।

प्रतिबन्धदृशः प्रतिबद्धज्ञानमनुमानम् ॥ १०० ॥

सूत्रार्थः= नियम पूर्वक साथ साथ रहने वाली दो वस्तुओं को देखने वाले व्यक्ति का उन दोनों के सम्बन्ध का ज्ञान, इसको अनुमान प्रमाण कहते हैं।

भाष्य विस्तार = बन्धं बन्धं प्रति-प्रतिबन्धोऽनिवार्यसम्बन्धोऽविनाभावसम्बन्धस्तं पश्यतीति प्रतिबन्धदृक् तस्य प्रतिबन्धदृशोऽनिवार्यसम्बन्धदृशो यद्वाऽविनाभाव-सम्बन्धदृष्टुर्नियतसम्बन्धदृष्टुः। प्रतिबन्ध को पहले बता रहे हैं बन्धं बन्धं प्रति एक-एक बन्ध के प्रति (बन्ध का अर्थ है बंधन, नियम पूर्वक साथ रहना) प्रतिबन्धोऽनिवार्यसम्बन्धोऽविनाभावसम्बन्ध प्रत्येक बंधन के प्रति अर्थात् अनिवार्य संबंध (जो दो वस्तुएँ साथ-साथ रहती हैं सदा) उसी को अविनाभाव संबंध कहते हैं तं पश्यति प्रतिबन्धदृक् उस नियामक संबंध को देखने वाला तस्य प्रतिबन्धदृशः उस प्रतिबन्ध को देखने वाले व्यक्ति का अनिवार्य संबंध दृशः अथवा अविनाभाव संबंध दृशः नियत सम्बन्ध दृशः जो दो चीजों के नियत सम्बन्ध को देखने वाला व्यक्ति है, उस व्यक्ति का प्रतिबद्धज्ञानम्= अनिवार्यसम्बन्धज्ञानमविनाभावसम्बन्ध - ज्ञानं नियतसम्बन्धज्ञानं तत्तत्स्थलेषु तत्तज्जातीयेषु तद्व्याप्तिज्ञानं तद्दर्शनं वानुमानं प्रमाणं भवति। इस प्रकार से उस अनिवार्य सम्बन्ध का जो ज्ञान है (इस प्रकार से दो वस्तुओं के नित्य सम्बन्ध को जानने वाले व्यक्ति का जो ज्ञान है) अविनाभाव सम्बन्ध ज्ञान निश्चित साथ रहने के नियम का जो ज्ञान है तत्तत्स्थलेषु तत्तज्जातीयेषु उन-उन स्थलों पर उन-उन प्रकार की वस्तुओं में तद्व्याप्तिज्ञानं उसके व्याप्ति का ज्ञान तद्दर्शनं वा उसी ज्ञान को दर्शन भी कहते हैं, ये अनुमान प्रमाण होता है। तन्त्रान्तरप्रसिद्धं पूर्ववच्छेषवत्सामान्यतोदृष्टं च” तन्त्रान्तरप्रसिद्धं अन्य शास्त्र में जो प्रसिद्ध है वो अनुमान प्रमाण तीन प्रकार का है पूर्ववच्छेषवत्सामान्यतोदृष्टं च पूर्ववत्, शेषवत् और सामान्यतोदृष्ट। तथा “अनुमेयस्य तुल्यजातीयेष्वनुवृत्तो भिन्नजातीयेभ्यो व्यावृत्तः सम्बन्धो यस्तद्विषया सामान्यावधारणप्रधाना वृत्तिरनुमानम्” और योगदर्शन के व्यासभाष्य का वचन- अनुमेयस्य जो अनुमान करने योग्य पदार्थ है, जैसे- अग्नि। उस अनुमेय पदार्थ का तुल्यजातीयेष्वनुवृत्तो समान जाति के सब धुओं में वह साथ रहता है (अनुमेय पदार्थ=अग्नि, जहां-जहां धुआँ होगा वहाँ-वहाँ अग्नि अवश्य होगी) भिन्नजातीयेभ्यो व्यावृत्तः भिन्न जाति वाला है, जैसे- जल। (जहां-जहां पानी होगा वहाँ-वहाँ अग्नि नहीं होगी) इस प्रकार से जो

व्यवस्थापितम् । अधुना तदग्रेऽवशिष्टप्रमाणविषयः प्रस्तूयते ।

प्रतिबन्धदृशः प्रतिबद्धज्ञानमनुमानम् ॥ १०० ॥

(प्रतिबन्धदृशः) बन्धं बन्धं प्रति-प्रतिबन्धोऽनिवार्यसम्बन्धोऽविनाभावसम्बन्धस्तं पश्यतीति प्रतिबन्धदृक् तस्य प्रतिबन्धदृशोऽनिवार्यसम्बन्धदृशो यद्वाऽविनाभावसम्बन्धदृष्टिर्नियतसम्बन्धदृष्टुः (प्रतिबद्धज्ञानम्) अनिवार्यसम्बन्धज्ञानमविनाभावसम्बन्धज्ञानं नियतसम्बन्धज्ञानं तत्तत्स्थलेषु तत्तज्जातीयेषु तद्व्याप्तिज्ञानं तद्दर्शनं वानुमानं प्रमाणं भवति । तन्त्रान्तरप्रसिद्धं पूर्ववच्छेषवत्सामान्यतोदृष्टं च'' (न्याय ०१.१.५) तथा '' अनुमेयस्य तुल्यजातीयेष्वनुवृत्तो भिन्नजातीयेभ्यो व्यावृत्तः सम्बन्धो यस्तद्विषया सामा मन्यावधारणप्रधाना वृत्तिरनुमानम्'' (योग ०१.७ व्यासः) उदाहरणं च पर्वतो वह्निमान् धूमात्, यथा

सम्बन्ध है अर्थात् जो उससे सम्बन्ध पदार्थ है-अग्नि । तद्विषया उस अग्नि के सम्बन्ध में सामान्यावधारणप्रधाना वृत्ति अनुमानम् सामान्य ज्ञान कराने वाली वृत्ति उसका नाम अनुमान है । उदाहरण देते हैं- उदाहरणं च पर्वतो वह्निमान् धूमात्, जैसे कि कोई कहे कि ये पर्वत अग्नि वाला है, क्योंकि ऊपर धुआँ दिख रहा है यथा महानसं जैसे पाकशाला में (महानस कहते हैं पाकशाला को) यत्र यत्र धूमस्तत्र वह्निस्तस्मात् पर्वतो वह्निमान् जहां-जहां पर धुआँ दिखता है वहाँ-वहाँ पर आग दिखती है, इसलिए पर्वत भी अग्नि वाला है ॥ १०० ॥

आप्तोपदेशः शब्दः ॥ १०१ ॥

सूत्रार्थ= ईश्वर और ऋषियों का उपदेश शब्द प्रमाण है ।

भाष्य विस्तार = आप्तस्य सर्वज्ञानमाप्तवतः सर्वज्ञस्येश्वरस्योपदेशः, आप्त का जो उपदेश है वो शब्द प्रमाण है आप्तस्य सर्वज्ञानमाप्तवतः आप्त अर्थात् सारे ज्ञान को प्राप्त करने वाले का ऐसे सर्वज्ञस्येश्वरस्योपदेशः सर्वज्ञ ईश्वर का उपदेश, शब्द प्रमाण है । यद्वाऽऽप्तो महर्षीणामन्तरात्मन्याविष्टः सर्गारम्भे यः स वेदः, अथवा ऐसे भी कह सकते हैं महर्षीणामन्तरात्मन्याविष्टः महर्षियों के अन्तरात्मा में जो प्रविष्ट है सर्गारम्भे सर्ग के आरम्भ में यः जो स वेदः वह वेद शब्द प्रमाण कहलाएगा । तथाऽऽप्तस्य साक्षात्कृतधर्मणो विद्यानिष्ठातस्योपदेशः शब्दप्रमाणम् और आप्तस्य साक्षात्कृतधर्मणो जिसने वस्तुओं के धर्मों का साक्षात्कार किया हो वह विद्यानिष्ठातस्योपदेशः विद्या में निष्ठात है, कुशल है, जानकर है उसका उपदेश भी शब्द प्रमाण है ॥ १०१ ॥

उभयसिद्धिः प्रमाणात् तदुपदेशः ॥ १०२ ॥

सूत्रार्थ= तीनों प्रमाणों से प्रकृति और पुरुष दोनों की सिद्धि होती है, इसलिए इन प्रमाणों का उपदेश किया ।

भाष्य विस्तार = उभययोः प्रकृतिपुरुषयोः सिद्धिर्भवति प्रमाणात् अतस्तस्य प्रमाणस्योपदेशः क्रियते । तो कहते हैं उभययोः दोनों की अर्थात् प्रकृतिपुरुषयोः प्रकृति और पुरुष (जीवात्मा-परमात्मा) की सिद्धिर्भवति सिद्धि हो जाती है, प्रमाणात् प्रमाण से अतस्तस्य प्रमाणस्योपदेशः क्रियते इसलिए इस प्रमाण का उपदेश किया जाता है उभयसिद्धिः प्रमाणत्रयात् कथमिति विव्रियते- तीन प्रमाणों से दोनों की सिद्धि

महानसं यत्र यत्र धूमस्तत्र वह्निस्तस्मात् पर्वतो वह्निमान् ॥ १०० ॥

आप्तोपदेशः शब्दः ॥ १०१ ॥

(आप्तोपदेशः) आप्तस्य सर्वज्ञानमाप्तवतः सर्वज्ञस्येश्वरस्योपदेशः, यद्वाऽऽप्तो महर्षीणामन्तरात्मन्याविष्टः सर्गारम्भे यः स वेदः, तथाऽऽप्तस्य साक्षात्कृतधर्मणो विद्यानिष्णातस्योपदेशः (शब्दः) शब्दप्रमाणम् ॥ १०१ ॥

उभयसिद्धिः प्रमाणात् तदुपदेशः ॥ १०२ ॥

(उभयसिद्धिः प्रमाणात्) उभययोः प्रकृतिपुरुषयोः सिद्धिर्भवति प्रमाणात् (तदुपदेशः)

कैसे होती है, इसका विवरण देते हैं। प्रकृतिपुरुषयोः प्रत्यक्षं प्रमाणं तु योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वाद् तेषां लीनवस्तुलब्धातिशयसम्बन्धाच्च भवतीत्युक्तं हि पूर्वम्, इति उक्तम ही पूर्वम ऐसा पहले कह चुके हैं कि प्रकृतिपुरुषयोः प्रकृति पुरुष दोनों का प्रत्यक्षं प्रमाणं तु दोनों का प्रत्यक्ष प्रमाण तो योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वाद् योगियों के अबाह्य प्रत्यक्ष होने से तेषां लीनवस्तुलब्धातिशयसम्बन्धाच्च और उनका सूक्ष्म पदार्थों के साथ सीधा साक्षात सम्बन्ध होने से उन दोनों का ज्ञान हो जाता है। यतो हि प्रत्यक्षलक्षणके सूत्रे क्योंकि प्रत्यक्ष लक्षण के सूत्र में ऐसा बताया था “यत्सम्बन्धसिद्धं तदाकारोल्लेखि विज्ञानं तत्प्रत्यक्षम्” जी सभी किसी वस्तु के सम्बन्ध से सिद्ध होने वाला उसके स्वरूप को बतलाने वाला जो ज्ञान है वो प्रत्यक्ष कहलाता है। इति न्यायशास्त्रवत् ‘इन्द्रियार्थस-न्निकर्षः’ प्रत्यक्षस्य लक्षणं नोक्तं यहाँ सा २य दर्शन में न्याय दर्शन के समान ‘इन्द्रियार्थसन्निकर्षः’ तो प्रत्यक्ष का लक्षण नहीं कहा अपितु ‘यत्सम्बन्धसिद्धम्’ उक्तं बल्कि ‘यत्सम्बन्धसिद्धम्’ इन शब्दों से कहा तच्चान्तःकरणसम्बन्धसिद्धमध्यात्मसम्बन्धसिद्धमपि योगिनां प्रत्यक्षं तत्प्रत्यक्षलक्षणेऽन्तर्भवति, इस प्रकार से ‘यत्सम्बन्धसिद्धम्’ शब्द कह कर के जो प्रत्यक्ष की परिभाषा की, इस परिभाषा में योगियों का जो आंतरिक प्रत्यक्ष होता है अन्तःकरण के सम्बन्ध से ईश्वर आत्मा आदि पदार्थों के साथ सम्बन्ध होने पर जो उनका सीधा सीधा साक्षात ज्ञान होता है उसको भी योगियों के आंतरिक प्रत्यक्ष में स्वीकार करके वह भी प्रत्यक्ष के लक्षणों में आजाता है तस्मात् प्रकृतिपुरुषयोः सिद्धौ प्रत्यक्षं प्रमाणमपिसाधकम्। इसलिए ईश्वर-जीव-प्रकृति इन सूक्ष्म तत्वों का आंतरिक प्रत्यक्ष हो जाता है, इन तीनों की सिद्धि प्रत्यक्ष प्रमाण से हो जाती है। प्रत्यक्ष प्रमाण से इन तीनों की सिद्धि हो गयी है। अब अनुमानम्-महत्तत्त्वादिकं कार्यम् महत्त्व के बाद के जितने पदार्थ हैं वे सब कार्य हैं प्रकृति के (जो उत्पन्न हुआ वो कार्य है, जिससे उत्पन्न हुआ वो कारण है), कार्यं चोपादाननिमित्ताभ्यां सम्भवति घटवत् जो कार्य वस्तु है वह उपादान और निमित्त इन दो कारणों से उत्पन्न होते हैं, जैसे घड़ा उत्पन्न होता है, यथा घटस्य मृत्तिकयोपादानकारणेन तथा कुम्भकारेण निमित्तकारणेन भवितव्यं जैसे घड़े का एक उपादान कारण होना चाहिए मिट्टी और इसी प्रकार से कुंभकार निमित्त होना चाहिए तभी घड़ा बनेगा तद्वदत्रापि प्रकृत्योपादानकारणेन पुरुषेणेश्वरेण निमित्तकारणेन भवितव्यमेव जैसे कार्य वस्तु घड़ा मिट्टी और कुंभकार के बिना नहीं बन सकता, ऐसे ही जो जगत है ये प्रकृति के बिना नहीं बन सकेगा और ईश्वर के बिना जगत का निर्माण न हो सकेगा (जैसे

सांख्यदर्शनम्-प्रथमोऽध्यायः

अतस्तस्य प्रमाणस्योपदेशः क्रियते । उभयसिद्धिः प्रमाणत्रयात् कथमिति विव्रियते-प्रकृतिपुरुषयोः प्रत्यक्षं प्रमाणं तु योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वाद् तेषां लीनवस्तु-लब्धातिशयसम्बन्धाच्च भवतीत्युक्तं हि पूर्वम्, यतो हि प्रत्यक्षलक्षणके सूत्रे “यत्सम्बन्धसिद्धं तदाकारोल्लेखि विज्ञानं तत्प्रत्यक्षम्” इति न्यायशास्त्रवत् ‘इन्द्रियार्थस-न्निकर्षः’ प्रत्यक्षस्य लक्षणं नोक्तमपितु ‘यत्सम्बन्धसिद्धम्’ उक्तं तच्चान्तःकरणसम्बन्ध-सिद्धमध्यात्मसम्बन्धसिद्धमपि योगिनां प्रत्यक्षं तत्प्रत्यक्षलक्षणेऽन्तर्भवति, तस्मात् प्रकृतिपुरुषयोः सिद्धौ प्रत्यक्षं प्रमाणमपिसाधकम् । अनुमानम्-महत्तत्त्वादिकं कार्यम्, कार्यं चोपादाननिमित्ताभ्यां सम्भवति घटवत्, यथा घटस्य मृत्तिकयोपादानकारणेन तथा कुम्भकारेण निमित्तकारणेन भवितव्यं तद्वदत्रापि प्रकृत्योपादानकारणेन पुरुषेणेश्वरेण निमित्तकारणेन भवितव्यमेव । अथ च “कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः” (वैशेषिक ०२.१.२४) कार्यं त्रिगुणात्मकं सत्त्वरजस्तमोमयं तथाभूतेन त्रिगुणात्मकेन सत्त्वरजस्तमोमयेन प्रकृत्याख्येनोपादानकारणेनापि भवितव्यम् । “अचाक्षुषाणामनुमानेन बोधः” (सांख्य

मिट्टी घड़े का उपादान कारण है वैसे ही प्रकृति जगत का उपादान है जैसे कुम्हार घड़े का निमित्त कारण है वैसे ही ईश्वर जगत निर्माण में निमित्त कारण है) । अथ च “कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः” एक और भी ये नियम है, वैशेषिक दर्शन में के सूत्र है “कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः” कार्य वस्तु में जो गुण देखे जाते हैं वे कारण गुण के अनुसार होते हैं (वैशेषिक ०२.१.२४) इसके आधार पर कार्य त्रिगुणात्मकं सत्त्वरजस्तमोमयं तथाभूतेन त्रिगुणात्मकेन सत्त्वरजस्तमोमयेन प्रकृत्याख्येनोपादानकारणेनापि भवितव्यम् (जैसे रेशमी वस्त्र है तो उसका उपादान कारण भी रेशमी धागा ही होगा) जगत में तीन प्रकार का स्वभाव दिख रहा है, ये कार्य जगत तीन गुणों वाला है सत्व, रज और तम से युक्त है । इस कार्य को देखकर के इसका कारण भी त्रिगुणात्मक होना चाहिए वो भी सत्व रज और तम से युक्त होना चाहिए जिसको प्रकृति नाम से कहते हैं, ऐसा ही उपादान कारण होना चाहिए । ये अनुमान प्रमाण से प्रकृति की सिद्धि हो गयी है । “अचाक्षुषाणामनुमानेन बोधः” जो वस्तुएँ आँख से नहीं दिखती उनका हम अनुमान से ज्ञान कर लेते हैं (सांख्य ०१.६०) इति सूत्रतः प्रकृतिपुरुषयोर्बोधाया अनुमानं प्रक्रियते इस सूत्र से प्रकृति और पुरुष का ज्ञान प्राप्त करने के लिए अनुमान का प्रसंग चला पुनश्च और फिर कहा “संहतपरार्थत्वात् पुरुषस्य” (जीवात्मा के अनुमान के लिए ये सूत्र है) संघात वस्तुएँ किसी दूसरे के लिए होती हैं, इससे ये अनुमान होता है की संघात से भी भिन्न कोई और होता है जो इसका प्रयोक्ता होता है, वह उपभोक्ता जीवात्मा है (सांख्य ०१.६६) इति सूत्रेऽप्युपतिष्ठते इस सूत्र में भी ये बात उठाई गई कि संघात वस्तुएँ किसी दूसरे के लिए होती हैं, संहतपरार्थत्वात् पुरुषस्यानुमानेन बोधो भवति इस प्रकार से पुरुष का ज्ञान अनुमान से हो जाता है, संघात के पर के लिए होने से । महदादिकं संहतं तच्च परार्थं घटशय्यादिवत् महत्तत्त्व भी संघात है वह सत्व-रज-तम से मिलकर बना है वह दूसरे के लिए बना है घट , शय्या आदि के समान, परश्च पुरुषः वो जो पर है दूसरा जो इसका उपभोग करेगा वह जीवात्मा है, एवमनुमानं प्रमाणसिद्धौ इस प्रकार से ये अनुमान प्रमाण कि सिद्धि हो गई । प्रमाण से प्रकृति पुरुष कि सिद्धि करने में ये अनुमान प्रमाण हुआ ।

अब शब्द प्रमाण से सिद्ध करते हैं ईश्वर जीव प्रकृति को- शब्दप्रमाणं च “द्यावाभूमी जनयन् देव एकः यजुर्वेद का ये शब्द प्रमाण है- एक ही देव ईश्वर ने भूमि अन्तरिक्ष पृथ्वी लोक को उत्पन्न किया (यजु

सांख्यदर्शनम्-प्रथमोऽध्यायः

०१.६०) इति सूत्रतः प्रकृतिपुरुषयोर्बोधायानुमानं प्रक्रियते पुनश्च “संहतपरार्थत्वात् पुरुषस्य” (सांख्य ०१.६६) इति सूत्रेऽप्युपतिष्ठते, संहतपरार्थत्वात् पुरुषस्यानुमानेन बोधो भवति । महदादिकं संहतं तच्च परार्थं घटशय्यादिवत्, परश्च पुरुषः, एवमनुमानं प्रमाणसिद्धौ । शब्दप्रमाणं च “द्यावाभूमी जनयन् देव एकः (यजु ०१७.१९) इति पुरुषविशेष ईश्वरे शब्दप्रमाणम् । “त्यक्तेन भुञ्जीथा” (यजु ०४०.१) भोक्तृपुरुषे शब्दप्रमाणम् । ईश्वरजीवयाः शब्दप्रमाणम् “बालादेकमणीयस्कमुतैकं नेव दृश्यते । ततः परिष्वजीयसी मम प्रिया देवता ।। इयं कल्याण्यजरा मर्त्यस्यामृता गृहे । यस्मै कृताशये स यश्चकार जजार सः ।।” (अथर्व ० १०.८.२५-२६) प्रकृतौ शब्दप्रमाणम् - “तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत् तन्महिना जायतैकम्” (ऋ ०१०.१२९.३) ‘आभू’ प्रकृत्याख्यं कारणवस्तु यतः “इयं विसृष्टिर्यत आबभूव” (ऋ ०१०.१२९.७) इति निर्देशः । “अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः”

० १७.१९) इति पुरुषविशेष ईश्वरे शब्दप्रमाणम् ये पुरुष विशेष ईश्वर के संबंध में शब्द प्रमाण हो गया । “त्यक्तेन भुञ्जीथा” वेद में प्रमाण दिया दूसरा- त्याग पूर्वक भोगो (यजु ०४०.१) भोक्तृपुरुषे शब्दप्रमाणम् ये भोक्ता पुरुष के संबंध में शब्द प्रमाण है । ईश्वरजीवयाः शब्दप्रमाणम् अब एक ऐसा मंत्र का प्रमाण दे रहे हैं जिसमें ईश्वर और जीव दोनों के विषय में शब्द प्रमाण है “बालादेकमणीयस्कमुतैकं नेव दृश्यते एक तो जीवात्मा ऐसा है जो बाल से भी छोटा है और जो दूसरा है ईश्वर वह तो और भी छोटा है उसकी तो कल्पना भी नहीं कर सकते । ततः परिष्वजीयसी मम प्रिया देवता इस प्रकार से जो मेरा प्रिय देवता है वह कल्याण करने वाला है ।। एक मात्र और दिया प्रमाण के लिए इयं कल्याण्यजरा मर्त्यस्यामृता गृहे । यस्मै कृताशये स यश्चकार जजार सः ।।” (अथर्व ० १०.८.२५-२६) ये कल्याण करने वाली बूढ़ी न होने वाली और कभी मरती नहीं, इस मर्त्य=जीवात्मा (मरने का अर्थ है शरीर छोड़ते रहना) के गृह में रहती है । इस प्रकार से जीवात्मा जो कर्म करता है ईश्वर उसको कर्मफल देता रहता है प्रकृतौ शब्दप्रमाणम् अब प्रकृति के विषय में शब्द प्रमाण बताते हैं - “तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत् तन्महिना जायतैकम्” इस ऋग्वेद के मंत्र में बताया है- तुच्छ छोटी सी आभू=प्रकृति का जो प्रलय अवस्था में पड़ी थी, उसको ईश्वर ने परमाणुओं का संयोग वियोग करके एक महत्त्व के रूप में प्रकट किया । इस शब्द प्रमाण से पता चलता है कि मूल रूप से प्रकृति एक ही थी (ऋ ०१०.१२९.३) ‘आभू’ प्रकृत्याख्यं कारणवस्तु यतः “इयं विसृष्टिर्यत आबभूव” (ऋ ०१०.१२९.७) इति निर्देशः आभू=प्रकृति नाम की एक कारण वस्तु थी, जगत की उत्पत्ति से पूर्व । जिस कारण से ये विचित्र सृष्टि उत्पन्न हुई उसका नाम आभू=प्रकृति है । “अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः” ये उपनिषद का प्रमाण दिया- जो जन्म नहीं लेती, एक है, और लाल सफेद तथा काले रंग वाली है, वो बहुत प्रकार से समान रूप वाली प्रजा को बनाती है, उस प्रकृति का (श्वेता ०४.५) अजन्मा सत्त्वरजस्तमोमयी प्रकृतिः संकेतिता इस वचन में जो जन्म न लेनी वाली है अजन्मा है उस सत्त्व-रज-तम मयी प्रकृति का संकेत किया है । “एकं बीजं बहुधा व करोति” (श्वेता ०६.२) इति बीजशब्देनाभिलक्षिता प्रकृतिः इस वचन में कहा- जो ईश्वर एक बीज को बहुत रूप बना देता है, यहाँ एक बीज शब्द से प्रकृति की ओर संकेत है ।

अब अगला शब्द प्रमाण ऐसा है जिसमें तीनों के विषय में बताया है -

सांख्यदर्शनम्-प्रथमोऽध्यायः

(श्वेता ०४.५) अजन्मा सत्त्वरजस्तमोमयी प्रकृतिः संकेतिता । “एकं बीजं बहुधा व करोति” (श्वेता ०६.२) इति बीजशब्देनाभिलक्षिता प्रकृतिः । अथेश्वरजीवप्रकृतिरूपपदार्थत्रयस्य शब्दप्रमाणम् “द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते । तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति” (ऋ ० १.१६४.२०) अत्र ‘द्वा सुपर्णा’ तथा ‘अन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति’-अनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति’ कथनेनेश्वरजीवौ सूच्येते ‘समानं वृक्षम्’ कथनेन प्रकृत्याख्यं प्रधानं लक्ष्यते । तस्मान् प्रत्यक्षानुमानशब्दाख्येन प्रमाणत्रयेण प्रकृतिपुरुषयोः सिद्धिर्भवतीति कथनं सूत्रे साधुतरां युक्तम् ॥ १०२ ॥

पुनश्च -

सामान्यतो दृष्टादुभयसिद्धिः ॥ १०३ ॥

(सामान्यतः-दृष्टात-उभयसिद्धिः) सामान्याद् दृष्टसम्बन्धात् “संहतपरार्थत्वात् पुरुषस्य” (सां

अथेश्वरजीवप्रकृतिरूपपदार्थत्रयस्य शब्दप्रमाणम् अब ईश्वर-जीव-प्रकृति तीनों का एक साथ शब्द प्रमाण देते हैं “द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते । तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति” (ऋ ० १.१६४.२०) अत्र ‘द्वा सुपर्णा’ तथा ‘अन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति’-अनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति’ कथनेनेश्वरजीवौ सूच्येते इस मंत्र में ‘द्वा सुपर्णा’ दो सुंदर पंखों वाले पक्षी (यहाँ ईश्वर और जीव दोनों की चर्चा है) फिर कहते हैं ‘अन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति’-अनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति’ उन दो में से के तो फल खाता है, फल खाने वाला जीवात्मा है और जो दूसरा है ईश्वर । वह खाता नहीं है ‘समानं वृक्षम्’ कथनेन प्रकृत्याख्यं प्रधानं लक्ष्यते और जो दोनों पक्षी एक ही वृक्ष पर बैठे हैं, वो जो वृक्ष था वह प्रकृति है । इस प्रकार से यहाँ पर ‘समानं वृक्षम्’ कथन से प्रकृति का कथन किया जाता है, जिसे प्रधान नाम से जाना जाता है । तस्मान् प्रत्यक्षानुमानशब्दाख्येन प्रमाणत्रयेण प्रकृतिपुरुषयोः सिद्धिर्भवतीति इस प्रकार से प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द इन तीनों प्रमाणों से प्रकृति पुरुष (जीवात्मा और ईश्वर) इन तीनों की सिद्धि हो जाती है कथनं सूत्रे साधुतरां युक्तम् इस प्रकार से ये कथन सूत्र में बहुत अच्छी तरह से सिद्ध हो गया, ये कहना उचित है कि प्रमाणों के माध्यम से प्रकृति और पुरुष दोनों का ज्ञान हो जाता है । इसलिए शास्त्रों में प्रमाणों का उपदेश किया गया है ॥ १०२ ॥

पुनश्च -

सामान्यतो दृष्टादुभयसिद्धिः ॥ १०३ ॥

सूत्रार्थ= सामान्य रूप से देखने पर भी एक पदार्थ भोक्ता और दूसरा भोग्य होता है, इसकी सिद्धि होती है।

भाष्य विस्तार = सामान्याद् दृष्टसम्बन्धात् “संहतपरार्थत्वात् पुरुषस्य” पूर्वोक्तात् खलूभयोर्भोक्तृत्वभोग्यत्वयोः सिद्धिर्भवति । इस सूत्र के भाष्य में कहते हैं सामान्याद् दृष्टसम्बन्धात् सूत्र में जो “सामान्यतो दृष्ट” शब्द है उसका अभिप्राय ‘सामान्य दृष्टसम्बन्ध’ से जैसा कि पहले कहा था संघात वस्तु दूसरे के लिए होती है, इससे पुरुष का अनुमान होता है । उस कथन से भोक्तृत्व और भोग्यत्व इन दो की सिद्धि होती है । महदादिकं भोग्यं संहतपरार्थत्वात् महत्त्व, अहंकार, बुद्धि, इंद्रियाँ आदि ये सब भोग्य पदार्थ संघात है और संघात पदार्थ दूसरे के लिए होता है तच्च संहतं शय्यादिवत् परार्थं भोग्यं जो ये परार्थ पदार्थ हैं वे शय्या

०१.६६) पूर्वोक्तात् खलूभयोर्भोक्तृत्वभोग्यत्वयोः सिद्धिर्भवति । महदादिकं भोग्यं संहतपरार्थत्वात् तच्च संहतं शय्यादिवत् परार्थं भोग्यं परश्च पुरुषो यदर्थं तत्संहतं भोग्यं तस्मान्महदादिकं भोग्यं पुरुषो भोक्ता । अन्ये भाष्यकारा इमं सूत्रं प्रकृतिपुरुषयोः सिद्धावनुमानप्रमाणस्यैकांशमुखेन व्याचक्षते तत्र युक्तम्, यदि स्यादेवं तर्हि त्वनुमानप्रमा- णलक्षणानन्तरमेव शब्दप्रमाणलक्षणात्पूर्वमस्य सूत्रस्य रचनया भाव्यं तथा च “चिदवसानो भोगः” (१०४) इत्येतेनाग्रिमानन्तरसूत्रेण भोगविषयकेण सहास्य संगतिरपि खल्वस्मदर्थविधाने भवति साऽपि किलास्मदर्थपोषिकाऽस्ति ॥ १०३ ॥

आदि के समान दूसरे के लिए हैं परश्च पुरुषो और जो ‘पर’ है वह पुरुष है यदर्थं तत्संहतं भोग्यं जिसके लिए ये संघात वस्तुएँ हैं वो पुरुष=जीवात्मा उन सब का लाभ उठाता है तस्मान्महदादिकं भोग्यं पुरुषो भोक्ता इसलिए महत्त्व से लेकर पंचमहाभूतों से निर्मित जितने भी पदार्थ हैं वे सब संघात हैं इनका भोक्ता पुरुष=जीवात्मा है । अन्ये भाष्यकारा इमं सूत्रं प्रकृतिपुरुषयोः सिद्धावनुमानप्रमाणस्यैकांशमुखेन व्याचक्षते तत्र युक्तम्, स्वामी ब्रह्म मुनि जी कहते हैं- अन्य भाष्यकारों ने इस सूत्र की व्याख्या अलग ढंग से की है वे प्रकृति पुरुष की सिद्धि में अनुमान प्रमाण के एक मुख के माध्यम से कहते हैं अर्थात् इस सूत्र में प्रकृति पुरुष की सिद्धि की गई है अनुमान प्रमाण से । ‘सामान्यतो दृष्ट से प्रकृति पुरुष की सिद्धि कहते हैं’ ये ठीक नहीं हैं । यहाँ ‘उभय’ शब्द से प्रकृति पुरुष नहीं लेना है यहाँ तो भोक्ता और भोग्य अर्थ लेना है । यदि स्यादेवं तर्हि त्वनुमानप्रमाणलक्षणानन्तरमेव शब्दप्रमाणलक्षणात्पूर्वमस्य सूत्रस्य रचनया भाव्यं यदि ऐसी बात होती जैसी अन्य भाष्यकारों ने की । तो इस सूत्र की रचना अनुमान प्रमाण के लक्षण के पश्चात् और शब्द प्रमाण के लक्षण से पहले, वहीं इस सूत्र की रचना होनी चाहिए थी । परंतु वहाँ हुई नहीं, इसका अर्थ ये है कि उस अनुमान प्रमाण कि चर्चा नहीं है, अनुमान की व्याख्या में ये सूत्र नहीं है । इसलिए उनकी व्याख्या ठीक नहीं है । तथा च “चिदवसानो भोगः” (१०४) इत्येतेनाग्रिमानन्तरसूत्रेण भोगविषयकेण सहास्य संगतिरपि खल्वस्मदर्थ- विधाने भवति साऽपि किलास्मदर्थपोषिकाऽस्ति और जो आगे आने वाला सूत्र है “चिदवसानो भोगः” इस आगे आने वाले सूत्र के साथ जो कि भोग के संबंध में कह रहा है, हमने जो व्याख्या की वो इस सूत्र के साथ संगति करता है । बुद्धिमान लोग इसको देख सकते हैं । इसलिए जो संगति हमारे सूत्र के अर्थ से बैठती है वह भी हमारे अर्थ की पुष्टि करने वाली है ॥ १०३ ॥

स्याद् भोग्यं महदादिकं परन्तु पुरुषस्तु नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावः सन् कथं हि स भोक्ता माना कि महद आदि पदार्थ भोग्य हैं, परंतु पुरुष तो नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव वाला है, फिर वह भोक्ता कैसे हुआ? उच्यते । यतः - क्योंकि

चिदवसानो भोगः ॥ १०४ ॥

सूत्रार्थ= भोग अर्थात् सुख दुःख की अनुभूति चेतन को प्राप्त होती है ।

भाष्य विस्तार = भोग कैसा है भोग को बता रहे हैं, भोग अर्थात् अनुभूति । चिति चेतने पुरुषेऽवसानमवस्थानं यस्य स तथाभूतो भोगो भवति । चिति चेतने पुरुषे चेतन पुरुष=जीवात्मा में अवसान अर्थात् अवस्थान प्राप्ति जिसकी होती है वह भोग ऐसा पदार्थ है जिसकी प्राप्ति चेतन को होती है भोग्यं

स्याद् भोग्यं महदादिकं परन्तु पुरुषस्तु नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावः सन् कथं हि स भोक्ता ?
उच्यते। यतः -

चिदवसानो भोगः ॥ १०४ ॥

(चिदवसानः भोगः) चित्ति चेतने पुरुषेऽवसानमवस्थानं यस्य स तथाभूतो भोगो भवति ।
भोग्यं जडं भवति तस्य भोगो भवति चेतनाय चेतने हि भोगोऽवतिष्ठते चेतनश्च पुरुषस्तस्मात्पुरुषो भोक्ता
॥ १०४ ॥

चेतनः पुरुषो भोक्ता भवेद् यदि स कर्ता स्यात्, यः कर्ता स भोक्तेति प्रसिद्धेः परन्तु पुरुषस्तु
नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावः कथं नाम तस्य कर्तृत्वं पुनः कथं हि कर्तृत्वमन्तरेण तस्य भोगापत्तिरित्यत्रोच्यते
सूत्रद्वयेन -

जडं भवति तस्य भोगो भवति चेतनाय भोग्य वस्तुएँ जड़ होती हैं, इनका भोग होता है चेतन के लिए ।
इसलिए कहा चेतने हि भोगोऽवतिष्ठते भोग चेतन में ही ठहरता है चेतनश्च पुरुषस्तस्मात्पुरुषो भोक्ता चेतन
पुरुष है इसलिए भोक्ता पुरुष हुआ ॥ १०४ ॥

चेतनः पुरुषो भोक्ता भवेद् यदि स कर्ता स्यात् पूर्वपक्षी कहता है कि आप चेतन पुरुष को
भोक्ता कह रहे हैं उसे भोक्ता तब तो माने जब वह कर्ता हो, यः कर्ता स भोक्तेति प्रसिद्धेः जो कर्ता है
वो भोक्ता है ये प्रसिद्ध है परन्तु पुरुषस्तु नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावः कथं नाम तस्य कर्तृत्वं परन्तु
पुरुष तो नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, स्वभाव वाला है फिर कैसे वह कर्ता बनेगा क्योंकि पहले से ही वह
सब से मुक्त है पुनः कथं हि कर्तृत्वमन्तरेण तस्य भोगापत्तिरित्यत्रोच्यते सूत्रद्वयेन जब वह कर्ता ही न
बन पा रहा है फिर भोक्ता कैसे बनेगा, कर्ता बने बिना ही उसे भोग की प्राप्ति कैसे होगी? इस शंका को
अगले दो सूत्रों से समाधान करते हैं -

अकर्तुरपि फलोपभोगोऽन्नाद्यवत् ॥ १०५ ॥

सूत्रार्थ= बिना कर्म किए भी दूसरे के कर्म से उसका कर्म का परिणाम भोगना पड़ता है, पके हुए
भोजन आदि के समान ।

अविवेकाद्वा तत्सिद्धेः कर्तुः फलावगमः ॥ १०६ ॥

सूत्रार्थ= अथवा अविवेक के कारण जीवात्मा अपने आप को कर्ता मान लेता है, जब कर्ता मान लेता
है फिर फल की प्राप्ति होनी चाहिए ।

सूत्रद्वयं सह व्याख्यायते - दोनों सूत्रों की एक साथ व्याख्या करते हैं-

भाष्य विस्तार = कहते हैं कहीं-कहीं संसार में ऐसा भी देखा जाता है कि अकर्तुरपि भवति
फलोपभोक्तृत्वम् जो कर्ता नहीं उसको भी फल भोगते देखा जाता है। कैसे- यथाऽन्नाद्यकर्तृ
भोजनपाककर्तृऽन्नाद्यं पक्वं कृतं भोजनमुपभोगोऽकर्तुः स्वामिनो भवति तद्वत्सम्भवेदेव जैसे अन्न आदि
का बनाने वाला भोजन पकाने वाला उसके द्वारा पकाया गया अन्न उसके स्वामी सेठ के लिए होता है, उसी की

अकर्तुरपि फलोपभोगोऽन्नाद्यवत् ॥ १०५ ॥

अविवेकाद्वा तत्सिद्धेः कर्तुः फलावगमः ॥ १०६ ॥

सूत्रद्वयं सह व्याख्यायते -

(अकर्तुः-अपि फलोपभोगः) अकर्तुरपि भवति फलोपभोक्तृत्वम् (अन्नाद्यवत्) यथाऽन्नाद्यकर्त्रा भोजनपाककर्त्राऽन्नाद्यं पक्वं कृतं भोजनमुपभोगोऽकर्तुः स्वामिनो भवति तद्वत्सम्भवेदेव तस्यापि नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य पुरुषस्य भोग्यं स च तस्य भोक्ता, उक्तं योगभाष्ये व्यासेनापि “क्लेशकर्मादयः....मनसि वर्तमानाः पुरुषे व्यपदिश्यन्ते स हि तत्फलस्य भोक्तेति यथा जयः पराजयो वा योद्धृषु वर्तमानः स्वामिनि व्यपदिश्यते” (योग ०१.२४ व्यासः) (वा) अथवा (अविवेकात् तत्सिद्धेः) अविवेकात् कर्तृत्वसिद्धिः पुरुषस्य, विवेकात् पूर्वं तु स कर्ताऽस्त्येव तस्मात् (कर्तुः

तरह से यहाँ भी संभव है। तस्यापि नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य पुरुषस्य भोग्यं स च तस्य भोक्ता, यद्यपि जीवात्मा नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव वाला है, उसकी भी कोई दूसरी वस्तु भोग्य हो सकती है और वो उसका भोक्ता बन जाए। (यद्यपि जीवात्मा कर्म करता है परंतु वह सीधा सीधा नहीं करता, उसके नौकर इंद्रियाँ जो करण हैं साधन हैं वो करते हैं, इस दृष्टि से इस दृष्टान्त को समझना चाहिए) उक्तं योगभाष्ये व्यासेनापि योगदर्शन के व्यास भाष्य में कहा है कि “क्लेशकर्मादयः....मनसि वर्तमानाः पुरुषे व्यपदिश्यन्ते स हि तत्फलस्य भोक्तेति क्लेश कर्म आदि ये रहती तो मन में हैं और कही जाती हैं पुरुष में स हि तत्फलस्य भोक्तेति क्योंकि वही इन सबका भोक्ता है। यथा जयः पराजयो वा योद्धृषु वर्तमानः स्वामिनि व्यपदिश्यते” दृष्टान्त दिया- युद्ध होता है दो देशों में उनके सैनिकों के बीच और जय-पराजय कही जाती है राजाओं में देशों में। अब दूसरे सूत्र का अर्थ करते हैं (वा) अथवा (अविवेकात् तत्सिद्धेः) अविवेकात् कर्तृत्वसिद्धिः पुरुषस्य अविद्या के कारण पुरुष के कर्तृत्व कि सिद्धि हो जाती है, अविवेक के कारण जीवात्मा अपने आप को कर्ता मान लेता है, विवेकात् पूर्वं तु स कर्ताऽस्त्येव और जब तक उसे विवेक=तत्त्वज्ञान न हो जाए तब तक उसे अविवेक है, जिसके कारण वो स्वयं को कर्ता मान लेता है तस्मात् (कर्तुः फलावगमः) कर्तुः पुरुषस्य फलप्राप्तिर्भोगप्राप्तिर्भवति इसलिए उस कर्ता पुरुष को फल की प्राप्ति होना ठीक ही बात है (एक बड़े व्यापारी को व्यापार में हानि हो गई, जहाज से सामान जा रहा था ५० लाख का, सामान का बीमा नहीं था। दुर्भाग्य से समुद्र में जहाज डूब गया। इस घटना की सूचना मिली कि ५० लाख का नुकसान हो गया, तो शोक मग्न हो गया हृदयघात हो गया। सामान डूबा, सेठ तो नहीं। क्यों शोक किया? अविद्या के कारण। क्या मान लिया कि- ५० लाख उसका ही हिस्सा था उसकी आत्मा का हिस्सा था। यदि तत्त्वज्ञान प्राप्त कर ले तो शोक नहीं होगा) ॥ १०५-१०६ ॥

पुनश्च -

नोभयं च तत्त्वाख्याने ॥ १०७ ॥

सूत्रार्थ= तत्त्वज्ञान हो जाने पर जीवात्मा में सकाम कर्मों का कर्तव्य और लौकिक सुख- दुःख का भोक्तृत्व दोनों ही नहीं रहते ।

फलावगमः) कर्तुः पुरुषस्य फलप्राप्तिर्भोगप्राप्तिर्भवति ॥ १०५-१०६ ॥

पुनश्च -

नोभयं च तत्त्वाख्याने ॥ १०७ ॥

(तत्त्वाख्याने) विवेकात् सति तत्त्वसाक्षात्कारे यथार्थदर्शने (उभयं च न) उभयं कर्तृत्वं भोक्तृत्वं न भवतः, चकाराद् भोग्यं च नावतिष्ठते तत्सम्मुखम् ॥ १०७ ॥

ऐन्द्रियिकप्रत्यक्षेण प्रकृतिपुरुषयोरुपलब्धिः कथं न भवतीति प्रदर्शयितुं सर्वविषयकैन्द्रियिकप्रत्यक्षे बाधकानि परिगणयन्ते -

विषयोऽविषयोऽप्यतिदूरादेर्हानोपादानाभ्यामिन्द्रियस्य ॥ १०८ ॥

भाष्य विस्तार = विवेकात् सति तत्त्वसाक्षात्कारे यथार्थदर्शने (उभयं च न) उभयं कर्तृत्वं भोक्तृत्वं न भवतः, इस सूत्र में बताते हैं विवेकात् सति विवेक हो जाने पर तत्त्वसाक्षात्कारे तत्त्व का साक्षात्कार हो जाने पर यथार्थदर्शने यथार्थ ज्ञान हो जाने पर उभयं दोनों ही कर्तृत्वं भोक्तृत्वं न भवतः, कर्तापन और भोक्तापन दोनों में से कुछ भी नहीं रहता चकाराद् भोग्यं च नावतिष्ठते तत्सम्मुखम् जब उसको तत्त्वज्ञान हो गया कर्तापन और भोक्तापन भी खत्म हो गया, जब उसका मोक्ष हो गया तो उसका भोग ही समाप्त हो गया फिर ये भोग्य जगत उसके सामने नहीं रहेगा ॥ १०७ ॥

ऐन्द्रियिकप्रत्यक्षेण प्रकृतिपुरुषयोरुपलब्धिः कथं न भवतीति प्रदर्शयितुं सर्वविषयकैन्द्रियिकप्रत्यक्षे बाधकानि परिगणयन्ते - ये प्रकृति-जीवात्मा और ईश्वर आँखों से क्यों नहीं दिखाई देता ? इंद्रियों के प्रत्यक्ष से ईश्वर जीव की उपलब्धि क्यों नहीं होती? ऐसा दिखलाने के लिए, समझाने के लिए सब विषयों के जो इंद्रियों से प्रत्यक्ष हैं उनके बाधक गिनाए जाएंगे-

विषयोऽविषयोऽप्यतिदूरादेर्हानोपादानाभ्यामिन्द्रियस्य ॥ १०८ ॥

सूत्रार्थ= विषय होते हुए भी अविषय हो जाता है, क्यों अति दूर होना, निकट होना, सूक्ष्म होना आदि-आदि कारणों से। और इंद्रियों के टूट फुट जाने से, अन्य विषयों का प्रभाव अधिक होने से वस्तु का ज्ञान नहीं हो पाता।

भाष्य विस्तार = विषयो भावात्मकः पदार्थः खल्वविषयोऽनिन्द्रियविषयोऽपि भवति कोई सत्तात्मक पदार्थ है (जैसे ताजमहल । ताजमहल तो है लेकिन दिख नहीं रहा) होते हुए भी वह वस्तु इंद्रियों से नहीं जानी जा रही, क्यों अतिदूरत्वादेर्हानोः अधिक दूर होने आदि के कारण । (जिन कारणों से वस्तु होते हुए भी नहीं दिखाई देती है, उन कारणों को बता रहे हैं ।) आदिनाऽतिसामीप्यात् कोई वस्तु आँख के अधिक समीप हो तो दिखाई नहीं देगी, जैसे- आँखों में लगा हुआ काजल।, व्यवधानात् वस्तु और इंद्रिय के बीच व्यवधान होने से अर्थात् कोई वस्तु पर्दे अथवा दीवार के पीछे हो तो आँखों से दिखाई नहीं देगी, मनसोऽनवस्थानात् मन के अस्थिर होने से (मन इंद्रिय के साथ जुड़ेगा तो ज्ञान होगा और नहीं जुड़ेगा तो ज्ञान नहीं होगा) जैसे कोई वक्ता प्रवचन कर रहा हो और श्रोता का मन कानों से न जुड़कर कहीं और लगा हो तो क्या वक्ता द्वारा प्रवचन

सांख्यदर्शनम्-प्रथमोऽध्यायः

(विषयः-अविषयः-अपि) विषयो भावात्मकः पदार्थः खल्वविषयोऽनिन्द्रियविषयोऽपि भवति (अतिदूरादेः) अतिदूरत्वादेर्हेतोः । आदिनाऽतिसामीप्यात्, व्यवधानात्, मनसोऽनवस्थानात्, सौक्ष्म्यात्, अभिभवाच्च (इन्द्रियस्य हानोपादानाभ्याम्) इन्द्रियस्य हानाद् विकाराद्घातात् तथोपादानात् - उपरिष्ठादादानमुपादानमन्येन्द्रियप्रभावस्तस्माच्चापि विषयोऽविषयो भवति ॥ १०८ ॥

प्रस्तुतेष्वेतेषु बाधकेषु किं बाधकमत्र प्रकृतिपुरुषयोरुपलब्धावित्युच्यते -

सौक्ष्म्यात् तदनुपलब्धिः ॥ १०९ ॥

(तदनुपलब्धिः सौक्ष्म्यात्) तयोः प्रकृतिपुरुषयोरैन्द्रियिकप्रत्यक्षेणानुपलब्धिः सौक्ष्म्यात् तयोः सूक्ष्मत्वाद्धेतोर्भवति । योगिनामध्यात्मप्रत्यक्षेण तु तयोरुपलब्धिर्भवत्येव तथा चोक्तं विज्ञानभिक्षुणाऽपि “योगजधर्मस्य चोत्तेजकतया प्रकृतिपुरुषादीनां प्रत्यक्षप्रमा भवति” ॥ १०९ ॥

किया गया, उसका ज्ञान नहीं होगा, सौक्ष्म्यात् सूक्ष्म होने के कारण भी नहीं दिखाई देता, जैसे-आकर्षण बल, बैक्टीरिया, रेडिएशन आदि, अभिभवाच्च एक वस्तु का दूसरी वस्तु से दब जाना, जैसे रात्री में दीपक जलाने पर उसका उजाला दिखाई देता है किन्तु दिन में दोपहर के समय दीपक का प्रकाश दिखाई नहीं देता, क्योंकि उसका प्रकाश सूर्य के प्रकाश से दब गया । इन्द्रियस्य हानाद् इन्द्रिय के टूट-फुट जाने से भी वस्तु नहीं दिखती, जैसे- अंधे को रूप रंग आदि नहीं दिखता विकाराद्घातात् इन्द्रियों में विकार आने से, और चोट लग जाने से नहीं दिखता । जैसे कान की सुनने की शक्ति कम हो जाना, आँखों से कम दिखना अथवा धुंधला दिखना आदि तथोपादानात्-उपरिष्ठादादानमुपादानमन्येन्द्रियप्रभाव- एक इन्द्रिय से किसी वस्तु का ज्ञान प्राप्त करते समय दूसरी इन्द्रिय का अधिक प्रभावी होने से पहले जिस इन्द्रिय से ज्ञान प्राप्त कर रहे थे उसमें व्यवधान अर्थात् उस ज्ञान को निरंतर नहीं कर पाते । जैसे कोई टीवी सीरियल देख रहा हो, इसी बीच बाहर जोर से धमाके के स्वर से देखना बंद और उस तीव्र स्वर पर ध्यान केन्द्रित हो जाता है इस बीच जो टीवी सीरियल चल रहा था उसका ज्ञान छूट जाता है तस्माच्चापि विषयोऽविषयो भवति इन सब कारणों से भी वस्तु के होने पर भी उसका ज्ञान नहीं हो पाता है ॥ १०८ ॥

प्रस्तुतेष्वेतेषु बाधकेषु किं बाधकमत्र प्रकृतिपुरुषयोरुपलब्धावित्युच्यते-उन प्रस्तुत किए गए बाधकों में से यहाँ प्रकृति और पुरुष का ज्ञान होने में कौन सा बाधक है-

सौक्ष्म्यात् तदनुपलब्धिः ॥ १०९ ॥

सूत्रार्थः=सूक्ष्म होने से प्रकृति और पुरुष की अनुपलब्धि है ।

भाष्य विस्तार=तयोः प्रकृतिपुरुषयोरैन्द्रियिकप्रत्यक्षेणानुपलब्धिः सौक्ष्म्यात् तयोः सूक्ष्मत्वाद्धेतोर्भवति । कहते हैं-उन दोनों की प्रकृति-पुरुष की ऐन्द्रियिक प्रत्यक्ष से आँख आदि से जो ज्ञान नहीं हो रहा है, उसका कारण है सूक्ष्म होने से । योगिनामध्यात्मप्रत्यक्षेण तु तयोरुपलब्धिर्भवत्येव योगियों के आंतरिक प्रत्यक्ष से तो प्रकृति और पुरुष दोनों की उपलब्धि होती है तथा चोक्तं विज्ञानभिक्षुणाऽपि ऐसा विज्ञानभिक्षु ने भी स्वीकार किया था “योगजधर्मस्य चोत्तेजकतया प्रकृतिपुरुषादीनां प्रत्यक्षप्रमा भवति”

कथं कृत्वा प्रकृतिपुरुषयोरुपलब्धिः सौक्ष्म्यमनुसृत्य स्वीक्रियते तयोः सौक्ष्म्ये किं प्रमाणम्। अत्रोच्यते

कार्यदर्शनात् तदुपलब्धिः ॥ ११० ॥

(कार्यदर्शनात्) उपलभ्यमानं जगत् स्थूलं दृश्यते, तस्य कार्यभूतस्य स्थूलजगतो दर्शनादुपलम्भात् (तदुपलब्धिः) तयोः प्रकृतिपुरुषयोरुपलब्धिर्भवति, यतः स्थूलस्य पूर्वरूपं यद्वा स्थूलात् पूर्वसत्ताकं वस्तु भवति सूक्ष्मं तथा च स्थूलत्वविधायकं तद्भोक्तृ वा चेतनं वस्तु सूक्ष्ममेव, तस्मात् तयोः प्रकृतिपुरुषयोः सौक्ष्म्यं स्थूलजगतः कार्यरूपात् स्पष्टीभवति ॥ ११० ॥

अत्र शङ्कते -

वादिविप्रतिपत्तेस्तदसिद्धिरिति चेत् ॥ १११ ॥

योगज धर्म की तीव्रता से (साधक समाधि लगाएगा समाधि से जो उन्नति होगी उसके माध्यम से) प्रकृति पुरुष आदि सूक्ष्म पदार्थों का प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाता है ॥ १०९ ॥

कथं कृत्वा प्रकृतिपुरुषयोरुपलब्धिः सौक्ष्म्यमनुसृत्य स्वीक्रियते तयोः सौक्ष्म्ये किं प्रमाणम्। अत्रोच्यते - प्रकृति पुरुष का जो ज्ञान है सूक्ष्मता के कारण से क्यों आप ऐसा स्वीकार कर रहे हैं? कि प्रकृति पुरुष सूक्ष्म है इसलिए उनका ज्ञान आँख से नहीं हो रहा। उनके सूक्ष्म होने में क्या प्रमाण है? इस का उत्तर देते हैं-

कार्यदर्शनात् तदुपलब्धिः ॥ ११० ॥

सूत्रार्थ= कार्य जगत को देखने से इस बात का ज्ञान होता है कि जगत का जो मूल कारण है प्रकृति वो सूक्ष्म है।

भाष्य विस्तार = उपलभ्यमानं जगत् स्थूलं दृश्यते, स्थूल जगत की वस्तुएँ जो आँखों से दिख रही हैं तस्य कार्यभूतस्य स्थूलजगतो दर्शनादुपलम्भात् स्थूल पदार्थों के कार्य वस्तुओं का आँख से दिखने के कारण तयोः प्रकृतिपुरुषयोरुपलब्धिर्भवति, ये हमको ज्ञान होता है कि प्रकृति पुरुष आँख से क्यों नहीं दिख रहे, क्योंकि वो इनसे सूक्ष्म हैं यतः स्थूलस्य पूर्वरूपं यद्वा स्थूलात् पूर्वसत्ताकं वस्तु भवति सूक्ष्मं क्योंकि जो कोई स्थूल वस्तु होती है वह स्थूल होने से पहले सूक्ष्म होती है- ये नियम है संसार का। तथा च स्थूलत्वविधायकं तद्भोक्तृ वा चेतनं वस्तु सूक्ष्ममेव, उस सूक्ष्म वस्तु को स्थूल बनाने वाला जो ईश्वर है वो अथवा स्थूल वस्तु का भोगने वाला ये जीवात्मा उस स्थूल जगत और प्रकृति से भी अधिक सूक्ष्म है और इसको भोगने वाला है। तस्मात् तयोः प्रकृतिपुरुषयोः सौक्ष्म्यं स्थूलजगतः कार्यरूपात् स्पष्टीभवति इस कारण से प्रकृति पुरुष की सूक्ष्मता इस कार्य रूपी स्थूल जगत से सपष्ट हो जाती है ॥ ११० ॥

अत्र शङ्कते - अब एक शंका उठते हैं-

वादिविप्रतिपत्तेस्तदसिद्धिरिति चेत् ॥ १११ ॥

सूत्रार्थ= शून्यवादी=पूर्वपक्षी के आक्षेप से यदि कहा जाए कि जगत के नष्ट होने से शून्य ही बचेगा।

(वादिविप्रतिपत्तेः) कार्यदर्शनादित्युच्यते कथं हि कार्यदर्शनात् सूक्ष्मस्य कारणस्यानुमानं क्रियते कथं न शून्यस्यानुमानं क्रियेत “ शून्यं तत्त्वं वस्तुधर्मत्वाद् विनाशस्य ” यद्यत्कार्यं वस्तु तत्तद् विनाशधर्मि, अतः कार्यदर्शनात्कारणं शून्यमिति वादिविप्रतिपत्तिस्तस्मात् (तदसिद्धिः) तयोः प्रकृतिपुरुषयोरसिद्धिः (इति चेत्) इति चेदुच्यते तर्हि- ॥ १११ ॥

समाधत्ते -

तथाप्येकतरदृष्ट्याऽन्यतरसिद्धेर्नापलापः ॥ ११२ ॥

(तथा-अपि-एकतरदृष्ट्या) कार्यस्य वस्तुनो विनाशदृष्ट्या शून्यत्वसाधने (अन्यतरसिद्धेः-न-अपलापः) कार्यस्य वस्तुनः सूक्ष्मीभूतकारणसिद्धिर्भवतीति नापलापः, यथा हि कार्यस्य वस्तुनो विनाशो धर्मोऽस्तीत्येकतरदृष्टिस्तथा कार्यस्य वस्तुनः सूक्ष्मीभावप्राप्तिरपि धर्मोऽन्यतरदृष्टिः । वस्तुतस्तु

इसलिए प्रकृति और पुरुष की असिद्धि है, तो-

भाष्य विस्तार = कार्य को देखने से कारण सूक्ष्म सिद्ध होता है, ऐसा आपने कहा- कथं हि कार्यदर्शनात् सूक्ष्मस्य कारणस्यानुमानं क्रियते पूर्वपक्षी कहता है- कार्य को देखकर के कारण के सूक्ष्म होने का अनुमान कैसे आप लगा रहे हैं? कथं न शून्यस्यानुमानं क्रियेत जगत टूटते टूटते शून्य हो जाता हो ऐसा अनुमान क्यों नहीं करते। अपनी बात की पुष्टि हेतु पूर्वपक्षी कहता है “ शून्यं तत्त्वं वस्तुधर्मत्वाद् विनाशस्य ” विनाश प्रत्येक वस्तु का धर्म होने से हर वस्तु अन्त में नष्ट हो जाएगी तो शून्य ही बचेगा। यद्यत्कार्यं वस्तु तत्तद् विनाशधर्मि, संसार में जो जो भी वस्तु बनी है वह सब विनाश धर्म वाली है अतः कार्यदर्शनात्कारणं शून्यमिति वादिविप्रतिपत्तिः इसलिए कार्य के देखने से कारण शून्य है बचेगा, इस तरह का विचार वादी का है, सिद्धांती के विरुद्ध वादी का विचार है। तस्मात् तयोः प्रकृतिपुरुषयोरसिद्धिः इति चेदुच्यते जब शून्य ही बचेगा तो इस प्रकार से प्रकृति और पुरुष दोनों की असिद्धि हो जाएगी। तर्हि- ऐसा यदि पूर्वपक्षी कहे तो- ॥ १११ ॥

समाधत्ते - अब समाधान करते हैं-

तथाप्येकतरदृष्ट्याऽन्यतरसिद्धेर्नापलापः ॥ ११२ ॥

सूत्रार्थ= एक दृष्टि ये है कि स्थूल वस्तु का नाश होगा, फिर भी दूसरी दृष्टि ये है कि वो सूक्ष्म हो करके कारण के रूप में बचे। इसलिए जब सूक्ष्म रूप से कारण बचेगा तो हमारी बात का खंडन नहीं होगा ।

भाष्य विस्तार = कार्यस्य वस्तुनो विनाशदृष्ट्या शून्यत्वसाधने कार्यवस्तु का विनाश हो जाएगा, ऐसा आपने (पूर्वपक्षी ने) कहा । कार्यवस्तु का विनाश हो जाएगा, परंतु यह एक दृष्टि है, इस विनाश की दृष्टि से शून्यत्व को सिद्ध करने का प्रयास किया, इस आपके शून्यत्व की सिद्धि करने में कार्यस्य वस्तुनः सूक्ष्मीभूतकारणसिद्धिर्भवतीति नापलापः इस प्रक्रिया में कार्य वस्तु के सूक्ष्मभूत होने की सिद्धि तो होती ही है, इसका खंडन नहीं हो सकता । अन्त में सूक्ष्म रूप से कारण तो बचेगा ही यथा हि कार्यस्य वस्तुनो विनाशो धर्मोऽस्तीत्येकतरदृष्टिः जैसे की कार्य वस्तु का विनाश धर्म है, वो नष्ट हो जाएगी ये एक पक्ष हुआ। तथा

वस्तुनां विनाशस्तस्य सूक्ष्मीभाव एव कणशो जायते न सर्वथा नाशः। अतः सूक्ष्मीभाव एव तस्य कारणस्वरूपम् ॥ ११२ ॥

अपरञ्च -

त्रिविधविरोधापत्तेश्च ॥ ११३ ॥

(त्रिविधविरोधापत्तेः-च) अथ च वादिपक्षे त्रिविधविरोधोऽप्यापद्यते यतो न हि केवलं विनाश एव कार्यधर्मः किन्तु तस्योत्पत्तिस्थितिनाशास्त्रयो धर्माः सन्ति । त्रिविधधर्मविरोध आपद्यते यदि तस्य कारणं शून्यं स्वीक्रियेत कार्यस्य तु तथाभूतेन कारणेन भवितव्यं यतस्तस्योत्पत्तिस्थितिनाशास्त्रयो धर्मा नियम्येरन् तथाभूतं निमित्तकारणं तु पुरुषविशेष ईश्वरः, उक्तं हि “यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन

कार्यस्य वस्तुनः सूक्ष्मीभावप्राप्तिरपि धर्मोऽन्यतरदृष्टिः वो कार्य वस्तु टूट फुट करके सूक्ष्म भाव को प्राप्त हो जाएगा, ये भी तो दूसरा पक्ष है। वस्तुतस्तु वस्तुनां विनाशस्तस्य सूक्ष्मीभाव एव कणशो जायते न सर्वथा नाशः। वास्तव में तो विनाश का अर्थ है वस्तु का सूक्ष्म रूप हो जाना, वह कणों के रूप में परिवर्तित हो जाती है, उसका सर्वथा अभाव नहीं हो जाता। स्थूल रूप से जगत नष्ट हो जाएगा और उसका सूक्ष्म भूत कारण बचेगा, उसी का नाम प्रकृति है। अतः सूक्ष्मीभाव एव तस्य कारणस्वरूपम् इसलिए जगत के कार्य पदार्थों का सूक्ष्म हो जाना ही कारण स्वरूप है ॥ ११२ ॥

अपरञ्च - यदि आप ऐसा मानते हैं तो आपकी मान्यता में तीन प्रकार का दोष आयेगा ।

त्रिविधविरोधापत्तेश्च ॥ ११३ ॥

सूत्रार्थ= पूर्वपक्षी का सिद्धान्त पक्ष से तीन प्रकार का विरोध होने के कारण शून्यवाद अनुचित है।

भाष्य विस्तार = अथ च वादिपक्षे त्रिविधविरोधोऽप्यापद्यते इस वादी के पक्ष में तीन प्रकार का विरोध आया यतो न हि केवलं विनाश एव कार्यधर्मः किन्तु तस्योत्पत्तिस्थितिनाशास्त्रयो धर्माः सन्ति क्योंकि यहाँ केवल एक का ही कार्यवस्तु का विनाश नहीं होगा, सिद्धांती कह रहा है वस्तु का नष्ट हो जाना क्योंकि विनाश वस्तु का धर्म है, ये तो स्वीकार्य है परंतु उसके तीन धर्म हैं -उत्पत्ति, स्थिति और विनाश। त्रिविधधर्मविरोध आपद्यते यदि तस्य कारणं शून्यं स्वीक्रियेत यदि स्थूल वस्तु का कारण शून्य बचेगा, ऐसा मान लिया जाए तो, जो वस्तु के तीन धर्म हैं उससे विरोध आया। कार्यस्य तु तथाभूतेन कारणेन भवितव्यं यतस्तस्योत्पत्तिस्थितिनाशास्त्रयो धर्मा नियम्येरन् किसी भी कार्य वस्तु का जो कारण होना चाहिए वह उस स्वरूप वाला होना चाहिए जिससे उस कार्य वस्तु का उत्पत्ति स्थिति और विनाश संभव हो, तीनों कार्यों को कर सके ऐसा कारण होना चाहिए । तीनों धर्मों का नियंत्रण-पालन होना चाहिए । तथाभूतं निमित्तकारणं तु पुरुषविशेष ईश्वरः इस प्रकार का जो निमित्त कारण है वो पुरुष विशेष ईश्वर है जो सूक्ष्म कारण द्रव्यों से सृष्टि की उत्पत्ति भी कर लेता है, आगे ठीक ठीक पालन भी करता है और फिर अन्त में इसका विनाश भी कर देता है । तो ऐसे तीनों कार्यों को करने में समर्थ ईश्वर है, उक्तं हि शास्त्र में कहा भी है “यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म” जिससे ये सारे पदार्थ उत्पन्न

जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म” (तै ०३०३.१) “जन्माद्यस्य यतः” (वेदान्त ०१.१.२) अथ च कार्ये सत्त्वरजस्तमांसि त्रयो धर्मा अवतिष्ठन्ते तदा तस्य तथाभूतेनोपादानकारणेन भाव्यं यस्मिन् सत्त्वरजस्तमांसि त्रयो धर्मा विद्येरन् । तथाभूतं च कारणमुपादानं प्रकृतिः, उक्तं हि पूर्वम् “सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः” (सांख्य १.६१) श्रुतौ च “अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः” (श्वेता ० ४.५) प्रकृतिर्हि सत्त्वरजस्तमोमयी, शून्यं तु सर्वधर्मशून्यं तस्मादपि विरोध आपद्यते । तस्मात्कार्यभूतस्य जगतः सत्तात्मकेन कारणेन भवितव्यं न शून्येनासद्भूतेन ॥ ११३ ॥

यतश्च -

नासदुत्पादो नृशृंगवत् ॥ ११४ ॥

(असदुत्पादः-न नृशृंगवत्) असत उत्पादो न भवति नृशृंगवत् किन्तु सत एवोत्पादः,

होते हैं, और उत्पन्न होकर जिसके कारण ये जीवित रहते हैं और अन्त में जिसके अंदर ये लीन हो जाएगा नष्ट हो जाएगा, तुम उसको जानो -वह ब्रह्म है। “जन्माद्यस्य यतः” जिस परमात्मा से इस जगत का जन्मादि हुआ। अथ च कार्ये सत्त्वरजस्तमांसि त्रयो धर्मा अवतिष्ठन्ते और इन सब कार्य वस्तुओं में सत्व-रज-तम ये तीन प्रकार के पदार्थ विद्यमान हैं तदा तस्य तथाभूतेनोपादानकारणेन भाव्यं यस्मिन् सत्त्वरजस्तमांसि त्रयो धर्मा विद्येरन् उस जगत का जो कारण हो वह ऐसा होना चाहिए जिसमें सत्व, रज और तम विद्यमान हो (जैसा कार्य है कारण भी वैसा ही होना चाहिए)। तथाभूतं च कारणमुपादानं प्रकृतिः उस प्रकार का जो कारण है वह प्रकृति है, उक्तं हि पूर्वम् पहले कह ही चुके हैं “सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः” सत्व-रज-तम की साम्यावस्था का नाम प्रकृति है। श्रुतौ च “अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः” प्रकृतिर्हि सत्त्वरजस्तमोमयी इसलिए इस वचन में भी कहा था कि प्रकृति लाल सफ़ेद काले रंग वाली अर्थात् सत्व रज और तम से युक्त है, शून्यं तु सर्वधर्मशून्यं आपके पक्ष में जो शून्य है वह तो सभी धर्मों=पदार्थों को शून्य बताती है। तस्मादपि विरोध आपद्यते इस कारण से भी आपकी बात में विरोध आता है। तस्मात्कार्यभूतस्य जगतः सत्तात्मकेन कारणेन भवितव्यं न शून्येनासद्भूतेन इसलिए कार्य भूत जो जगत है, इस जगत का कारण सत्तात्मक होना चाहिए, शून्य नहीं होना चाहिए, शून्य से तो कोई वस्तु की उत्पत्ति नहीं होती ॥ ११३ ॥

यतश्च -

नासदुत्पादो नृशृंगवत् ॥ ११४ ॥

सूत्रार्थ= असत से अभाव से किसी वस्तु की उत्पत्ति नहीं हो सकती, जैसे मनुष्य के सींग से कुछ भी नहीं होता।

भाष्य विस्तार = असत उत्पादो न भवति नृशृंगवत्। असत ये पंचमी एक वचन है, असत से अभाव से उत्पादो उत्पत्ति न नहीं भवति होती, दृष्टांत दिया- नृशृङ्गवत् मनुष्य के सींग के समान (जब मनुष्य का सींग ही नहीं होता तो उससे क्या बनेगा)। किन्तु सत एवोत्पादः किन्तु किसी सत्तात्मक वस्तु से ही बनेगा, सदेवोत्पद्यते-उद्भवति-अभिव्यज्यतेऽभिव्यक्तिमाप्नोति नासत्, (किसी सत्तात्मक वस्तु हो वही

सांख्यदर्शनम्-प्रथमोऽध्यायः

सदेवोत्पद्यते-उद्भवति-अभिव्यज्यतेऽभिव्यक्तिमाप्नोति नासत्, तस्मात् सदात्मकतया स्वकारणेऽवतिष्ठते
॥ ११४ ॥

हेतुं प्रयच्छति -

उपादाननियमात् ॥ ११५ ॥

(उपादाननियमात्) उपादाननियमान्नासदुत्पादः । यद्यदुत्पद्यते तत्तदुपादान- नियमात्, यथाभूतं
यस्योत्पद्यमानस्योपादानं तथाभूतं तदुत्पद्यते । मृत्तिकायां मृत्तिकातो वा घटः, तन्तुषु तन्तुभ्यो वा पटः,
इत्युपादाननियमः ॥ ११५ ॥

यतः -

सर्वत्र सर्वदा सर्वासम्भवात् ॥ ११६ ॥

रूपांतरित होके किसी दूसरी वस्तु के रूप में उत्पन्न होगी) उसी सत्तात्मक से ही उत्पन्न हो सकता है, रूपांतरित
होती है अभिव्यक्त होती है, असत् से नहीं होती । तस्मात् सदात्मकतया स्वकारणेऽवतिष्ठते इसलिए वो जो
कार्य हो रहा है वो सत्तात्मक रूप से अपने कारण में छुपा हुआ है, तभी वह कालांतर में प्रकट होता है ॥ ११
४ ॥

हेतुं प्रयच्छति - और हेतु देते हैं-

उपादाननियमात् ॥ ११५ ॥

सूत्रार्थ= किसी भी कार्य वस्तु की उत्पत्ति उसके निर्धारित कारण वस्तु से होती है, इस नियम से ये
सिद्ध होता है कि जगत शून्य से नहीं बना है ।

भाष्य विस्तार = शून्य से कुछ भी नहीं बनता इस बात की सिद्धि के लिए एक और नियम बताया
उपादाननियमान्नासदुत्पादः उत्पत्ति का एक नियम है, असत् से उत्पत्ति हो ही नहीं सकती । यद्यदुत्पद्यते
तत्तदुपादान- नियमात् जो-जो वस्तु उत्पन्न होती है वो उपादान के नियम से होती है, यथाभूतं
यस्योत्पद्यमानस्योपादानं तथाभूतं तदुत्पद्यते उत्पन्न होने वाली वस्तु का जो उपादान कारण है, वह जैसा होगा
वस्तु भी वैसी ही बनेगी । मृत्तिकायां मृत्तिकातो वा घटः मिट्टी से मिट्टी का घड़ा बनेगा, तन्तुषु तन्तुभ्यो वा
पटः, जैसे तन्तु होंगे वैसा वस्त्र बनेगा इत्युपादाननियमः इस प्रकार से ये उपादान का नियम है ॥ ११५ ॥

यतः -

सर्वत्र सर्वदा सर्वासम्भवात् ॥ ११६ ॥

सूत्रार्थ= कहीं पर भी कभी भी कुछ भी उत्पन्न होना संभव न होने से शून्य से जगत नहीं बनता ।

भाष्य विस्तार = सर्वत्र सर्वदा सर्वस्यानुत्पादात् । सब जगह सदैव सब वस्तुएँ उत्पन्न नहीं होती ।
उपादाननियमं तु सर्वत्र सर्वदा सर्ववस्तूनामुत्पादो भवेत् यदि आपकी (पूर्वपक्षी की) मान्यता को मान लें
कि शून्य से ही सब कुछ बन जाता है, जब उपादान का कोई नियम ही न मानें तो फिर तो कहीं भी कोई भी
वस्तु बन जानी चाहिए? पर ऐसा होता नहीं । जब तक उपादान कारण नहीं होगा तब तक कार्य वस्तु नहीं बनेगी,
न च तथा भवति तस्मादुपादाननियमान्नास- दुत्पादः कहीं पर कुछ बनता नहीं, ऐसा नहीं होता इसलिए

सांख्यदर्शनम्-प्रथमोऽध्यायः

(सर्वत्र सर्वदा सर्वाभवात्) सर्वत्र सर्वदा सर्वस्यानुत्पादात् । उपादानानियमे तु सर्वत्र सर्वदा सर्ववस्तूनामुत्पादो भवेत्, न च तथा भवति तस्मादुपादाननियमान्नास- दुत्पादः ॥ ११६ ॥

पुनश्च -

शक्तस्य शक्यकरणात् ॥ ११७ ॥

(शक्तस्य शक्यकरणात्) शक्तस्य शक्यकरणं यच्छक्यं कर्तुं तच्छक्यं शक्तस्यान्तरे पूर्वतो विद्यमानं हि सम्भवति पूर्वतो विद्यमानं शक्यमव्यक्तं सद् वर्तते, तदेवाभिव्यज्यते तस्मान्नासदुत्पादः ॥

उपादान का नियम होने से अभाव से कुछ भी उत्पन्न नहीं होता ॥ ११६ ॥

पुनश्च -

शक्तस्य शक्यकरणात् ॥ ११७ ॥

सूत्रार्थ= जो कारण वस्तु है वो शक्त है, उसी से कार्य की उत्पत्ति संभव है ।

भाष्य विस्तार = शक्तस्य शक्यकरणं यच्छक्यं कर्तुं तच्छक्यं शक्तस्यान्तरे पूर्वतो विद्यमानं हि सम्भवति पूर्वतो विद्यमानं शक्यमव्यक्तं सद् वर्तते एक नियम है शक्तस्य शक्यकरणं जो वस्तु किसी दूसरी वस्तु को उत्पन्न करने में समर्थ है उसी से वो वस्तु बन सकती है (जैसे आटा रोटी को उत्पन्न करने में समर्थ है, आटा वस्त्र को उत्पन्न करने में समर्थ नहीं है) यच्छक्यं कर्तुं तच्छक्यं जो किसी वस्तु को उत्पन्न कर सकता है वही कर सकता है उसको कोई और नहीं कर सकता (धागा रोटी नहीं बना सकता, लेकिन आटा बना सकता है) शक्तस्यान्तरे उस शक्त वस्तु में (आटे में, कारण द्रव्य में) पूर्वतो विद्यमानं हि सम्भवति जो पहले से विद्यमान है (आटे के अंदर रोटी छुपी हुई है) पूर्वतो विद्यमानं शक्यमव्यक्तं सद् वर्तते पहले से विद्यमान वो कार्य वस्तु (रोटी) छुप करके बैठी हुई है तदेवाभिव्यज्यते वही उस कारण द्रव्य से प्रकट हो जाती है तस्मान्नासदुत्पादः इसलिए असत अभाव से किसी वस्तु की उत्पत्ति नहीं होती है ॥ ११७ ॥

नासदुत्पाद इत्यत्रापरो हेतुः - असत से अभाव से कुछ भी नहीं बनता इस विषय में एक और हेतु दे रहे हैं-

कारणभावाच्च ॥ ११८ ॥

सूत्रार्थ= कार्य में कारण द्रव्य के उपलब्ध होने से अभाव से भाव की उत्पत्ति नहीं होती ।

भाष्य विस्तार = अथ च कार्ये कारणभावात् कारणस्योपलम्भात्, और भी कहते हैं कि कार्य में कारण के होने से, कार्य में कारण के उपलब्ध होने से उपलभ्यते हि कार्ये कारणम्, कार्य वस्तु में कारण वस्तु स्पष्ट उपलब्ध है , जैसे कि उदाहरण देते हैं- यथा घटे मृत्तिका पटे तन्तवः । जैसे घड़े में मिट्टी दिखती है, वस्त्र में धागा दिखता है । एवं घटस्य मृत्तिकातः पटस्य तन्तुभ्योऽभेदो विद्यते हि । जब इस दृष्टि से हम देखते हैं कि घड़े में मिट्टी दिखती है और वस्त्र में तन्तु दिख रहा है तो फिर उन दोनों में अभेद दिखाई देता है । एवं कार्ये कारणाभेदात् तथा च कारणे भावो यस्य तथाभूतात् कार्यात् कार्यस्य कारणे भावादव्यक्तरूपेण

११७॥

नासदुत्पाद इत्यत्रापरो हेतुः -

कारणभावाच्च ॥ ११८ ॥

(कारणभावात्-च) अथ च कार्ये कारणभावात् कारणस्योपलम्भात्, उपलभ्यते हि कार्ये कारणम्, यथा घटे मृत्तिका पटे तन्तवः। एवं घटस्य मृत्तिकातः पटस्य तन्तुभ्योऽभेदो विद्यते हि। एवं कार्ये कारणाभेदात् तथा च कारणे भावो यस्य तथाभूतात् कार्यात् कार्यस्य कारणे भावादव्यक्तरूपेण विद्यमानत्वादपि नासदुत्पादः। उक्तं हि वेदे “तुच्छ्येनाश्वपिहितं यदासीत्तन्महिना जायतैकम्” (ऋ ० १.१३९.२) “तद्धेहं तर्ह्यव्याकृतमासीत्” (बृह ० १.४.७) “सदेव सोम्येदमग्र आसीत्” (छन्दो ० ६. २.१) “नासतो विद्यते भावो ०” (गीता २.१६) ॥ ११८ ॥

अत्र शङ्कते -

विद्यमानत्वादपि नासदुत्पादः। एवं इस प्रकार से एवं कार्ये कारणाभेदात् कार्य में कारण का अभेद होने से तथा च और कारणे भावो यस्य कारण में विद्यमान है तथाभूतात् कार्यात् जो उस तरह का ये कार्य कार्यस्य कारणे भावः कार्य कारण में पहले से विद्यमान है अव्यक्तरूपेण विद्यमानत्वादपि सूक्ष्म रूप से छुप करके बैठा हुआ होने से, नासदुत्पादः इस कारण से भी अभाव से कोई उत्पत्ति नहीं होती। उक्तं हि वेदे जैसा कि वेद में भी बताया है “तुच्छ्येनाश्वपिहितं यदासीत्तन्महिना जायतैकम्” तुच्छ रूप से छोटा सा वो आशू नाम प्रकृति अंधकार में ढकी हुई थी वह महतत्त्व के रूप में प्रकट हुई। यहाँ कारण से ही कार्य बना। “तद्धेहं तर्ह्यव्याकृतमासीत्” दूसरा प्रमाण दिया- तब प्रलय अवस्था में ये प्रकृति उस समय बनी हुई नहीं थी। “इदं” कहा कोई वस्तु होगी, तभी तो कहा, शून्य होती तो क्यों कहते? “सदेव सोम्येदमग्र आसीत्” हे सोम्य सृष्टि उत्पत्ति से पूर्व सत्तात्मक कारण प्रकृति थी उसी से ये जगत बना “नासतो विद्यते भावो ०” शून्य से कुछ भी उत्पन्न नहीं हो सकता। इसलिए जो भी उत्पन्न होता है वह सत्तात्मक पदार्थों से ही उत्पन्न होता है ॥ ११८ ॥

अत्र शङ्कते -

भावे भावयोगश्चेन्न वाच्यम् ॥ ११९ ॥

सूत्रार्थ= कारण द्रव्य में यदि कार्य द्रव्य पहले से विद्यमान है तो कार्य द्रव्य की उत्पत्ति व अनुत्पत्ति के संबंध में कुछ नहीं कहना चाहिए।

भाष्य विस्तार = कारणात्मके भावे भावयोगः कार्यात्मकस्य भावस्य योगो विद्यमानत्वं चेत्। अभी पिछले प्रसंग में कहा था की कारण कार्य में छुप के बैठा है (जिससे बनेगी वो कारण जो बनेगी वो कार्य है)। इस पर पूर्वपक्षी शंका उठाता है जो कारणात्मके भावे भावयोगः कारण स्वरूप वाला पदार्थ है उसमें कार्यात्मकस्य भावस्य योगो जो कार्यात्मक वस्तु है रोटी। उसका योग है विद्यमानत्वं चेत्। यदि रोटी आटे में पहले से विद्यमान है, तब प्रश्न उठता है तदा कार्यस्योत्पादानुत्पादविषये न वक्तव्यं यद्वा कार्यमुत्पन्नं

भावे भावयोगश्चेन्न वाच्यम् ॥ ११९ ॥

(भावे भावयोगः-चेत्) कारणात्मके भावे भावयोगः कार्यात्मकस्य भावस्य योगो विद्यमानत्वं चेत् । तदा (न वाच्यम्) कार्यस्योत्पादानुत्पादविषये न वक्तव्यं यद्वा कार्यमुत्पन्नं नोत्पन्नं न वक्तव्यं स्यात् ॥ ११९ ॥

समाधत्ते -

नाभिव्यक्तिनिबन्धनौ व्यवहाराव्यवहारौ ॥ १२० ॥

(न) न युक्तमुक्तम् । यतः (अभिव्यक्तिनिबन्धनौ व्यवहाराव्यवहारौ) कार्यवस्तुनोऽभिव्यक्तिनिमित्तौ तस्योत्पादानुत्पादव्यवहारौ स्तः । गुप्तं सत् तिष्ठति कार्यं यदाऽभिव्यक्ततां

नोत्पन्नं न वक्तव्यं स्यात् यदि कार्य पहले से कारण में विद्यमान है तो फिर उस कार्य की उत्पत्ति और अनुत्पत्ति के विषय में नहीं कहना चाहिए अथवा कार्य उत्पन्न हुआ नहीं उत्पन्न हुआ ये नहीं कहना चाहिए । इस प्रश्न के उत्तर पर सूत्र का अर्थ है ॥ ११९ ॥

समाधत्ते - अब सिद्धांती समाधान करता है-

नाभिव्यक्तिनिबन्धनौ व्यवहाराव्यवहारौ ॥ १२० ॥

सूत्रार्थ= कार्यद्रव्य की अभिव्यक्ति के आधार पर ही उसके प्रयोग का व्यवहार या अव्यवहार होता है, इसलिए पूर्वपक्षी का कथन ठीक नहीं है ।

भाष्य विस्तार = न युक्तमुक्तम् पूर्वपक्षी की युक्ति ठीक नहीं है, उसके विषय में कह रहे हैं - यतः क्योंकि कार्यवस्तुनोऽभिव्यक्तिनिमित्तौ तस्योत्पादानुत्पादव्यवहारौ स्तः । कार्य वस्तु की (रोटी घड़े जो कार्य वस्तु हैं उनकी) अभिव्यक्ति निमित्त वाले (अभिव्यक्ति वाले हैं) उसकी उत्पत्ति या अनुत्पत्ति के जो व्यवहार हैं वो अभिव्यक्ति के कारण से हैं गुप्तं सत् तिष्ठति कार्यं यदाऽभिव्यक्ततां प्राप्नोति प्रकटीभवति तदा तस्योत्पाद इत्युच्यते, गुप्तं सत् तिष्ठति कार्यं वस्तु छुप करके रहता है कार्यं यदाऽभिव्यक्ततां प्राप्नोति प्रकटीभवति जब वह कार्य वस्तु अभिव्यक्त हो जाती है प्रकट हो जाती है तदा तस्योत्पाद इत्युच्यते तब उसकी उत्पत्ति कही जाती है । यदा नाभिव्यक्ततामाप्नोति तदा तस्यानुत्पादः प्रोच्यते जब वह अभिव्यक्त नहीं होती तो उस समय उसका अनुत्पाद (अनुत्पत्ति) कहा जाता है, तिलेषु तैलं सत् पीडनेनाभिव्यज्यते यथा । दृष्टान्त दिया जैसे तिलों में तेल होता है (जब तक तेल नहीं निकला तो कहते हैं कितना तेन निकलोगे) जैसे तेल तिल में छिपा है तब तक उसकी उत्पत्ति नहीं कहते हैं और जब तेल को पिरोते हैं तब तेल निकाल आता है । अभिव्यक्तिमाश्रित्य तस्य प्रयोगव्यवहाराव्यवहारौ च भवतः । अभिव्यक्ति के आधार पर ही उस वस्तु का प्रयोग व्यवहार या अव्यवहार दोनों होते हैं । तस्मान्न दोषः कारणे कार्यस्य गुप्तरूपेण विद्यमानत्वे इसलिए कारण वस्तु में (आटे में) कार्य वस्तु (रोटी) के गुप्त रूप से विद्यमान होने में कोई दोष नहीं है ॥ १२० ॥

अथ च - अब नाश की परिभाषा बताते हैं, नाश क्या होता है?

नाशः कारणलयः ॥ १२१ ॥

सांख्यदर्शनम्-प्रथमोऽध्यायः

प्राप्नोति प्रकटीभवति तदा तस्योत्पाद इत्युच्यते, यदा नाभिव्यक्ततामाप्नोति तदा तस्यानुत्पादः प्रोच्यते, तिलेषु तैलं सत् पीडनेनाभिव्यज्यते यथा । अभिव्यक्तिमाश्रित्य तस्य प्रयोगव्यवहाराव्यवहारौ च भवतः । तस्मान्न दोषः कारणे कार्यस्य गुप्तरूपेण विद्यमानत्वे ॥ १२० ॥

अथ च -

नाशः कारणलयः ॥ १२१ ॥

(नाशः कारणलयः) य एष नाशो विनाशः “शून्यं तत्त्वं भावो विनश्यति वस्तुधर्मत्वाद् विनाशस्य” वचनाद् वादिनाऽवलम्बितः शून्यसाधनाय न स सर्वथा नाशोऽभावो वाऽपितु कारणलयः- कार्य-वस्तुनः कारणेऽन्तर्धानं कार्यस्य सूक्ष्मीभाव एव कारणभावः, अस्मात् पूर्वतः प्रकृतः शून्यवादो निरस्तो विज्ञेयः ॥ १२१ ॥

सूत्रार्थ= व्यक्त हुए कार्य वस्तु का कारण में लीन हो जाना, नाश का अर्थ है ।

भाष्यार्थ= य एष नाशो विनाशः “शून्यं तत्त्वं भावो विनश्यति वस्तुधर्मत्वाद् विनाशस्य” वचनाद् वादिनाऽवलम्बितः शून्यसाधनाय न स सर्वथा नाशोऽभावो वाऽपितु कारणलयः यह जो नाश है विनाश है जो पूर्वपक्षी ने कहा “अन्त में शून्य ही बचेगा अर्थात् वस्तु के धर्म ही विनाश होना है नष्ट होना है” इस वचन से वादी ने नाश की बात का आधार लिया शून्य की सिद्धि के लिए । इस संबंध में सिद्धांती कहता है न स सर्वथा नाशोऽभावो किसी वस्तु का सर्वथा नाश=अभाव नहीं होता, वाऽपितु कारणलयः अपितु वह कारणलय हो जाता है । (जो वस्तु जिस कारण से बनी थी वह टूट-फुट कर उस वस्तु में जाकर मिल जाती है) कार्य-वस्तुनः कारणेऽन्तर्धानं कार्यस्य सूक्ष्मीभाव एव कारणभावः, नाश का अर्थ है कार्य वस्तु का कारण में अन्तर्धान=मिल जाना है कार्य का सूक्ष्मीभाव ही कारण भाव है, सूक्ष्म होकर कारण में लीन हो जाना ही उसका नाश है । अस्मात् पूर्वतः प्रकृतः शून्यवादो निरस्तो विज्ञेयः इस सूत्र से ये समझना चाहिए कि जो पूर्व में प्रकरण से चला आ रहा था शून्यवाद उसका खंडन हो गया ऐसा जानना चाहिए ॥ १२१ ॥

यद्येवं नाशो न सर्वथा नाशोऽभावः किन्त्वभिव्यक्तिं प्राप्तस्य व्यक्तस्य वा कार्यवस्तुनः कारणलयः सूक्ष्मीभावोऽव्यक्तभावः पुनश्च तथैवाव्यक्तस्य वा कार्यवस्तुनः कारणलयः सूक्ष्मीभावोऽव्यक्तभावः पुनश्च तथैवाव्यक्तरूपस्य सूक्ष्मस्य कश्चित् पूर्वः पदार्थः स्यादभिव्यक्तिहेतुस्तस्य चाभिव्यक्तिहेतुरन्यः पर इत्यनवस्थादोषः प्रसज्येत । अत्रोच्यते -पूर्वपक्षी ने एक और प्रश्न उठाया- यदि नाश का अर्थ सर्वथा नाश=अभाव नहीं है, किन्तु जो कार्य वस्तु प्रकट हुई थी, अभिव्यक्ति को प्राप्त हुई थी उन कार्य वस्तुओं का कारण में लय हो जाना सूक्ष्मीभाव हो जाना, ये आपने विनाश का अर्थ बताया । फिर जो वस्तु टूट कर सूक्ष्म हो गयी उस अव्यक्त रूप सूक्ष्म का, उसकी अभिव्यक्ति करने वाला, उससे सूक्ष्म पदार्थ, उसके पीछे कोई और होगा ? (जैसे मकान टूटने से ईंट बचती है उनके टूटने से टुकड़े फिर टुकड़ों के टूटने से रेत बचती है) उसका अभिव्यक्ति करने वाला कोई और दूसरा फिर उसका कोई और दूसरा इस क्रम में अनवस्था दोष आता है । इसका उत्तर देते हैं-

पारम्पर्यतोऽन्वेषणा* बीजाङ्कुरवत् ॥ १२२ ॥

सूत्रार्थ= कार्य कारण की परंपरा से कारण की खोज अंकुर और बीज के समान करनी चाहिए, तब

[यह केवल निजी प्रयोग हेतु, अप्रकाशित, संशोधन अपेक्षित संग्रह है ।]

सांख्यदर्शनम्-प्रथमोऽध्यायः

यद्येवं नाशो न सर्वथा नाशोऽभावः किन्त्वभिव्यक्तिं प्राप्तस्य व्यक्तस्य वा कार्यवस्तुनः कारणलयः सूक्ष्मीभावोऽव्यक्तभावः पुनश्च तथैवाव्यक्तस्य वा कार्यवस्तुनः कारणलयः सूक्ष्मीभावोऽव्यक्तभावः पुनश्च तथैवाव्यक्तरूपस्य सूक्ष्मस्य कश्चित् पूर्वः पदार्थः स्यादभिव्यक्तिहेतुस्तस्य चाभिव्यक्तिहेतुरन्यः पर इत्यनवस्थादोषः प्रसज्येत । अत्रोच्यते -

पारम्पर्यतोऽन्वेषणा * बीजाङ्कुरवत् ॥ १२२ ॥

(पारम्पर्यतः-अन्वेषणा बीजाङ्कुरवत्) परमित्यवरादिदानीन्तनात्परं पुनः परात्परं परात्परमितीत्यं पारम्पर्यं तु प्रारम्भसर्गस्ततः पारम्पर्यतोऽन्वेषणा खलु बीजाङ्कुरवन्मन्तव्या । यथा बीजादङ्कुरोऽभिव्यज्यतेऽङ्कुराच्च पुनर्बीजाभिव्यक्तिरिति परम्परायामादिसर्गे वृक्षा यदा नासन् तदा तेषां बीजशक्त्या भाव्यमेव, यथा तदा बीजं पूर्वमथाङ्कुरः पश्चात् तथैव व्यक्तात् कार्यवस्तुनः

अनवस्था दोष नहीं आया ।

भाष्य विस्तार = परमित्यवरादिदानीन्तनात्परं पुनः परात्परं परात्परमितीत्यं पारम्पर्यं तु प्रारम्भसर्गः परम वह है जो इस समय है हमारे सामने है, उससे पूर्व वाला है उससे और पीछे वाली वस्तु, उससे और पीछे वाली वस्तु इस तरह से क्रम से चलते जाएंगे (सांख्य कि शैली में समझें तो- पंचमहाभूत से पीछे तन्मात्राएँ उससे पीछे अहंकार उससे पीछे महतत्व और उससे पीछे प्रकृति, ये अंतिम ।) तो सृष्टि के आरंभ में पहुँच जाएंगे अर्थात् प्रकृति तक । ततः पारम्पर्यतोऽन्वेषणा खलु बीजाङ्कुरवन्मन्तव्या तो जो प्रकृति अन्त में मिलेगी तो वहाँ से ये जो कारण कार्य की परंपरा है वह बीज और अंकुर के समान माननी चाहिए । यथा बीजादङ्कुरोऽभिव्यज्यतेऽङ्कुराच्च पुनर्बीजाभिव्यक्तिरिति परम्परायामादिसर्गे वृक्षा यदा नासन् तदा तेषां बीजशक्त्या भाव्यमेव, उदाहरण देते हैं- जब बीज से अंकुर के समान, जब बीज से अंकुर प्रकट होता है, तो अंकुर से फिर बीज की अभिव्यक्ति होती है इस प्रकार से परंपरा में जब आदि सर्ग में, सृष्टि के आरंभ में जब वृक्ष नहीं थे, तब उस समय उसकी बीज शक्ति होनी चाहिए । क्योंकि बीज पहले होना चाहिए, क्योंकि वह कारण है । यथा जैसे तदा बीजं पूर्वमथाङ्कुरः पश्चात् जब बीज पहले था अंकुर बाद में था तथैव उसी प्रकार से व्यक्तात् कार्यवस्तुनः ये जो व्यक्त कार्य वस्तु है पूर्वमव्यक्तभावः इससे पहले वो अव्यक्त होना ही चाहिए पुनश्च बीजेऽङ्कुरो-ऽव्यक्तरूपेणोपलभ्यतेतद्वत्कार्यं और जैसे बीज में अंकुर छुपा हुआ रहता ही है, वस्तु खल्वव्यक्तरूपेण कारणपदार्थे विद्यते हीति मन्तव्यम् उसी के समान कार्य वस्तु भी अव्यक्त रूप से कारण पदार्थ में रहती ही है, ऐसा मानना चाहिए । यहाँ भाष्य पूरा हुआ, अब टीकाकारों का खंडन-मंडन-

अत्र सूत्रेऽनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये चायौक्तिकमुक्तं इस सूत्र में अनिरुद्धवृत्ति और विज्ञानभिक्षु भाष्य में अर्थ ठीक नहीं किया यत् “ कार्यस्याभि- व्यक्तेरभिव्यक्तिरन्या ” इति परम्पराऽनवस्थादोषोऽवतारितः वे कहते हैं कि कार्य कि अभिव्यक्ति से अन्य कार्य की अभिव्यक्ति होती है, (ये भविष्य की ओर चल रहे हैं और ब्रह्म मुनि जी भूतकाल की बात कह रहे हैं) इस कार्य वस्तु में पीछे कारण फिर और कारण, कार्य की अभिव्यक्ति के पश्चात् ये परंपरा अनवस्था दोष को उत्पन्न करती है परन्तु न तथा परम्परा-ऽनवस्थाऽऽशंकाऽऽश्रिताऽत्र सूत्रे परंतु उस प्रकार की परंपरा से अनवस्था दोष की आशंका इस सूत्र में नहीं है, किन्त्वत्र सूत्रे तु “ नाशः कारणलयः ” (सां ०१.१२१) इति पूर्वसूत्रतः कार्णपरम्पराऽऽशंका

[यह केवल निजी प्रयोग हेतु, अप्रकाशित, संशोधन अपेक्षित संग्रह है ।]

पूर्वमव्यक्तभावः पुनश्च बीजेऽङ्कुरो-ऽव्यक्तरूपेणोपलभ्यतेतद्वत्कार्यं वस्तु खल्वप्यव्यक्तरूपेण कारणपदार्थे विद्यते हीति मन्तव्यम् ।

अत्र सूत्रेऽनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये चायौक्तिकमुक्तं यत् “कार्यस्याभि- व्यक्तेरभिव्यक्तिरन्या” इति परम्पराऽनवस्थादोषोऽवतारितः परन्तु न तथा परम्परा- ऽनवस्थाऽऽशंकाऽऽश्रिताऽत्र सूत्रे, किन्त्वत्र सूत्रे तु “नाशः कारणलयः” (सां ०१.१२१) इति पूर्वसूत्रतः कारणपरम्पराऽऽशंकापेक्ष्यते यत् कार्याभिव्यक्तिः कारणाद् भवति पुनस्तत्कारणाभिव्यक्तिः कुत इति कारणपरम्पराऽऽशंकायां सूत्रतात्पर्यं तथैव बीजाङ्कुरवत् कारणपरम्परायामुदाहरणं दत्तम् ॥ १२२ ॥

हेत्वन्तरमुच्यते -

उत्पत्तिवद्वाऽदोषः ॥ १२३ ॥

(वा-उत्पत्तिवत्-अदोषः) अथवा स्यादुत्पत्तिवददोषः । यथा चोत्पत्तिवादे कार्यस्योत्पत्तिः कारणाज्जायते कारणात्कार्यमुत्पद्यते तत्रोत्पत्तिकारणस्य पूर्वता सिध्यति तथैवात्राभिव्यक्तिवादेऽपि

पेक्ष्यते किन्तु इस सूत्र में तो “पिछले सूत्र में बताया- नाश का अर्थ है कारण में लय हो जाना” कारण तो पीछे होता है, इसलिए पीछे की ओर चलना चाहिए, यहाँ जो परंपरा बताई वो पीछे की ओर संकेत कर रही है, न कि आगे एक कार्य से दूसरे कार्य की अभिव्यक्ति की। यत् कार्याभिव्यक्तिः कारणाद् भवति क्योंकि कार्य की अभिव्यक्ति कारण से होती है पुनस्तत्कारणाभिव्यक्तिः कुत इति कारणपरम्पराऽऽशंकायां सूत्रतात्पर्यं तो सूत्र का तात्पर्य यहाँ पर था की कार्य की अभिव्यक्ति कारण से होती है उस कारण की अभिव्यक्ति और कारण से होती है तथैव बीजाङ्कुरवत् कारणपरम्परायामुदाहरणं दत्तम् तो उसी प्रकार से बीज और अंकुर का उदाहरण यहाँ पर दिया जैसे बीज कारण है और अंकुर कार्य है, कारण परंपरा की ओर खोज करनी चाहिए न कि कार्य की ओर ॥ १२२ ॥

हेत्वन्तरमुच्यते - और एक कारण बताते हैं-

उत्पत्तिवद्वाऽदोषः ॥ १२३ ॥

सूत्रार्थ= कार्य की उत्पत्ति कारण से होती है, इसे उत्पत्तिवाद कहते हैं, इस प्रकार से कार्य कारण से अभिव्यक्त होता है, इसे अभिव्यक्तिवाद कहते हैं । अभिव्यक्तिवाद उत्पत्तिवाद के समान दोष रहित है ।

भाष्य विस्तार = अथवा स्यादुत्पत्तिवददोषः अथवा इसको ऐसे भी कह सकते हैं कि ‘उत्पत्ति के समान’ इसमें कोई दोष नहीं है। यथा चोत्पत्तिवादे कार्यस्योत्पत्तिः कारणाज्जायते जैसे कहते हैं उत्पत्ति के सिद्धान्त में कार्य की उत्पत्ति कारण से होती है कारणात्कार्यमुत्पद्यते तत्रोत्पत्तिकारणस्य पूर्वता सिध्यति वहाँ पर भी उत्पत्ति कारण की पूर्वता सिद्ध होती है, कारण के बाद कार्य होता है तथैवात्राभिव्यक्तिवादेऽपि कार्यस्याभिव्यक्तिः कारणाद् भवति इसी प्रकार से अभिव्यक्ति के सिद्धान्त में भी कार्य की अभिव्यक्ति कारण से होती है, दोनों जगह नियम समान हैं। यतस्तत्तानभिव्यक्तं सत् तद् वर्तते क्योंकि कारण में छिपा हुआ रहता हुआ वह पहले से वर्तमान है तदनभिव्यक्तस्वरूपवत् कारणं भवति जो कार्य द्रव्य है वो

कार्यस्याभिव्यक्तिः कारणाद् भवति यतस्तत्तानभिव्यक्तं सत् तद् वर्तते तदनभिव्यक्तस्वरूपवत् कार्यं भवति । तस्मान्न दोषः ॥ १२३ ॥

भवतु यदभिव्यक्तं तत्कार्यं यस्मादभिव्यज्यते तत्कारणं तथापि कार्यस्य विशिष्टं स्वरूपं किं यतस्तज्ज्ञानं सौगम्येन स्यादित्याकांक्षायामुच्यते -

हेतुमदनित्यं * सक्रियमनेकमाश्रितं लिंगम् ॥ १२४ ॥

(लिंगम्) लिङ्ग्यतेऽनुमीयते कारणमनेनेति लिंगकार्यम् । तच्च (हेतुमत्-अनित्यं सक्रियम्, अनेकम्, आश्रितम्) हेतुमत् कारणवत् सहेतुकं कारणान्वयि तथा निमित्तवच्च कस्मै चित्रिमित्ताय कृतं भोगार्थमिति यावत्, अनित्यं नश्वरं सक्रियं क्रियया निष्पद्यमानं निमित्तकारणेन चेतनेन तत्कारणे जडे प्रसार्यमाणया क्रियया निष्पद्यमानमथ च विकाररूपया क्रियया सततं युक्तम्, अनेकं कालभेदाद्

अनभिव्यक्त स्वरूप वाला कारण में होता है । तस्मान्न दोषः इसलिए कोई दोष नहीं है ॥ १२३ ॥

भवतु यदभिव्यक्तं तत्कार्यं यस्मादभिव्यज्यते तत्कारणं तथापि कार्यस्य विशिष्टं स्वरूपं किं यतस्तज्ज्ञानं सौगम्येन स्यादित्याकांक्षायामुच्यते - जो अभिव्यक्त होता है प्रकट होता है वह कार्य वस्तु है । जिससे वह प्रकट हुआ वह कारण है, प्रश्न यह है कि- कार्य का विशेष स्वरूप क्या है? जिससे कि उस कार्य का ज्ञान सरलता से हो सके? इस प्रश्न के उत्तर में कहते हैं-

हेतुमदनित्यं * सक्रियमनेकमाश्रितं लिंगम् ॥ १२४ ॥

सूत्रार्थ= कार्य किसी कारण से पैदा होता है और किसी प्रयोजन की सिद्धि करता है, वह सदा नहीं रहेगा नष्ट हो जाएगा, वह क्रिया से पैदा होगा और विकार रूप क्रिया सतत चलती रहेगी, संख्या में अनेक होगा, और अपने कारण द्रव्य के आधार पर कार्य टिकेगा । इतनी सारी विशेषताएँ जिसमें हों वो कार्य है ।

भाष्य विस्तार = लिङ्ग्यतेऽनुमीयते कारणमनेनेति लिंगं कार्यम् लिंग को कारण क्यों कहते हैं- इसके द्वारा कारण अनुमानित किया जाता है, इसलिए इसे लिंग कहा । तत च बो जो लिंग=कार्य है वह कैसा- कैसा है हेतुमत् कारणवत् सहेतुकं कारणान्वयि तथा निमित्तवच्च कस्मै चित्रिमित्ताय कृतं भोगार्थमिति यावत्, 'हेतुमत्' की व्याख्या कर रहे हैं- किसी कारण से पैदा हुआ (कार्य किसी कारण से उत्पन्न हुआ) वह कारण सहित होना चाहिए, कारण उसके साथ होना चाहिए और वह किसी निमित्त वाला है वह जो कार्य वस्तु है वह किसी प्रयोजन के लिए निमित्त के लिए बनाई जाती है । सूत्र में कार्य की दूसरी विशेषता बताई अनित्यं नश्वरं कार्य हमेशा अनित्य ही होगा क्योंकि वह उत्पन्न हुआ है और जो उत्पन्न होता है वह नष्ट होता है सक्रियं क्रियया निष्पद्यमानं निमित्तकारणेन चेतनेन तत्कारणे जडे प्रसार्यमाणया क्रियया निष्पद्यमानम ये 'सक्रियं' की व्याख्या चल रही है, सक्रियं का अर्थ है क्रियाशील होना । किसी क्रिया के करने पर ही पैदा होने वाला (कारण वस्तु में जब तक क्रिया नहीं की जाएगी, तब तक कार्य उत्पन्न नहीं होगा) जो निमित्त कारण है 'पाचक' उस निमित्त कारण (पाचक) के द्वारा, चेतन के द्वारा उसका कारण जो 'आटा' है जड़ वस्तु में उत्पन्न की जाती हुई क्रिया से जो उत्पन्न होता है, वह कार्य है अथ च विकाररूपया क्रियया सततं युक्तम्, और उसमें विकार रूपी क्रिया सदैव=सतत रूप से चलती रहेगी अनेकं कालभेदाद्,

देशभेदादाश्रयभेदादनेकमनेकसंख्यायुक्तं बहुरूपं वा, आश्रितं स्वकारणेऽवधृतम् ॥ १२४ ॥

लिंगस्य कार्यस्य स्वरूपमुक्तमधुना यस्य कारणस्य कार्यं लिंगतस्माल्लिंगात्तत्कारणं लिङ्ग्यतेऽनुमीयते-इति प्रदर्श्यते -

आञ्जस्यादभेदतो वा गुणसामान्यादेस्तत्सिद्धिः प्रधानव्यपदेशाद्वा ॥ १२५ ॥

(आञ्जस्यात् तत्सिद्धिः) अनायासेन व्यक्तत्वात् स्पष्टत्वात् प्रकटत्वात्, यत् खलु कार्यं वस्तु भवति तत्स्वत एव निजकारणं प्रदर्शयति, यतः कारणवस्तुनः क्रमविशेषे संस्थितिरेव कार्यम् यता वस्त्रे तन्तवः कारणपदार्थास्तानवितानक्रमेणावस्थिता उपलभ्यन्ते तन्तुषु च कार्पासांशवः संग्रथिता उपलभ्यन्ते, घटे मृदंशाश्च स्पष्टाः सन्ति हि। तथैव कार्यरूपाज्जगतोऽप्याञ्जस्यात् कारणभूतायाः प्रकृतेः सिद्धिर्भवति (वा गुणसामान्यादेः-अभेदतः) यद्वा गुणसामान्यादेरभेदतः कार्यकारणसिद्धिर्भवति। यतः

देशभेदादाश्रयभेदादनेकमनेकसंख्यायुक्तं बहुरूपं वा जो कार्यं वस्तु है वो अनेक होती है देश भेद से आश्रय भेद से अनेक असंख्य बहुत संख्या वाले बहुत रूप से होती है, अंतिम विशेषता है आश्रितं स्वकारणेऽवधृतम् कार्य अकेला नहीं टिक सकता उसको कारणद्रव्य का आश्रय चाहिए ॥ १२४ ॥

लिंगस्य कार्यस्य स्वरूपमुक्तमधुना यस्य कारणस्य कार्यं लिंगं तस्माल्लिंगरत्तत्कारणं लिङ्ग्यतेऽनुमीयते-इति प्रदर्श्यते - पिछले सूत्र में लिंग का अर्थात् कार्य का स्वरूप बतलाया अब जिस कारण का कार्य वो लिंग कहलाता है उस लिंग से उसका कारण जाना जाता है, अब इस को बताएँगे कि कार्य से कारण को कैसे पहचाना जाता है-

आञ्जस्यादभेदतो वा गुणसामान्यादेस्तत्सिद्धिः प्रधानव्यपदेशाद्वा ॥ १२५ ॥

सूत्रार्थ= कार्य को देखकर कार्य कारण का ज्ञान हो जाता है, गुणों की समानता अभेद होने से कार्य कारण का ज्ञान होता है, और शास्त्रों में उसका नाम प्रधान है अच्छी प्रकार से जगत को धारण करती है इसलिए प्रकृति कारण द्रव्य का हमको ज्ञान हो जाता है ।

भाष्य विस्तार = अनायासेन व्यक्तत्वात् स्पष्टत्वात् प्रकटत्वात् जो अनायास व्यक्त हो जाता है स्पष्ट हो जाता है प्रकट हो जाता है, यत् खलु कार्यं वस्तु भवति तत्स्वत एव निजकारणं प्रदर्शयति जो कार्य वस्तु होती है वह स्वतः ही अपने कारण को प्रदर्शित कर देती है, यतः कारणवस्तुनः क्रमविशेषे संस्थितिरेव कार्यम् क्योंकि कारण वस्तु का क्रम विशेष में स्थापित कर देना ही कार्य है यता वस्त्रे तन्तवः कारणपदार्थास्तानवितानक्रमेणावस्थिता उपलभ्यन्ते तो जैसे वस्त्र में जो धागे=तन्तु हैं वे तान-वितान (ताने वाने) के क्रम से व्यवस्थित होते हैं तन्तुषु च कार्पासांशवः संग्रथिता उपलभ्यन्ते तन्तु में धागे में कपास के अंश गुँथे हुए होते हैं (कार्य में कारण गुँथा हुआ रहता है), घटे मृदंशाश्च स्पष्टाः सन्ति हि और घड़े में मिट्टी के अंश स्पष्ट दिखते ही हैं। तथैव कार्यरूपाज्जगतोऽप्याञ्जस्यात् कारणभूतायाः प्रकृतेः सिद्धिर्भवति उसी प्रकार कार्य रूप जगत को देखकर के प्रकृति का ज्ञान हो जाता है, इस सूत्र में तीन पद्धतियाँ बताई कार्य से कारण को जानने की। उसमें से एक पद्धति पूरी हुई (वा गुणसामान्यादेः-अभेदतः) यद्वा गुणसामान्यादेरभेदतः

“कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः” (वैशेषिक ०२.१.२४) इति न्यायात्, कार्यस्य विशिष्टा अपि गुणा भवन्ति ते तु पूर्वसूत्रे प्रदर्शिताः कार्यस्वरूपप्रसंगे, परन्तु केचन गुणाः कार्ये कारणेन समाना भवन्ति तथाभूतेभ्यः समानगुणेभ्योऽपि कारणमनुमीयते यतः कार्यकारणयोस्तेषां समाना स्थितिः, तथाभूतगुणसामान्यात् कारणानुमानं भवति यथा रक्ततन्तूनां वस्त्रं रक्तं जायते मिष्टस्य रसस्यापि पाको मिष्टो भवति। एवमत्रापि विज्ञेयम्, ते च समानगुणादयो महत्तत्त्वादिकार्यभूते जगति प्रकृतौ चातोऽग्रिमे सूत्रे प्रतिपाद्यन्ते हि “त्रिगुणाचेतनत्वादि द्वयोः” १२६ (प्रधानव्यपदेशात्-वा) वा चार्थे । अथ च प्रधानव्यपदेशादपि प्रकृतिसिद्धिः। प्रधानमिति प्रधीयते प्राधियते प्रारभ्यते व्यक्तिरूपं यस्मात् तत्प्रधानमिति नामव्यपदेशाच्छास्त्रेषु तस्मात् प्रकृतिसिद्धिः, तथा कार्यस्य वस्तुनो भवति प्रकृष्टं धानमाधानमाश्रयो यस्मिन् तत्प्रधानमिति गुणयोगात् प्रकृतिसिद्धिर्भवति ॥ १२५ ॥

कार्यकारणसिद्धिर्भवति अथवा दूसरी पद्धति ये हैं कि कार्य और कारण के गुण समान होते हैं, अभेद होने से कार्य कारण की सिद्धि हो जाती है, जैसे सोना और अंगूठी सोना है कारण और अंगूठी है कार्य। यतः “कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः” इति न्यायात् ये न्याय है सिद्धान्त है कि कारण के गुण कार्य में होंगे ही, कार्यस्य विशिष्टा अपि गुणा भवन्ति कार्य के कुछ अपने भी विशेष गुण होते हैं ते तु पूर्वसूत्रे प्रदर्शिताः कार्यस्वरूपप्रसंगे वे पिछले सूत्र में कार्य रूप के प्रसंग में प्रदर्शित किए जा चुके हैं, परन्तु केचन गुणाः कार्ये कारणेन समाना भवन्ति परन्तु कुछ गुण कार्यो में कारण के समान होते हैं तथाभूतेभ्यः समानगुणेभ्योऽपि कारणमनुमीयते उस प्रकार के जो समान गुण हैं कार्य कारण में उनसे भी अनुमान हो जाता है यतः कार्यकारणयोस्तेषां समाना स्थितिः क्योंकि कार्य और कारण में गुणों की समान स्थिति होती है, तथाभूतगुणसामान्यात् कारणानुमानं भवति तो इस प्रकार से गुणों की समानता के बजह से कारण का अनुमान हो जाता है यथा रक्ततन्तूनां वस्त्रं रक्तं जायते जैसे लाल रंग के धागों से लाल कपड़ा बनता है मिष्टस्य रसस्यापि पाको मिष्टो भवति जैसे मीठे रसीले पदार्थ से मिष्ठान बनता है। एवमत्रापि विज्ञेयम् इस प्रकार से जानना चाहिए, ते च समानगुणादयो महत्तत्त्वादिकार्यभूते जगति प्रकृतौ चातोऽग्रिमे सूत्रे प्रतिपाद्यन्ते हि वे जो समान गुण आदि हैं (कारण और कार्य के) ऐसे ही मूल प्रकृति और जगत के क्या क्या गुण समान हैं ये आगे सूत्र में बताएँगे “त्रिगुणाचेतनत्वादि द्वयोः” १२६ इस सूत्र में गुणों में क्या समानता है ये बताएंगे (प्रधानव्यपदेशात्-वा) अब कारण से कार्य के पहचान की तीसरी पद्धति बताएंगे वा चार्थे यहाँ सूत्र में जो ‘वा’ शब्द है वह ‘च’ अर्थ में है। अथ च प्रधानव्यपदेशादपि प्रकृतिसिद्धिः जो मूल प्रकृति है उसका एक नाम है प्रधान। प्रधानमिति प्रधीयते प्राधियते प्रारभ्यते व्यक्तिरूपं यस्मात् तत्प्रधानमिति प्रधान इसलिए कहते हैं जो किसी अभिव्यक्त वाले पदार्थ को धारण करता है, जिससे प्रकटरूप आरंभ होता है इसलिए वह प्रधान है नामव्यपदेशाच्छास्त्रेषु तस्मात् प्रकृतिसिद्धिः इस प्रकार से शास्त्रों में प्रधान नाम से कथन होने से प्रकृति की सिद्धि होती है क्योंकि वह मूल कारण है, तथा कार्यस्य वस्तुनो भवति प्रकृष्टं धानमाधानमाश्रयो यस्मिन् तत्प्रधानमिति गुणयोगात् प्रकृतिसिद्धिर्भवति इसी प्रकार से कार्य वस्तुओ का होता है प्रकृष्टं धानमाधानमाश्रयो यस्मिन् प्रकृष्ट रूप से धान अर्थात् आश्रय होता है जिसमें (कार्य वस्तु का अच्छी प्रकार से आश्रित होती है जिसमें वह प्रधान है) इस धारण करने के गुणयोगात् प्रकृतिसिद्धिर्भवति गुण के योग से उस

पूर्वोक्तयोः प्रकृतिकार्ययोः -

त्रिगुणाचेतनत्वादि द्वयोः ॥ १२६ ॥

(त्रिगुणाचेतनत्वादि) त्रिगुणत्वं सत्त्वरजस्तमोमयत्वम्, अचेतनत्वं जडत्वम्, आदिशब्देन परार्थत्वं पुरुषार्थत्वं पुरुषप्रयोजनार्थत्वं परिणम्यमानत्वं च (द्वयोः) तयोः प्रकृतिकार्ययोः ॥ १२६ ॥

तत्र त्रिगुणत्वविषयेः -

प्रीत्यप्रीतिविषादाद्यैर्गुणानामन्योऽन्यं वैधर्म्यम् ॥ १२७ ॥

लघ्वादिधर्मैः साधर्म्यं वैधर्म्यं च गुणानाम् ॥ १२८ ॥

अत्र विवेचनम् -

प्रकृति की सिद्धि होती है ॥ १२५ ॥

पूर्वोक्तयोः प्रकृतिकार्ययोः - पहले जो बताए गए प्रकृति कार्य में क्या समानता है, ये बताते हैं-

त्रिगुणाचेतनत्वादि द्वयोः ॥ १२६ ॥

सूत्रार्थ= मूल प्रकृति और उससे बने पदार्थ कार्य द्रव्यों में दोनों में समानता है कि ये तीन गुण वाले हैं और अचेतन हैं जड़ हैं तथा पुरुष का प्रयोजन सिद्ध करने वाले हैं ।

भाष्य विस्तार = मूल प्रकृति और उसके कार्य महतत्त्व से लेकर पंचमहाभूत तक कुछ समानताएं हैं त्रिगुणत्वं तीन गुणों वाला होना सत्त्वरजस्तमोमयत्वम् सत्त्व रज और तम मय होना, अचेतनत्वं जडत्वम् मूल प्रकृति और कार्य पदार्थ दोनों ही अचेतन जड़ हैं, फिर सूत्र में 'आदि' शब्द है उससे क्या क्या अर्थ है आदिशब्देन आदि शब्द से परार्थत्वं परार्थ होना पुरुषार्थत्वं पुरुष के लिए होना पुरुषप्रयोजनार्थत्वं पुरुष के प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए होना परिणम्यमानत्वं च और इनमें परिणाम होते रहना परिवर्तन होते रहना , ये दोनों में समान हैं। तयोः प्रकृतिकार्ययोः उन दोनों प्रकृति और कार्य में ये समानताएँ हैं ॥ १२६ ॥

तत्र त्रिगुणत्वविषयेः - अब जो तीन गुण हैं सत्त्व-रज-तम इनके विषय में बताएँगे-

प्रीत्यप्रीतिविषादाद्यैर्गुणानामन्योऽन्यं वैधर्म्यम् ॥ १२७ ॥

लघ्वादिधर्मैः साधर्म्यं वैधर्म्यं च गुणानाम् ॥ १२८ ॥

अत्र विवेचनम् - इन सूत्रों की व्याख्या से पूर्व स्वामी ब्रह्म मुनि जी कुछ विवेचना कर रहे हैं-

(उभयत्र सूत्रयोः "वैधर्म्यम्" पदं दृष्ट्वा विज्ञानभिक्षुरुत्तरस्मिन् सूत्रे कथयति "अत्र वैधर्म्यं चेति पाठः प्रामादिक एव" इन दोनों सूत्रों में "वैधर्म्यम्" शब्द को देखकर विज्ञान भिक्षु ने कहा, इस १२८ सूत्र में जो "वैधर्म्यम्" पाठ है, ये प्रमाद वश है स्वामी तुलसीरामस्तूभयत्र सूत्रयोः 'गुणानाम्' पदं दृष्ट्वा लिखति यदुत्तरस्मिन् सूत्रे "गुणानाम् पाठो व्यर्थः स्वामी तुलसीराम जी तो दोनों सूत्रों में 'गुणानाम्' शब्द को देखकर लिखते हैं कि ये 'गुणानाम्' शब्द व्यर्थ है , उभययोः पाठयोः पुनरुक्तिदोषप्रस ३१३ इनका हेतु ये हैं कि दोनों पाठों में पुनरुक्ति दोष प्रसंग है ।" परन्तुत्तरसूत्रस्थस्य "लघ्वादिधर्मैः" इति भेदविषये न

(उभयत्र सूत्रयोः “वैधर्म्यम्” पदं दृष्ट्वा विज्ञानभिक्षुरुत्तरस्मिन् सूत्रे कथयति “अत्र वैधर्म्यं चेति पाठः प्रामादिक एव” स्वामी तुलसीरामस्तूभयत्र सूत्रयोः ‘गुणानाम्’ पदं दृष्ट्वा लिखति यदुत्तरस्मिन् सूत्रे “गुणानाम् पाठो व्यर्थः, उभययोः पाठयोः पुनरुक्तिदोषप्रसंगात् ।” परन्तूत्तरसूत्रस्थस्य “लघ्वादिधर्मैः” इति भेदविषये न केनापि किञ्चिदुक्तम् । अहं तु कथयामि पूर्वस्मिन् सूत्रे “प्रीत्यप्रीतिविषादाद्यैः” परीक्षणीयं परन्तूत्तरस्मिन् सूत्रे “लघ्वादिधर्मैः” निरीक्षणीयं किमपि रहस्यमत्र विद्यते, तत्किमित्युच्यते-आभ्यां सूत्राभ्यां पूर्वं सूत्रमस्ति “त्रिगुणाचेतनत्वादि द्वयोः” अत्र द्वयोः पाठात् कारणं कार्यं च प्रस्तूयेते तस्मात् सूत्रादत्रोभयत्रसूत्रयोस्त्रिगुणत्वविषये विवेचना क्रियते यत् कारणकार्ययोः क्रमस्य प्रस्तुतत्वाद् गुणानां विषये विशिष्टवर्णनाय कारणकार्ययोः क्रमदृष्ट्या द्वे एते सूत्रे विज्ञेये । उभययोः

केनापि किञ्चिदुक्तम् परंतु १२८ वे सूत्र में जो विध्यमान ‘लघ्वादिधर्मैः’ जो शब्द है इसको देखकर के भेद के विषय में किसी ने कुछ नहीं कहा । अहं तु कथयामि ब्रह्ममुनि जी कहते हैं मैं तो ऐसा कहता हूँ पूर्वस्मिन् सूत्रे “प्रीत्यप्रीतिविषादाद्यैः” परीक्षणीयं परन्तूत्तरस्मिन् सूत्रे “लघ्वादिधर्मैः” निरीक्षणीयं किमपि रहस्यमत्र विद्यते पूर्व सूत्र में “प्रीत्यप्रीतिविषादाद्यैः” इन शब्दों के द्वारा कुछ परीक्षा करनी चाहिए, सत्त्व रज तम की परीक्षा प्रीति अप्रीति और आविषाद इन शब्दों से करनी चाहिए परंतु अगले सूत्र १२८ वें में लघु आदि धर्मों के द्वारा परीक्षण निरीक्षण करना चाहिए, कहीं उनमें साधर्म्य हैं कहीं वैधर्म्य है, ऐसा दो बार दिया सूत्र में तो इसमें कुछ न कुछ रहस्य है तत्किमित्युच्यते वो रहस्य क्या है? इसे बताते हैं -आभ्यां सूत्राभ्यां पूर्वं सूत्रमस्ति “त्रिगुणाचेतनत्वादि द्वयोः” अत्र द्वयोः पाठात् कारणं कार्यं च प्रस्तूयेते इन दोनों सूत्रों से पिछला सूत्र १२६ है इस सूत्र में द्वयों “पाठ से कार्य और कारण का प्रस्तुति करण है तस्मात् सूत्रादत्रोभयत्रसूत्रयोस्त्रिगुणत्वविषये विवेचना क्रियते पिछले सूत्रों को ध्यान में रख कर के इन दो सूत्रों में तीनों गुणों के विषय में विवेचना की जाती है यत् कारणकार्ययोः क्रमस्य प्रस्तुतत्वाद् गुणानां विषये विशिष्टवर्णनाय कारणकार्ययोः क्रमदृष्ट्या द्वे एते सूत्रे विज्ञेये कार्य और कारण के क्रम के प्रस्तुत होने से गुणों के विषय में विशेष वर्णन करने के लिए कारण और कार्य के के क्रम की दृष्टि से ये दो सूत्र विद्यमान हैं, ऐसा जानना चाहिए । उभययोः सूत्रयोर्भिन्नभिन्नविषयप्रतिपादनाद् यद्वा पृथक्पृथगधिकरणत्वान्नात्र पुनरुक्तिशोत्थापनीया इनके द्वारा पुनरुक्ति दोष की शंका नहीं उठानी चाहिए क्योंकि दोनों के विषय में भिन्न भिन्न विषय का प्रतिपादन किया गया है, अथवा अलग-अलग अधिकरण=विषय होने से इसलिए गुणों के दोषों की शंका नहीं उठानी चाहिए । पूर्वस्मिन् सूत्रे कारणगुणाः प्रदर्शयन्ते प्रीत्यादयोऽथोत्तरस्मिन् सूत्रे कार्यगुणा विवेच्यन्ते लघ्वादयः पहले सूत्र में तो कारण के गुणों को जैसे सत्त्व प्रीति वाला है, रज अप्रीति वाला है और तम विषाद वाला है, को प्रदर्शित किया और अगले सूत्र में कार्य के लघु आदि गुण बतलाए जा रहे हैं । अत्रोत्तरसूत्रे ‘गुणानाम्’ पाठस्य स्थाने ‘गुणवताम्’ पाठः स्यात् ब्रह्म मुनि जी कहते हैं जो अगला सूत्र है उसमें जो ‘गुणानाम्’ पाठ है उसके स्थान पर ‘गुणवताम्’ पाठ होना चाहिए, तो अर्थ की संगति बहुत अच्छी बनेगी । कार्यैस्तु गुणवद्विर्भावितव्यम् जो कार्य पदार्थ हैं वे तो गुणों वाले होने चाहिए, प्रकृतिर्न गुणवती किन्तु गुणमयी और मूल प्रकृति गुण वाली नहीं अपितु गुण ही है, उक्तं हि “सत्त्वादीनामतद्धर्मत्वं तदरूपत्वात्” (सांख्य ६.३९) सांख्य के ६ अध्याय के सूत्र को यहाँ प्रमाण के रूप में उद्धृत किया है कि सत्त्व रज तम का नाम ही प्रकृति है, इस बात को इस सूत्र में कहा । ‘गुणानाम्’ पाठस्तु लिपिप्रमादतो भवेत् ये जो १२८ वे सूत्र में ‘गुणानाम्’ शब्द है वो

सांख्यदर्शनम्-प्रथमोऽध्यायः

सूत्रयोर्भिन्नभिन्नविषयप्रतिपादनाद् यद्वा पृथक्पृथक्गधिकरणत्वान्नात्र पुनरुक्तिशङ्कोत्थापनीया । पूर्वस्मिन् सूत्रे कारणगुणाः प्रदर्श्यन्ते प्रतीत्यादयोऽथोत्तरस्मिन् सूत्रे कार्यगुणा विवेच्यन्ते लघ्वादयः । अत्रोत्तरसूत्रे 'गुणानाम्' पाठस्य स्थाने 'गुणवताम्' पाठः स्यात् । कार्यस्तु गुणवद्भिर्भूतव्यम्, प्रकृतिर्न गुणवती किन्तु गुणमयी, उक्तं हि "सत्त्वादीनामतद्धर्मत्वं तद्रूपत्वात्" (सांख्य ६.३९) । 'गुणानाम्' पाठस्तु लिपिप्रमादतो भवेत् । तस्माददोषोऽस्त्युत्तरसूत्रे कार्यगुणविचारप्रसंगात् । अधुना सूत्रार्थ उपस्थाप्यते ।

तत्र प्रथमं सूत्रं कारणगुणविषयकम् -

प्रीत्यप्रीतिविषादाद्यैर्गुणानामन्योऽन्यं वैधर्म्यम् ॥ १२७ ॥

(गुणानां प्रीत्यप्रीतिविषादाद्यैः) सत्त्वरजस्तमसां गुणानां कारणरूपाणां गुणानां केवलगुणानां प्रीतिः प्रसन्नताऽप्रीतिरप्रसन्नता विषादो मोहः, आदिशब्देन लघुत्वचलत्व- गुरुत्वानि लक्ष्यन्ते । मनुस्मृतौ यथा -

लेखक के प्रमाद से ऐसा हो गया । तस्माददोषोऽस्त्युत्तरसूत्रे कार्यगुणविचारप्रस ३११ इसलिए उत्तर सूत्र में कोई दोष नहीं है, कार्य वस्तुओं का विचार बताया गया होने से । अधुना सूत्रार्थ उपस्थाप्यते अब सूत्र की व्याख्या करते हैं ।

तत्र प्रथमं सूत्रं कारणगुणविषयकम् - यहाँ जो पहला सूत्र है वो कारण के गुणों के विषय में है-

प्रीत्यप्रीतिविषादाद्यैर्गुणानामन्योऽन्यं वैधर्म्यम् ॥ १२७ ॥

सूत्रार्थ= प्रीति अप्रीति विषाद आदि विशेषताओं के माध्यम से सत्व रज तम इन गुणों में एक दूसरे की अपेक्षा से भिन्नता है । और आदि शब्द से लघुता, चंचलता और भारी होना, इस प्रकार से इनमें भिन्नता पाई जाती है ।

भाष्य विस्तार = सत्त्वरजस्तमसां गुणानां कारणरूपाणां गुणानां केवलगुणानां प्रीतिः प्रसन्नताऽप्रीतिरप्रसन्नता विषादो मोहः सत्व रज तम की आपस में विशेषताएँ क्या है तीनों में अन्योन्य वैधर्म्य है=आपस में विरुद्धता है, सत्व रज तम तीनों गुणों के जो कि कारण गुण हैं, केवल मूल रूप से गुण हैं । सत्व में है प्रीति अर्थात् प्रसन्नता । सुख देता है, खुशी, आनंद देता है । दूसरा है रजोगुण । वह अप्रसन्नता दुःख, क्रोध, चंचलता, स्वार्थ कि भावना, पर द्रव्य के लेने के विचार आते हैं, और तीसरा है विषाद । वह पागल पन, मूर्खता, नशा, आलस्य, प्रमाद, अति स्वार्थ वाला होता है, आदिशब्देन लघुत्वचलत्व- गुरुत्वानि लक्ष्यन्ते सूत्र में जो 'आदि' शब्द है उससे लघुत्व= छोटा सूक्ष्म, चलत्व=चंचलता और गुरुत्व=भारीपन ये समझना चाहिए । मनुस्मृतौ यथा - जैसा मनुस्मृति में भी प्रमाण देते हैं-

तत्र यत्प्रीतिसंयुक्तं किञ्चिदात्मनि लक्षयेत् । जब मन-आत्मा में प्रीति से संयुक्त अनुभूतियाँ हों

प्रशान्तमिव शुद्धाभं सत्त्वं तदुपधारयेत् ॥ सुख शांति का अनुभव हो अच्छा लगे, शुद्धता रहे तो उसको सत्व का लक्षण समझना चाहिए ।

यत्तु दुःखसमायुक्तमप्रीतिकरमात्मनः । और जब दुःख की अनुभूति हो परेशानी, कष्ट, अच्छा न लगे

तत्र यत्प्रीतिसंयुक्तं किञ्चिदात्मनि लक्षयेत् ।
प्रशान्तमिव शुद्धाभं सत्त्वं तदुपधारयेत् ॥
यत्तु दुःखसमायुक्तमप्रीतिकरमात्मनः ।
तद्रजोऽप्रतिमं विद्यात्सततं हारि देहिनाम् ॥
यत्तु स्यान्मोहसंयुक्तमव्यक्तं विषयात्मकम् ।

अप्रतर्क्यमविज्ञेयं तमस्तदुपधारयेत् ॥ (मनु ०१२.२७-२९)

एतैः प्रीत्यादिभिर्धर्मैः (अन्योऽन्यं वैधर्म्यम्) अन्योन्यं परस्परं वैधर्म्यं भिन्नत्वमस्ति कारणगुणेषु केवलगुणेषु साधर्म्यं नावतिष्ठते यतः सति साधर्म्यं न गुणाभिव्यक्तिः किन्तु प्रकृतिरेव “सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः” (सां ०१.६१) गुणानां वैधर्म्यमेव सृष्टिकारणम् “साम्यवैधर्म्याभ्यां कार्यद्वयम्” (सांख्य ०६.४२) । प्रकृतौ तु गुणा अनुद्धताः, महत्तत्त्वे गुणा उद्भवन्ति सत्त्वमुखेन, अअहंकारे

तयत्तु दुःखसमायुक्तमप्रीतिकरमात्मनः ।

तद्रजोऽप्रतिमं विद्यात्सततं हारि देहिनाम् ॥ जो पसंद न हो जिसमें हमें रुचि न हो, शरीर प्राण धारियों को जो निरंतर परेशान करने वाला हो, चित्त का हरण करने वाला हो तब रजोगुण का प्रभाव समझना चाहिए ॥

यत्तु स्यान्मोहसंयुक्तमव्यक्तं विषयात्मकम् । जब मोह से संयुक्त हों, अज्ञानता से, निर्णय न कर पा रहे हों, खोया-खोया सा, छुपा-छुपा सा, स्तब्ध हो, भोगों में, विषयों में रुचि हो, बुरा करने के विचार हों ।

अप्रतर्क्यमविज्ञेयं तमस्तदुपधारयेत् ॥ जब तर्क समझमें न आए, कुछ समझ न पाएँ तो तम का उभार समझना चाहिए ॥ (मनु ०१२.२७- २९)

एतैः प्रीत्यादिभिर्धर्मैः अन्योन्यं परस्परं वैधर्म्यं भिन्नत्वमस्ति तो इस प्रकार से प्रीति अप्रीति धर्मों के द्वारा इन तीनों गुणों का परस्पर वैधर्म्य अर्थात् भिन्नत्व है, ऐसा समझना चाहिए कारणगुणेषु केवलगुणेषु साधर्म्यं नावतिष्ठते इन तीनों गुणों में कोई साधर्म्य नहीं है यतः सति साधर्म्यं न गुणाभिव्यक्तिः क्योंकि यदि इनमें साधर्म्य होता तो गुणों की अभिव्यक्ति न हो सकेगी, इसलिए भिन्नता रहती है किन्तु प्रकृतिरेव “सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः” किन्तु जब गुणों की भिन्नता नहीं होती समानता होती है प्रकृति रूप तभी होती है गुणानां वैधर्म्यमेव सृष्टिकारणम् गुणों का जो वैधर्म्य वही सृष्टि का कारण है, गुणों की न्यूनाधिकता से ही सृष्टि बनती है “साम्यवैधर्म्याभ्यां कार्यद्वयम्” समता और विषमता के कारण दो कार्य होते हैं, जब गुणों में समता होती है तो प्रलय हो जाती है और जब गुणों में विषमता होती है तो सृष्टि बन जाती है । प्रकृतौ तु गुणा अनुद्धताः जब प्रकृति अवस्था होती है तब गुण अनुभूत रहते हैं प्रकट नहीं होते, महत्तत्त्वे गुणा उद्भवन्ति सत्त्वमुखेन जब प्रकृति से महत्त्व बनता है तब गुण सत्त्व प्रधानता से प्रकट होते हैं, अअहंकारे स्फुरन्ति रजोमाध्यमेन अहंकार में रजोगुण की प्रधानता से प्रकट होते हैं (स्वामी विवेकानंद जी परिव्राजक को ये बात सांख्य सूत्र से संगत नहीं है, इसका तालमेल नहीं बैठा, उनको ये अभीष्ट है की महत्त्व, अहंकार तनमातराएँ आदि सत्त्व गुण प्रधान हैं), तमोभूमिकया पञ्चतन्मात्रेषु पञ्च तनमात्राओं के गुण तमोगुण से प्रकट होते हैं तथेन्द्रियशक्तिषु संगच्छन्ते संसृष्टा भवन्ति नैते गुणाः कारणगुणा भवन्ति तथा इन्द्रिय

स्फुरन्ति रजोमाध्यमेन, तमोभूमिकया पञ्चतन्मात्रेषु तथेन्द्रियशक्तिषु संगच्छन्ते संसृष्टा भवन्ति नैते गुणाः
कारणगुणा भवन्ति ॥ १२७ ॥

अथ कार्यगुणविषयकं सूत्रम् -

लघ्वादिधर्मैः साधर्म्यं वैधर्म्यं च गुणवताम् (गुणानाम्?) ॥ १२८ ॥

(गुणवतां लघ्वादिधर्मैः साधर्म्यं वैधर्म्यं च) गुणवतां सत्त्वरजस्तमस्वतां भूतात्मकानामिन्द्रियात्मकानां कार्याणाम् । उक्तं हि तेषां गुणवत्त्वम् “प्रकाशक्रियास्थिति शीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम्” (योग ०२.१८) तत्रस्थगुणानां वा लघुत्वचलत्वगुरुत्वधर्मैः साधर्म्यं वैधर्म्यं च भवति तत्र सत्त्ववतां परस्परं गुरुत्वधर्मेण साधर्म्यं भवति, पुनः सत्त्ववतां रजस्वद्विस्तमस्वद्विश्च सह चलत्वगुरुत्वधर्माभ्यां तथा रजस्वतां सत्त्ववद्विस्तमस्वद्विश्च सह लघुत्वचलत्वधर्माभ्यां वैधर्म्यं भवति ।

शक्तियों में भी वो गुण संगठित रहते हैं, ये सारे के सारे कारण के गुण नहीं होते, बल्कि ये कार्य द्रव्यों में कहलाते हैं ॥ १२७ ॥

अथ कार्यगुणविषयकं सूत्रम् - अब कार्य गुण को बताने वाला सूत्र है-

लघ्वादिधर्मैः साधर्म्यं वैधर्म्यं च गुणवताम् (गुणानाम्?) ॥ १२८ ॥

सूत्रार्थ= सत्त्व रज तम इन तीन गुणों से जो पदार्थ उत्पन्न हुए, उन गुणों वाले पदार्थों में कहीं साधर्म्य है कहीं वैधर्म्य है ।

भाष्य विस्तार = गुणवतां सत्त्वरजस्तमस्वतां भूतात्मकानामिन्द्रियात्मकानां कार्याणाम् । गुणवतां का अर्थ हुआ गुणों वाले, जो गुणों से उत्पन्न हुए पदार्थ हैं, जो भूत और इंद्रिय स्वरूप वाले कार्य द्रव्य हैं उन सबका । उक्तं हि तेषां गुणवत्त्वम् जैसे कि कहा ही है (ये २३ पदार्थ गुणों वाले हैं) “प्रकाशक्रियास्थिति शीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम्” (योग ० २.१८) तत्रस्थगुणानां वा लघुत्वचलत्वगुरुत्वधर्मैः साधर्म्यं वैधर्म्यं च भवति इन-इन पदार्थों में जो गुण विद्यमान हैं, उन गुणों का लघुत्व, चलत्व और गुरुत्व इन धर्मों के माध्यम से इन पदार्थों में कहीं साधर्म्य होता है तो कहीं वैधर्म्य । तत्र सत्त्ववतां परस्परं लघुत्वधर्मेण साधर्म्यं भवति जो सत्त्व प्रधान हैं उनमें परस्पर लघुत्व धर्म के द्वारा साधर्म्य होता है, जो रजोगुण प्रधान धर्म होंगे उनमें चलत्व धर्म के माध्यम से समानता होगी और जो तमोगुण प्रधान वाले पदार्थ हैं वो नशा भारीपन वाले होते हैं, पुनः सत्त्ववतां रजस्वद्विस्तमस्वद्विश्च सह चलत्वगुरुत्वधर्माभ्यां जो सत्त्व प्रधान पदार्थ हैं उनका रज और तम वाले पदार्थों के साथ विरोध होगा, इस प्रकार से सत्त्व का चलत्व और गुरुत्व के माध्यम से विरोध होगा तथा रजस्वतां सत्त्ववद्विस्तमस्वद्विश्च सह लघुत्वगुरुत्वधर्माभ्यां वैधर्म्यं भवति इसी प्रकार से रजोगुण वाले पदार्थो ५ का लघुत्व और गुरुत्व के माध्यम से सत्त्व और तमोगुण वाले पदार्थों के साथ वैधर्म्य होगा । एकैकगुणस्य प्राधान्येन पदार्थास्तद्वन्तः प्रसिध्यन्ति यद्यपि प्रत्येक वस्तु में सत्त्व रज और तम तीनों विद्यमान हैं, एक अकेले से कोई वस्तु बनती नहीं है, फिर जिस पदार्थ में तीनों होते हुए जो गुण अधिक हो उसी नाम से प्रसिद्ध हो जाएगा । उक्तं हि व्यासेन “एवमेते गुणा इतरेतराश्रयेणोपार्जितसुखदुःखमोहप्रत्ययाः

एकैकगुणस्य प्राधान्येन पदार्थास्तद्वन्तः प्रसिध्यन्ति। उक्तं हि व्यासेन “एवमेते गुणा इतरेतराश्रयेणोपार्जितसुखदुःखमोहप्रत्ययाः सर्वे सर्वरूपा भवन्तीति गुणप्रधानभावकृतस्तेषां विशेष इति” (योग ०२.१५ व्यासः) तथैव गीतायामपि “रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत। रजः सत्त्वं तमश्चैके तमः सत्त्वं रजस्तथा” (गीता २४.१०) सुश्रुते खल्वपि “सत्त्वबहुलमाकाशं रजोबहुलो वायुः सत्त्वरजोबहुलोऽग्निः सत्त्वतमोबहुला आपस्तमोबहुला पृथिवी॥” (सुश्रुत ० शरीरस्थानम्। २.२०) अत्र सांख्येऽपि “ऊर्ध्वं सत्त्वविशाला। तमोविशाला मूलतः। मध्ये रजो विशाला” (सांख्य ०३.४८-५०) “ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्येतिष्ठन्ति राजसाः। जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः॥” (गीता १४.१८) अन्यच्च मनुस्मृतावपि “स्थावराः कृमिकीटाश्च मत्स्याः सर्पाः सकच्छपाः। पशवश्च मृगाश्चैव जघन्या तामसी गतिः॥” (मनु ०१२.४२) तथा “आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः” (गीता १७.७) त्रिविधः सत्त्वरजस्तमोर्धर्मवत्तया। अन्यच्च “आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिर्विवर्धनाः। रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः॥ कट्वम्ललवणात्युष्ण-तीक्ष्णरुक्षविदाहिनः

सर्वे सर्वरूपा भवन्तीति गुणप्रधानभावकृतस्तेषां विशेष इति” जैसे की व्यास जी ने कहा है योगदर्शन में “इस प्रकार से ये गुण एक दूसरे की सहायता से सुख= दुःख और मोह इन तीन अनुभूतियों को कराने वाले सभी पदार्थ सभी रूप वाले होते हैं (क्योंकि सभी में सत्व रज तम हैं सभी सुख दुःख मोह देंगे) फिर भी सब प्रकार की अनुभूतियाँ कराने वाले होते हुए भी उनमें फिर क्या भिन्नता है ? गुणप्रधानभावकृतस्तेषां विशेष इति गौडता और मुख्यता के भाव से उनमें विशेषता रहेगी (योग ०२.१५ व्यासः) तथैव गीतायामपि “रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत। रजः सत्त्वं तमश्चैके तमः सत्त्वं रजस्तथा” गीता में भी कहा कि एक गुण प्रधान होने से दो गौड़ हो जाते हैं। हे भारत! रज तम को दवाकरके सत्व उभर जाता है, और रज सत्व को दवा करके तम उभर जाता है, जो उभर जाता है उसी के नाम से व्यवहार चल पड़ता है (गीता २४.१०) सुश्रुते खल्वपि सुश्रुत ने भी कहा “सत्त्वबहुलमाकाशं आकाश में सत्व गुण की बहुलता है रजोबहुलो वायुः रजोगुण की बहुलता वायु में है क्योंकि वह चंचल है सत्त्वरजोबहुलोऽग्निः अग्नि में सत्व और रज दोनों की प्रधानता है सत्त्वतमोबहुला आपः सत्व और तम की बहुलता जल में है तमोबहुला पृथिवी तमो प्रधान पृथ्वी है इसलिए वह भारी है ॥” (सुश्रुत ० शरीरस्थानम्। २.२०) अत्र सांख्येऽपि सांख्य में भी कहा है “ऊर्ध्वं सत्त्वविशाला सत्व प्रधान जो सृष्टि है वह ऊंचे स्तर की है। तमोविशाला मूलतः जो तमो प्रधान की सृष्टि है वह नीचले स्तर की है। मध्ये रजो विशाला” रजो गुण प्रधान सृष्टि मध्यम स्तर की है (सांख्य ०३.४८-५०) “ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्येतिष्ठन्ति राजसाः। जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः सत्व में स्थित रहने वाले लोग उन्नति करते हैं, शांत सुखी औरो को भी सुख देने वाले होते हैं, राजसिक व्यक्ति मध्यम स्तर का होता है और जघन्य अपराधों में लिप्त मनुष्य वो तामसिक प्रधान है वे नीच गति को जाते हैं ॥” (गीता १४.१८) अन्यच्च मनुस्मृतावपि और फिर मनुस्मृति में भी इसके संदर्भ में कहा है “स्थावराः कृमिकीटाश्च मत्स्याः सर्पाः सकच्छपाः। पशवश्च मृगाश्चैव जघन्या तामसी गतिः जो नीच कर्म करते हैं जो तामसिक वृत्ति के होते हैं वे स्थावर पेड़-पौधे, कीड़े-मकोड़े, मछली, सर्प, कछुआ, गाय, घोड़े, पशु, पक्षी बनते हैं ॥” (मनु ० १२.४२) तथा “आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः” और कहते हैं मनुष्यो को आहार=भोजन भी तीन प्रकार का प्रिय होता है (गीता १७.७) त्रिविधः।

सांख्यदर्शनम्-प्रथमोऽध्यायः

। आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥ यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् । उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्” (गीता १ ७. ८- १ ०) अथान्यो विचारः - पूर्वसूत्रे वर्णिताः “प्रीतिः, अप्रीतिः, विषादः” इत्येते त्रयो धर्मा उत्तरस्मिन् सूत्रे साधर्म्यप्रसङ्गे परित्यक्ताः, कुतः । यतो ह्येषां साधर्म्यप्रसङ्गे मनोविहाय कस्मिंश्चिद्गुणवति पदार्थे भूतात्मके यद्वेन्द्रियात्मके न सम्भवति मनस्येव प्रीतिरप्रीतिर्विषादश्च त्रयोऽपि धर्मा भवन्ति तत्र मनसि तेषां वैधर्म्याद् व्यवहारो जायते तेषां साधर्म्याभाव एव मनसि, तेषां साधर्म्यं तु मनोनिरोधो भवति मनसोऽन्यत्र वस्तुनि प्रीत्यप्रीतिविषादा नोद्भवन्ति तस्मादुत्तरसूत्रे प्रीत्यादीन् धर्मान् विहाय लघुप्रभृतयो धर्मा एव साधर्म्यं स्थापिता वैधर्म्यं तु मनसि तेषां प्रवर्तनात् पूर्वसूत्रेऽन्तर्भूतमेव । अनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये च सूत्रमिदमन्यथार्थापितं विज्ञानभिक्षुभाष्ये तु सत्त्वादीनां गुणानां व्यक्तयः कल्पितास्तत्कल्पनमयुक्तं न सत्त्वादीनां व्यक्तयः स्वतन्त्रावस्थानकाः, आश्रयमाश्रित्यैवा- वतिष्ठन्ते यतः ॥ १ २ ८ ॥

सत्त्वरजस्तमोर्धर्मवत्तया यहाँ त्रिविध से अर्थ है सात्त्विक, राजसिक और तामसिक आहार से है । अन्यच्च “आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिर्वि-वर्धनाः । रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः सात्त्विक लोगों को कैसे आहार पसंद होते हैं- जो आयु को बढ़ाने वाले, सत्व की मात्रा को बढ़ाने वाले, सुख, आरोग्य, बल, प्रीति बढ़ाने वाले हैं । रसीले पदार्थ, चिकनाई वाले, हृदय को बल देने वाले जो आहार हैं वे सात्त्विक मनुष्य करते हैं ॥ कट्वम्ललवणात्युष्ण-तीक्ष्णरुक्षविदाहिनः । आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः कडवे, खट्टे, नमकीन, ज्यादा गरम, रुखा, जलन पैदा करने वाले ये विशेषताएँ रजोगुण वाले भोजन है जो दुःख शोक और रोग को बढ़ाने वाले हैं ॥ यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् । उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्” जो तामसिक लोग होते हैं उनको एक याम बीत जाने वाले अर्थात् वासा भोजन (भोजन बनने के ३- ४ घंटे बाद का खाना पसंद होना) जिसका स्वाद परिवर्तित हो चुका है, गल-सड़ चुका हो, वासी इस तरह का जो हो और दूसरे का झूठा हो, अपवित्र हो इस प्रकार के भोजन तामसिक लोगों को प्रिय होते हैं (गीता १ ७. ८-१०) अथान्यो विचारः अब और विचार कहते हैं - पूर्वसूत्रे वर्णिताः “प्रीतिः, अप्रीतिः, विषादः” इत्येते त्रयो धर्मा उत्तरस्मिन् सूत्रे साधर्म्यप्रसङ्गे परित्यक्ताः, कुतः प्रीति, अप्रीति और विषाद ये जो तीन धर्म पहले सूत्र में बताए थे, जिनके मध्यम से सत्व रज तम की भिन्नता दिखलाई थी । प्रीति अप्रीति और विषाद ये तीन धर्म अगले सूत्र में साधर्म्य के प्रसङ्ग में छोड़ दिए, क्यों? । यतो ह्येषां साधर्म्यप्रसङ्गे मनोविहाय कस्मिंश्चिद्गुणवति पदार्थे भूतात्मके यद्वेन्द्रियात्मके न सम्भवति मनस्येव प्रीतिरप्रीतिर्विषादश्च त्रयोऽपि धर्मा भवन्ति क्योंकि इनका साधर्म्य प्रसङ्ग मन को छोड़कर और किसी भी गुण वाले पदार्थ में भूतात्मक हो या इंद्रिय स्वरूप वाला हो उसमें संभव नहीं होता । तीनों का साधर्म्य=समानता= समरसता=अच्छ नियंत्रण नहीं होती । केवल मन ही एक ऐसा पदार्थ है जहाँ तीनों का तालमेल बैठता है तत्र मनसि तेषां वैधर्म्याद् व्यवहारो जायते वहाँ मन के वैधर्म्य से व्यवहार चलता रहता है तेषां साधर्म्याभाव एव मनसि साधर्म्य तो केवल मन में ही हो पाता है, तेषां साधर्म्यं तु मनोनिरोधो भवति जब इन तीनों का साधर्म्य हो जाता है तो मन का निरोध हो जाता है, और व्यक्ति समाधि को प्राप्त कर लेता है मनसोऽन्यत्र वस्तुनि प्रीत्यप्रीतिविषादा नोद्भवन्ति मन से अन्यत्र भिन्न वस्तु में प्रीति अप्रीति और विषाद ये उत्पन्न नहीं होते (सुख-

सांख्यदर्शनम्-प्रथमोऽध्यायः

कारणकार्यप्रसंगतः कारणगुणानां कार्यगुणानां च साधर्म्यवैधर्म्ये प्रदर्श्य पुनः कार्यकारणविषयो विशेषसम्बन्धज्ञापनायोपस्थाप्यते -

उभयान्यत्वात् कार्यत्वं महदादेर्घटादिवत् ॥ १२९ ॥

(महदादेः कार्यत्वम्) महत्तत्त्वादिकस्य भूतेन्द्रियपर्यन्तस्य वस्तुजातस्य कार्यत्वं विज्ञेयम् (उभयान्यत्वात्) उभयाभ्यां प्रकृतिपुरुषाभ्यामन्यत्वाद्भिन्नत्वात्, (घटादिवत्) यथा घटादयः पदार्थाः कार्यरूपा भोग्या नश्वराश्च सन्ति तद्वत्, पुरुषो भोक्ता पुरुषविशेषश्च परमात्मा कर्ता प्रकृतिश्च नित्या किन्तु तद्भिन्नानि महत्तत्त्वादीनि तस्मात् तानि कार्याणि सन्ति ॥ १२९ ॥

हेत्वन्तराणि -

परिमाणात्, समन्वयात्, शक्तितश्चेति ॥ १३०-१३२ ॥

(परिमाणात्) परिमीयते सङ्कुच्यते यत् तत्परिमाणं सङ्कोचधर्मि तस्मात्

दुःख-मोह की अनुभूति मन के अतिरिक्त नहीं होती) तस्मादुत्तरसूत्रे प्रीत्यादीन् धर्मान् विहाय लघुप्रभृतयो धर्मा एव साधर्म्ये स्थापिता इसलिए १२८ वे सूत्र में प्रीति अप्रीति को छोड़ दिया और लघुता जड़त्व और गुरुत्व इन धर्मों का साधर्म्य में स्थित किया वैधर्म्य तु मनसि तेषां प्रवर्तनात् पूर्वसूत्रेऽन्तर्भूतमेव और जब इनमें वैधर्म्य होता है तो मन में इनकी प्रवृत्ति हो जाने से, पूर्व सूत्र में बताया ही गया था। अनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये च सूत्रमिदमन्यथार्थापितं विज्ञान भिक्षु भाष्य में और अनिरुद्ध वृत्ति में इस सूत्र की व्याख्या अलग ढंग से की गई विज्ञानभिक्षुभाष्ये तु सत्त्वादीनां गुणानां व्यक्तयः कल्पितास्तत्कल्पनमयुक्तं विज्ञान भिक्षु भाष्य में तो सत्व आदि गुणों की वृत्तियाँ=अभिव्यक्तियाँ कल्पित की गई न सत्त्वादीनां व्यक्तयः स्वतन्त्रावस्थानकाः सत्व आदि की कोई अलग अलग वस्तुएँ बनती हों ऐसा दिखता नहीं है, आश्रयमाश्रित्यैवा-वतिष्ठन्ते यतः क्योंकि जो भी कार्य वस्तु बनती है वह अपने आश्रय के आधार पर ही रहती हैं, स्वतंत्र नहीं रहती ॥ १२८ ॥

कारणकार्यप्रसंगतः कारणगुणानां कार्यगुणानां च साधर्म्यवैधर्म्ये प्रदर्श्य पुनः कार्यकारणविषयो विशेषसम्बन्धज्ञापनायोपस्थाप्यते - कारण कार्य के प्रसंग से कारण गुणों का और कार्य द्रव्य के गुणों का साधर्म्य और वैधर्म्य दिखलाकर फिर से कार्य और कारण का विषय उपस्थित किया जाता है, विशेष संबंध बताने के लिए-

उभयान्यत्वात् कार्यत्वं महदादेर्घटादिवत् ॥ १२९ ॥

सूत्रार्थ= महत्त्व आदि जितने भी पदार्थ हैं वे सब कार्य हैं क्योंकि ये पूर्वोक्त दो पदार्थों से भिन्न हैं, घटादि के समान।

भाष्य विस्तार = महत्तत्त्वादिकस्य भूतेन्द्रियपर्यन्तस्य वस्तुजातस्य कार्यत्वं विज्ञेयम् महत्त्व से लेकर भूत इन्द्रियों तक जितने भी पदार्थ हैं इन सबका कार्यपन जानना चाहिए (उभयान्यत्वात्) उभयाभ्यां प्रकृतिपुरुषाभ्यामन्यत्वाद्भिन्नत्वात् क्योंकि ये दोनों प्रकृति और पुरुष (आत्मा और परमात्मा) से भिन्न वस्तु

[यह केवल निजी प्रयोग हेतु, अप्रकाशित, संशोधन अपेक्षित संग्रह है।]

सङ्कोचधर्मित्वात्परिमितत्वात् परिमितियोगत्वात् (समन्वयात्) कारणानुसारेण स्वरूपवत्त्वात् (शक्तिः-
च-इति) कारणे निमित्तकारणे या शक्तिः कार्योत्पादनशक्ति- स्तया किलोत्पद्यमानत्वाच्च महत्तत्त्वादेः
कार्यत्वं सिध्यति-इति कार्यहेतुतायाः कार्यप्रसंगस्य च समाप्तिः ॥ १३०-१३२ ॥

महत्तत्त्वादेः कार्यत्वमन्तरेण -

तद्भाने प्रकृतिः पुरुषो वा ॥ १३३ ॥

(तद्भाने) महत्तत्त्वादेः कार्यत्वविनाशे सति (प्रकृतिः पुरुषः-वा) प्रकृतिपुरुषा- ववतिष्ठेते ।
यद्वा (तद्भाने) महत्तत्त्वादेः कार्यत्वास्वीकारे (प्रकृतिः पुरुषः-वा) महत्तत्त्वादिकं प्रकृतिः पुरुषः वा
स्यात् तस्य प्रकृतित्वं पुरुषत्वमापद्यते ॥ १३२ ॥

पुनः -

है, कार्य वस्तु हैं और अनित्य हैं, यथा घटादयः पदार्थाः कार्यरूपा भोग्या नश्वराश्च सन्ति तद्वत् जैसे घट
आदि पदार्थ कार्य रूप हैं भोग्य हैं और नश्वर हैं। उसी के समान, पुरुषो भोक्ता पुरुषविशेषश्च परमात्मा कर्ता
प्रकृतिश्च नित्या पुरुष= जीवात्मा और पुरुष विशेष= ईश्वर जो सब जगत का कर्ता है और तीसरी वस्तु प्रकृति
ये तीनों नित्य हैं किन्तु तद्भिन्नानि महत्तत्त्वादीनि तस्मात् तानि कार्याणि सन्ति किन्तु महत्त्व आदि जितने
भी पदार्थ हैं वे सब (ईश्वर -जीव -प्रकृति) इनसे भिन्न हैं, वे कार्य कहलाते हैं उत्पन्न किए गए हैं ॥ १२९ ॥

हेत्वन्तराणि - इस विषय में और भी हेतु देते हैं-

परिमाणात्, समन्वयात्, शक्तितश्चेति ॥ १३०-१३२ ॥

सूत्रार्थ= परिमाण वाला होने से फैलने-सिकुड़ने वाला होने से, कार्य का स्वरूप कार्य के अनुरूप
होने से और ईश्वर की शक्ति से उत्पन्न होने से । इन तीन हेतुओं से ये कार्य द्रव्य हैं।

भाष्य विस्तार = परिमीयते सङ्कुच्यते यत् तत्परिमाणं सङ्कोचधर्मि तस्मात्
सङ्कोचधर्मित्वात्परिमितत्वात् परिमितियोगत्वात् ये सब कार्य पदार्थ हैं क्यों हैं? इसमें हेतु दिया परिमाणात्=
परिमीयते सङ्कुच्यते यत् तत्परिमाणं परिमाण उसको कहते हैं जिसका नाप-तौल-माप (लम्बाई चौड़ाई
गोलाई) हो जाती है, तो वह परिमाण धर्म वाला होने से अर्थात् सङ्कोचधर्मि फैलने-सिकुड़ने वाला होने से वो
वस्तु कार्य द्रव्य है तस्मात् इसलिए सङ्कोचधर्मित्वात्परिमितत्वात् फैलने-सिकुड़ने के योग से परिमितियोगत्वात्
वो परिमाण वाला कार्य द्रव्य है। समन्वयात्=कारणानुसारेण स्वरूपवत्त्वात् महत्त्व से लेकर जितने भी
पदार्थ हैं ये समन्वय वाले हैं, उनका स्वरूप कारण के अनुसार हैं शक्तितश्चेति= शक्ति से ये उत्पन्न होते हैं
कारणे निमित्तकारणे या शक्तिः कार्योत्पादनशक्ति- स्तया किलोत्पद्यमानत्वाच्च महत्तत्त्वादेः कार्यत्वं
सिध्यति निमित्त कारण में जो कारण को उत्पन्न करने की शक्ति है उस शक्ति से (ईश्वर की शक्ति से) ये
उत्पन्न होते हैं इसलिए भी महत्त्व आदि कार्य रूप पदार्थ हैं। इति कार्यहेतुतायाः कार्यप्रसंगस्य च समाप्तिः
सूत्र में जो इति शब्द आया है ये इस बात का सूचक है कि यहाँ पर कार्य के हेतु और कार्य के प्रसंग कि चर्चा

तयोरन्यत्वे तुच्छत्वम् ॥ १३४ ॥

(तयोः-अन्यत्वे तुच्छत्वम्) यदि महत्तत्त्वादिकं न विनश्येद् यद्वा न कार्यं स्यात् किन्तु ताभ्यां प्रकृतिपुरुषाभ्यामन्यद् वस्तु भवेत्, तदा तथाभूतस्य वस्तुनस्तुच्छत्वमभावः प्रसज्येत यतो न हि प्रकृतिपुरुषाभ्यामन्यन्नित्यमनश्चरं वस्तु भवितुमर्हति ॥ १३४ ॥

वस्तुतस्तु महत्तत्त्वादिकार्यं प्रकृतिश्च कारणं यतः -

कार्यात् कारणानुमानं तत्साहित्यात् ॥ १३५ ॥

(कार्यात् कारणानुमानम्) कार्यात् कारणस्यानुमानं जायते। कथम् (तत्साहित्यात्) कार्यात् कारणसाहित्यात् कार्यसत्ता भवति, कार्यं खलु कारणं सूक्ष्मं सत् परिपूर्णं तिष्ठति। घटे मृत्तिका पटे तन्तवस्तुन्तुषु कार्पासांशवो यथा। तस्मात् कारणसाहित्यात् कार्यं महत्तत्त्वादिकम् ॥ १३५ ॥

समाप्त होती है ॥ १३०-१३२ ॥-

महत्तत्त्वादेः कार्यत्वमन्तरेण -महत्त्व आदि को कार्य स्वीकार किए बिना क्या होगा? ये बताते हैं-

तद्भाने प्रकृतिः पुरुषो वा ॥ १३३ ॥

सूत्रार्थ= महत्त्व आदि जितने भी पदार्थ हैं जब ये नष्ट हो जाएंगे तब दो ही पदार्थ बचेंगे, प्रकृति और पुरुष।

भाष्य विस्तार = महत्तत्त्वादेः कार्यत्वविनाशे सति प्रकृतिपुरुषा-ववतिष्ठेते महत्त्व आदि के कार्यत्व का नाश हो जाने पर अथवा इनको कार्य न मानने पर फिर दो पदार्थ प्रकृति और पुरुष ही बचेगा। यद्वा महत्तत्त्वादेः कार्यत्वास्वीकारे महत्तत्त्वादिकं प्रकृतिः पुरुषः वा स्यात् तस्य प्रकृतित्वं पुरुषत्वमापद्यते अथवा विकल्प से कहते हैं कि ये भी अर्थ हो सकता है, यदि आप महत्त्व को कार्य रूप नहीं स्वीकारते, तब महत्त्व आदि जो पदार्थ हैं वो या तो प्रकृति माने जाएंगे या पुरुष। जो कि ये किसी प्रमाण से सिद्ध नहीं होते। सूत्र का सार ये है महत्त्व से लेकर पंचमहाभूत तक न तो प्रकृति है और न ही पुरुष। इसलिए महत्त्व आदि को ही कार्य मानना होगा ॥ १३३ ॥

पुनः -

तयोरन्यत्वे तुच्छत्वम् ॥ १३४ ॥

सूत्रार्थ= यदि महत्त्व आदि पदार्थों को कार्य भी न माने और उन दो से अलग भी न मानें तो, तो फिर इनका अभाव ही मानना पड़ेगा। जो कि प्रमाणों से विरुद्ध है। इसलिए कार्य ही मानना चाहिए।

भाष्य विस्तार = यदि महत्तत्त्वादिकं न विनश्येद् यद्वा न कार्यं स्यात् यदि महत्त्व आदि का नाश न हो अथवा उसका कार्य न माना जाए किन्तु ताभ्यां प्रकृतिपुरुषाभ्यामन्यद् वस्तु भवेत्, किन्तु प्रकृति पुरुष से भिन्न अलग वस्तु को मान लिया जाए और उसको कार्य न माना जाए, तब क्या होगा तदा तथाभूतस्य वस्तुनस्तुच्छत्वम- भावः प्रसज्येत तब ऐसे वस्तु का तो अभाव ही मानना होगा यतो न हि

तच्च कारणं प्रकृत्याख्यम् -

अव्यक्तं त्रिगुणाल्लिंगात् ॥ १३६ ॥

(त्रिगुणात्-लिंगात्-अव्यक्तम्) त्रिगुणवतो महत्तत्त्वादेरव्यक्तं सूक्ष्मं सत् तदन्तरे परिपूर्णमनुमातव्यम् ॥ १३६ ॥

तस्मात् -

तत्कार्यतस्तत्सिद्धेर्नापलापः ॥ १३७ ॥

(तत्कार्यतः) अव्यक्तकार्यतः प्रकृतिकार्यतो महत्त्वादेः (तत्सिद्धेः) अव्यक्त-सिद्धेः प्रकृतिसिद्धेः (न-अपलापः) न ह्यपलपनमन्यथाकथनमस्ति ॥ १३७ ॥

अथ पुरुषसिद्धौ -

प्रकृतिपुरुषाभ्यामन्यत्रित्यमनश्चरं वस्तु भवितुमर्हति क्योंकि प्रकृति और पुरुष इन दो से भिन्न वस्तु जो नित्य हो, अनश्चर हो, ऐसी तो कोई है नहीं। कोई प्रमाणों से सिद्ध नहीं हो रही। और ये उन दोनों में से है नहीं महत्व आदि पदार्थ। फिर या तो अभाव मानो या कार्य वस्तु मानों, अभाव मानने से व्यवहार नहीं चलेगा, फिर कार्य वस्तु ही मानना पड़ेगा ॥ १३४ ॥

वस्तुतस्तु महत्तत्त्वादिकार्यं प्रकृतिश्च कारणं यतः - वास्तव में तो महत्त्व आदि जो कार्य हैं और प्रकृति है कारण, क्योंकि-

कार्यात् कारणानुमानं तत्साहित्यात् ॥ १३५ ॥

सूत्रार्थ= कार्य से कारण का अनुमान होता है, क्योंकि कारण कार्य के साथ ही रहता है।

भाष्य विस्तार = कार्यात् कारणस्यानुमानं जायते ये नियम हैं कि कार्य से कारण का अनुमान होता है। कथम् कैसे कार्यात् कारणसाहित्यात् कार्यसत्ता भवति कारण सहित होने से कार्य की सत्ता होती है, कार्ये खलु कारणं सूक्ष्मं सत् परिपूर्णं तिष्ठति कार्य वस्तु में जो कारण है वह सूक्ष्म होकर परिपूर्ण रहता है। घटे मृत्तिका पटे तन्तवस्तुन्तुषु कार्पासांशवो यथा जैसे घड़े में मिट्टी और वस्त्र में तन्तु कपास के अंश साथ-साथ ही रहते हैं। तस्मात् कारणसाहित्यात् कार्यं महत्तत्त्वादिकम् ऐसे ही महत्त्व आदि में सत्त्व रज तम सूक्ष्म रूप में विद्यमान रहते हैं, इसीलिए कार्य से कारण का अनुमान हो जाता है ॥ १३५ ॥

तच्च कारणं प्रकृत्याख्यम् - वो जो कारण है वह प्रकृति नाम वाला है -

अव्यक्तं त्रिगुणाल्लिंगात् ॥ १३६ ॥

सूत्रार्थ= महत्त्व आदि में तीन गुणों की विद्यमानता होने से उसका कोई अव्यक्त कारण है, यह अनुमान होता है।

(त्रिगुणात्-लिंगात्-अव्यक्तम्) त्रिगुणवतो महत्तत्त्वादेरव्यक्तं सूक्ष्मं सत् तदन्तरे

सामान्येन विवादाभावाद् धर्मवन्न साधनम् ॥ १३८ ॥

(सामान्येन विवादाभावाद्-धर्मवत्) अग्रिमसूत्रस्थं 'पुमान्' पदमत्र पुरस्तादुत्कृष्यते सप्तम्यां विपरिणम्य । पुंसि पुरुषे सामान्येन विवादाभावाद् धर्मवद्, यथा धर्मे सामान्येन विवादो न विद्यते सर्वे हि दार्शनिकास्तात्त्विका धर्मं मानवधर्मं मन्यन्ते यदाश्रितं मानवजीवनसाफल्यं भवति, तथैव पुमांसं पुरुषमपि मन्यन्ते, पुरुषमान्यतायां तु सर्वेषां दार्शनिकानामपि मान्यता समाना तथाविधे पुरुषे (साधनं न) साधनं नापेक्ष्यते । परन्तु विशेषमान्यतायां साधनमपेक्ष्यते हि यतः केचन शरीरमेव पुरुषं मन्यन्ते केचिदन्तःकरणमित्यादिविशिष्टमान्यताऽस्ति ॥ १३८ ॥

तत्र पुरुषविषयेऽभीष्टा मान्यता -

शरीरादिव्यतिरिक्तः पुमान् ॥ १३९ ॥

(शरीरादिव्यतिरिक्तः पुमान्) शरीरादिभ्यः शरीरेन्द्रियान्तःकरणेभ्यो भूतात्मकेभ्यः

परिपूर्णमनुमातव्यम् ॥ १३६ ॥

भाष्य विस्तार = त्रिगुणवतो तीन गुणों वाले महत्तत्त्वादेरव्यक्तं महतत्त्व आदि में अव्यक्त सूक्ष्म होती हुई सत् तदन्तरे उनके भीतर परिपूर्णमनुमातव्यम् परिपूर्ण है प्रकृति, इस तरह से अनुमान करना चाहिए ॥ १३६ ॥

तस्मात् -इसलिए

तत्कार्यतस्तत्सिद्धेर्नापलापः ॥ १३७ ॥

सूत्रार्थ= महतत्त्व आदि प्रकृति का कार्य होने से प्रकृति की सिद्धि होती है, इसका खंडन नहीं कर सकते ।

भाष्य विस्तार = अव्यक्तकार्यतः अव्यक्त का जो कार्य है अर्थात् प्रकृतिकार्यतो प्रकृति का जो कार्य है महत्तत्त्वादेः महतत्त्व आदि है उससे अव्यक्त-सिद्धेः अव्यक्त की सिद्धि अर्थात् प्रकृतिसिद्धेः प्रकृति की सिद्धि होती है न ह्यपलपनमन्यथाकथनमस्ति इसलिए इसका खंडन नहीं हो सकता अन्यथा कथन नहीं हो सकता ॥ १३७ ॥

अथ पुरुषसिद्धौ - अब पुरुष की सिद्धि के विषय में कहते हैं-

सामान्येन विवादाभावाद् धर्मवन्न साधनम् ॥ १३८ ॥

सूत्रार्थ= पुरुष की सत्ता के संबंध में मतभेद न होने से पुरुष की सत्ता सिद्ध करने हेतु किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है, धर्म के समान ।

भाष्य विस्तार = अग्रिमसूत्रस्थं 'पुमान्' पदमत्र पुरस्तादुत्कृष्यते सप्तम्यां विपरिणम्य अगले सूत्र १३९ वे में जो पुमान् शब्द है, उसका यहाँ उत्कर्ष कर लेते हैं (अनुवृत्ति का अर्थ पिछले सूत्र से अगले सूत्र में लाना और उत्कर्ष का अर्थ है अगले सूत्र से पिछले सूत्र में लाना) और विभक्ति को बदलकर उसका यहाँ

प्रकृतिपर्यन्तेभ्यश्च भिन्नः पुरुषोऽस्ति । तत्र सामष्टिकः पुरुषविशेष ईश्वरः शरीराभ्यन्तरश्च जीवात्मा पुरुषोऽपि भिन्नः ॥ १३९ ॥

तत्र हेतवः प्रदीयन्ते -

संहतपरार्थत्वात् ॥ १४० ॥

(संहतपरार्थत्वात्) शरीरादयः संहताः सन्ति, संहताश्च न स्वार्थाय भवन्ति तेषां जडत्वाच्छय्यादिवत् किन्तु परार्था एव, तस्माद् यदर्थाः सन्ति शरीरादयः स परस्तेभ्यः शरीरादिभ्यो भिन्न इति प्रथमो हेतुः ॥ १४० ॥

अथापरो हेतुः -

त्रिगुणादिविपर्ययात् ॥ १४१ ॥

सप्तमी में उत्कर्ष करेंगे। पुंसि पुरुषे सामान्येन विवादाभावाद् धर्मवद् पुंसि अर्थात् पुरुष के संबंध में जीवात्मा की सत्ता के संबंध में सामान्य रूप से कोई विवाद नहीं है, जैसे धर्म की सत्ता में कोई झगड़ा विवाद नहीं, धर्म का अस्तित्व है ये सभी मानते हैं, यथा धर्मे सामान्येन विवादो न विद्यते जैसे धर्म के विषय में सामान्य रूप से कोई झगड़ा विवाद नहीं है सर्वे हि दार्शनिकास्तात्त्विका धर्म मानवधर्म मन्यन्ते सभी के सभी दार्शनिक तत्वज्ञानी धर्म को अर्थात् मानव धर्म को मानते हैं यदाश्रितं मानवजीवनसाफल्यं भवति जिस धर्म के आश्रय से मनुष्य जीवन सफल होता है उस धर्म को सभी मानते हैं, तथैव पुमांसं पुरुषमपि मन्यन्ते ऐसे ही सभी दार्शनिक जन पुरुष को भी मानते हैं, पुरुषमान्यतायां तु सर्वेषां दार्शनिकानामपि मान्यता समाना तथाविधे पुरुषे साधनं नापेक्ष्यते पुरुष की मान्यता में तो सभी दार्शनिकों की मान्यता एक समान है, ऐसे स्वरूप वाले पुरुष की सिद्धि में कोई साधन=प्रमाण की सिद्धि की अपेक्षा नहीं है। परन्तु विशेषमान्यतायां साधनमपेक्ष्यते हि परंतु विशेष मान्यता में साधन की अपेक्षा ही है। यतः केचन शरीरमेव पुरुषं मन्यन्ते जैसे कुछ लोग तो शरीर को ही पुरुष मानते हैं केचिदन्तःकरणमित्यादिविशिष्टमान्यताऽस्ति और कुछ लोग अन्तःकरण को ही पुरुष मानते हैं। इत्यादि विशिष्ट मान्यताएँ हैं ॥ १३८ ॥

तत्र पुरुषविषयेऽभीष्टा मान्यता - जो पुरुष के विषय में अभीष्ट सिद्धान्त है सत्य सिद्धान्त है वह यह है-

शरीरादिव्यतिरिक्तः पुमान् ॥ १३९ ॥

सूत्रार्थ= पुरुष शरीर, मन, इंद्रियों से भिन्न सत्ता वाला है।

भाष्यार्थ= शरीरादिभ्यः शरीरेन्द्रियान्तःकरणेभ्यो भूतात्मकेभ्यः प्रकृतिपर्यन्तेभ्यश्च भिन्नः पुरुषोऽस्ति वैदिक सिद्धान्त यह है कि शरीर आदि इंद्रियों और अन्तःकरण से लेकर पंचमहाभूत और प्रकृति पर्यंत जितने भी पदार्थ हैं उन सबसे भिन्न पुरुष है। तत्र सामष्टिकः पुरुषविशेष ईश्वरः शरीराभ्यन्तरश्च जीवात्मा पुरुषोऽपि भिन्नः पुरुष में भी दो भेद है एक सामष्टिक पुरुष विशेष है वह ईश्वर है और दूसरा शरीर के अंदर रहने वाला जीवात्मा नाम का पुरुष है वह उस पुरुष विशेष से भिन्न है ॥ १३९ ॥

सांख्यदर्शनम्-प्रथमोऽध्यायः

(त्रिगुणादिविपर्ययात्) सत्त्वरजस्तमांसि त्रयो गुणाः, आदिशब्देन जडत्वं पुरुषाधीनत्वं च गृह्यते, एतेषां विपर्ययात् तत्र पुरुषे निर्दिष्टधर्माणां विपरीतत्वमभावोऽथ भिन्नधर्माणां चेतनत्वादीनां भावो विद्यते, तस्मात् पुरुषः शरीरादिभ्यो भिन्नः ॥ १४१ ॥

अधिष्ठानाच्चेति ॥ १४२ ॥

(अधिष्ठानात्-च) पुरुषो हि शरीरादिकस्याधिष्ठानमधिष्ठानता तथाऽधिष्ठेयं शरीरादिकं तस्मादपि पुरुषः शरीरादिभ्यो भिन्नः (इति) इत्थं कथनमीश्वरजीवात्मनोर्द्वयोः समानधर्मत्वकथनसमाप्तिः । तत्रेश्वरस्याधिष्ठानतृत्वं सृष्टिकर्तृत्वाज्जीवात्मनस्तु देहव्यवहारप्रवर्तयितृत्वादधिष्ठानतृत्वमस्ति ।

तथा -

भोक्तृभावात् ॥ १४३ ॥

(भोक्तृभावात्) भोक्तृभावो हि पुरुषे विद्यते भोग्यं हि शरीरादिकं तस्मात् स ततो भिन्नः । उक्तं

तत्र हेतवः प्रदीयन्ते - पुरुष शरीर आदि पदार्थों से भिन्न है, इस विषय में हेतु दिये जाएंगे-

संहतपरार्थत्वात् ॥ १४० ॥

सूत्रार्थ= संघात पदार्थ के परार्थ होने से जीवात्मा शरीर आदि से भिन्न है ।

भाष्य विस्तार = शरीरादयः संहताः सन्ति शरीर आदि जितने भी पदार्थ हैं वे सब संघात हैं, संहताश्च न स्वार्थाय भवन्ति तेषां जडत्वाच्छय्यादिवत् किन्तु परार्था एव जितने भी संघात पदार्थ होते हैं वे स्वयं के लिए नहीं होते, क्योंकि ये सब जड़ हैं शैय्या आदि के समान, किन्तु ये किसी और के लिए हैं, तस्माद् यदर्थः सन्ति शरीरादयः स परस्तेभ्यः शरीरादिभ्यो भिन्न इति प्रथमो हेतुः तो जिसके लिए ये शरीर आदि हैं वह इन सबसे पर है, ये पहला हेतु हुआ कि वह शरीर आदि सबसे भिन्न है ॥ १४० ॥

अथापरो हेतुः- इसी विषय में दूसरा हेतु देते हैं-

त्रिगुणादिविपर्ययात् ॥ १४१ ॥

सूत्रार्थ= तीन गुणों से भिन्न होने से, और जड़ता, पराधीनता आदि गुणों से रहित होने के कारण पुरुष शरीर से भिन्न है ।

भाष्य विस्तार = सत्त्वरजस्तमांसि त्रयो गुणाः सत्त्व रज तम तीनों गुण हैं, आदिशब्देन जडत्वं पुरुषाधीनत्वं च गृह्यते और आदि शब्द से जड़ता और पुरुष के आधीन होना ग्रहण कर लेते हैं, एतेषां विपर्ययात् इन गुणों से विपरीत होने से तत्र पुरुषे निर्दिष्टधर्माणां विपरीतत्वमभावोऽथ वो जो गुण बतलाए गए हैं वह पुरुष में निर्दिष्ट धर्म से विपरीत हैं (गुण है जड़ पुरुष है चेतन, गुण पुरुष के अधीन हैं और पुरुष स्वतंत्र है) भिन्नधर्माणां चेतनत्वादीनां भावो विद्यते चेतनत्व आदि धर्म हैं उनका अस्तित्व है पुरुष में और जड़त्व आदि जिनका धर्म है उनका अस्तित्व है जड़ पदार्थों में, तस्मात् पुरुषः शरीरादिभ्यो भिन्नः इसलिए पुरुष शरीर आदि पदार्थों से भिन्न है ॥ १४१ ॥

अधिष्ठानाच्चेति ॥ १४२ ॥

हि पूर्वम् “चिदवसानो भोगः” (सांख्य ०१.१०४) ॥ १४३ ॥

कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च ॥ १४४ ॥

(कैवल्यार्थं प्रवृत्तेः-च) पुरुषश्चात्मस्वरूपार्थं मोक्षार्थं प्रवर्ततेऽतः स शरीरादिभ्यो भिन्नः । यदि शरीरादिभ्योभिन्नो न भवेत् कैवल्यार्थं कः प्रवर्तते स एतादृशप्रवृत्तिमान् नित्यश्चेतनः पुरुष एव ॥ १४४ ॥

कथं कैवल्यार्थं पुरुषस्य प्रवृत्तिरित्यत्रोच्यते -

जडप्रकाशायोगात् प्रकाशः ॥ १४५ ॥

(जडप्रकाशायोगात्) जडे स्वात्मप्रकाशस्य युक्तिः - सम्भवो नास्ति तस्मात् तस्य कैवल्यार्थप्रवृत्तेरनुपपन्नत्वात् (प्रकाशः) पुरुषो हि प्रकाशस्वरूपश्चेतनः स्वात्मप्रकाशनार्थं कैवल्यार्थं

सूत्रार्थ= पुरुष (जीव और ईश्वर) शरीर और प्रकृति का अधिष्ठाता होन से भी शरीर आदि जड़ वस्तुओं से भिन्न है ।

भाष्य विस्तार = पुरुषो हि शरीरादिकस्याधिष्ठानमधिष्ठाता तथाऽधिष्ठेयं शरीरादिकं तस्मादपि पुरुषः शरीरादिभ्यो भिन्नः पुरुष तो शरीर आदि का अधिष्ठान है यहाँ अधिष्ठान का अर्थ किया है अधिष्ठाता । और शरीर आदि उसके अधीन हैं तो इस प्रकार से पुरुष शरीर आदि से भिन्न हुआ इत्थं कथनमीश्वरजीवात्मनोर्द्वयोः समानधर्मत्वकथनसमाप्तिः इस सूत्र में जो ‘इति’ शब्द आया है ये इस बात की सूचना दे रहा है कि अभी तक तीन हेतुओं में जो बात कही गयी वो ईश्वर और जीव दोनों पर लागू हुयी दोनों के लिए समान हेतु समाप्त हुए । तत्रेश्वरस्याधिष्ठातृत्वं सृष्टिकर्तृत्वाज्जीवात्मनस्तु देहव्यवहारप्रवर्तयितृत्वादधिष्ठातृत्वमस्ति । ईश्वर जो अधिष्ठाता है वह इसलिए क्योंकि वह पूरी सृष्टि का कर्ता है और शरीर आदि जड़ पदार्थों से अलग है । जीवात्मा जिस रूप में अधिष्ठाता है वो देह को अपने कार्य व्यवहार में लगाता है ।

तथा - (अब जो सूत्र चलेंगे वे जीवात्मा के लिए हैं)

भोक्तृभावात् ॥ १४३ ॥

सूत्रार्थ= भोक्ता होने से जीवात्मा शरीर आदि से भिन्न है ।

भाष्य विस्तार = भोक्तृभावो हि पुरुषे विद्यते शरीर आदि भोग्य है पुरुष में भोक्ता का भाव है भोग्यं हि शरीरादिकं तस्मात् स ततो भिन्नः इसलिए वह शरीर आदि से भिन्न है । उक्तं हि पूर्वम् जैसे कि पहले ही कहा था “चिदवसानो भोगः” भोग चेतन के लिए है (सांख्य ० १.१०४) ॥ १४३ ॥

कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च ॥ १४४ ॥

सूत्रार्थ= मोक्ष प्राप्ति के लिए भी प्रयत्नशील होने से जीवात्मा शरीर आदि से भिन्न है ।

(कैवल्यार्थं प्रवृत्तेः-च) पुरुषश्चात्मस्वरूपार्थं मोक्षार्थं प्रवर्ततेऽतः स शरीरादिभ्यो भिन्नः । यदि

प्रवर्तते शरीरादिभ्यो भिन्नः सन् ॥ १४५ ॥

भूमिका - एवं तु पुरुषश्चेतनावान् चेतन्धर्मवान् प्रकाशधर्मवान् दीप इव धर्मी सिद्ध्येत्, धर्मादगुणात्कथं विमोक्षः स्यात् । अत्रोच्यते -

निर्गुणत्वान्न चिद्धर्मा ॥ १४६ ॥

(निर्गुणत्वात्-न चिद्धर्मा) पुरुषो निर्गुणत्वात् खलु चेतनधर्मा चेतनधर्मेण धर्मी नास्ति किन्तु केवलः प्रकाशात्मको ज्ञानस्वरूपोऽस्ति ॥ १४६ ॥

निर्गुणत्वे हेतुः -

श्रुत्या सिद्धस्य नापलापस्तत्प्रत्यक्षबाधात् ॥ १४७ ॥

(श्रुत्या सिद्धस्य न-अपलापः) श्रुत्या खलु तस्य निर्गुणत्वसिद्धस्यापलापो न भवति “असौ ह्ययं पुरुषः” (बृह ०४.३.१५) (तत्प्रत्यक्षबाधात्) तत्र निर्गुणत्वस्य प्रत्यक्षबाधदोषः प्रसज्यते ।

शरीरादिभ्योभिन्नो न भवेत् कैवल्यार्थं कः प्रवर्तते स एतादृशप्रवृत्तिमान् नित्यश्चेतनः पुरुष एव ॥ १४४ ॥

भाष्य विस्तार = पुरुषश्चात्मस्वरूपार्थं पुरुष अपने शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति के लिए अर्थात् मोक्षार्थं मोक्ष की प्राप्ति के लिए प्रवर्ततेऽतः पुरुषार्थं करता है स शरीरादिभ्यो भिन्नः इससे यह सिद्ध होता है कि जीवात्मा शरीर आदि से भिन्न हैं। यदि शरीरादिभ्योभिन्नो न भवेत् कैवल्यार्थं कः प्रवर्तते यदि जीवात्मा शरीर आदि से भिन्न न होता तो मोक्ष के लिए पुरुषार्थं कौन करता? स एतादृशप्रवृत्तिमान् नित्यश्चेतनः पुरुष एव वह इस प्रकार की प्रवृत्ति का वह नित्य, चेतन, पुरुष है ॥ १४४ ॥

कथं कैवल्यार्थं पुरुषस्य प्रवृत्तिरित्यत्रोच्यते - मोक्ष प्राप्ति के लिए पुरुष की प्रवृत्ति कैसे होती है? उसके विषय में कहते हैं

जडप्रकाशयोगात् प्रकाशः ॥ १४५ ॥

सूत्रार्थ= जड़ वस्तु में ज्ञान का अभाव होने से और पुरुष ज्ञानवान होने से मोक्ष के लिए प्रयत्न करता है।

भाष्य विस्तार = जडे स्वात्मप्रकाशस्य युक्तिः - सम्भवो नास्ति जड़ पदार्थों में स्वयं प्रकाश=चेतन होने की योग्यता संभव नहीं है तस्मात् तस्य कैवल्यार्थप्रवृत्तेरनुपपन्नत्वात् इसलिए उसकी कैवल्य के लिए प्रवृत्ति असिद्ध है (प्रकाशः) पुरुषो हि प्रकाशस्वरूपश्चेतनः स्वात्मप्रकाशनार्थं कैवल्यार्थं प्रवर्तते इससे यह सिद्ध हुआ कि पुरुष प्रकाश स्वरूप=चेतन है ज्ञानवान है स्व प्रकाश के लिए, अपने चेतनत्व को प्राप्त करने के लिए अर्थात् सुख प्राप्ति के लिए दुःख से छूटने के लिए वह मोक्ष के लिए प्रवृत्त होता है पुरुषार्थं करता है शरीरादिभ्यो भिन्नः सन् शरीर आदि पदार्थों से वह अलग होता है, इसलिए पुरुषार्थं करता है ॥ १४५ ॥

भूमिका - एवं तु पुरुषश्चेतनावान् चेतन्धर्मवान् प्रकाशधर्मवान् दीप इव धर्मी सिद्ध्येत्, धर्मादगुणात्कथं विमोक्षः स्यात् ऐसे तो पुरुष चेतनवान हो गया, चेतन धर्म वाला हो गया, प्रकाश धर्म वाला

अतः स प्रकाशस्वरूपश्चेतन आत्मा शरीरादिभ्यो भिन्नः ॥ १४७ ॥

तस्मादेव -

सुषुप्त्याद्यसाक्षित्वम् ॥ १४८ ॥

(सुषुप्त्याद्यसाक्षित्वम्) सुषुप्त्याद्यस्य स पुरुषः साक्षी सन् शरीरादिभ्यो भिन्नः स्यात् । अन्यथा गाढं मूढोऽहमस्वाप्सं सुखमहमस्वाप्समितिप्रतिभानं न स्यात् । तस्मात् पुरुषः शरीरादिभ्यो भिन्नश्चेतनः प्रकाशस्वरूपो ज्ञानस्वरूपः ॥ १४८ ॥

शरीरादिभ्यः पुरुषस्य भिन्नत्वे निर्णीते सति पुनस्तस्य संख्याविषये विचार्यते, पूर्वं सिद्धान्तः स्थाप्यते -

जन्मादिव्यवस्थातः पुरुषबहुत्वम् ॥ १४९ ॥

(जन्मादिव्यवस्थातः पुरुषबहुत्वम्) जन्ममरणजीवनव्यवस्थातः कश्चिज्जायते कश्चन म्रियते

हो गया, दीपक के समान धर्मी सिद्ध हो गया । उस चेतन धर्म से उस गुण का छुटकारा कैस होगा । अत्रोच्यते - इसका उत्तर देते हैं-

निर्गुणत्वान्न चिद्धर्मा ॥ १४६ ॥

सूत्रार्थ= चेतनता जीव का नैमित्तिक गुण नहीं है, इसलिए जीव नैमित्तिक चेतनत्व धर्मवाला नहीं है, बल्कि चेतनता उसका स्वरूप है ।

(निर्गुणत्वात्-न चिद्धर्मा) पुरुषो निर्गुणत्वात् खलु चेतनधर्मा चेतनधर्मेण धर्मी नास्ति किन्तु केवलः प्रकाशात्मको ज्ञानस्वरूपोऽस्ति ॥ १४६ ॥

भाष्य विस्तार = पुरुषो निर्गुणत्वात् खलु चेतनधर्मा चेतनधर्मेण धर्मी नास्ति किन्तु केवलः प्रकाशात्मको ज्ञानस्वरूपोऽस्ति सिद्धांती पूर्वपक्षी की बात का उत्तर देता है -पुरुष तो निर्गुण है वह दीपक के समान नहीं कि चेतना धर्म बाहर से आकर वह चेतन धर्मी हो गया हो, वह ऐसा नहीं है किन्तु वह तो स्वरूप से ही ज्ञानवान है ॥ १४६ ॥

निर्गुणत्वे हेतुः - ज्ञान जीवात्मा में नैमित्तिक नहीं है

श्रुत्या सिद्धस्य नापलापस्तत्प्रत्यक्षबाधात् ॥ १४७ ॥

सूत्रार्थ= श्रुति से जो बात सिद्ध है उसका खंडन नहीं हो सकता, जब समाधि में जीवात्मा का प्रत्यक्ष करेंगे तो उस प्रत्यक्ष से भी आपकी बात का खंडन होगा ।

भाष्य विस्तार = श्रुत्या खलु तस्य निर्गुणत्वसिद्धस्यापलापो न भवति श्रुति से जीवात्मा के निर्गुणत्व सिद्ध स्वरूप का खंडन नहीं होता “असंगो ह्ययं पुरुषः” पुरुष असंग है । तत्र निर्गुणत्वस्य प्रत्यक्षबाधदोषः प्रसज्यते यदि ज्ञान उसमें आरोपित कर दिया गया ऐसा मानें तो उसके निर्गुणत्व का प्रत्यक्ष प्रमाण से खंडन आएगा (जब व्यक्ति समाधि लगाएगा और जीवात्मा के स्वरूप का प्रत्यक्ष करेगा तो उसे वही प्रत्यक्ष होगा जो श्रुति में कहा गया है) । अतः स प्रकाशस्वरूपश्चेतन आत्मा शरीरादिभ्यो भिन्नः इसलिए वह प्रकाश स्वरूप अर्थात् ज्ञान स्वरूप चेतन आत्मा शरीर आदि से भिन्न है ॥ १४७ ॥

कश्चिच्च जीवतीति विविधा अवस्थाः पुरुषबहुत्वे हि सम्भवन्ति । शास्त्रेऽपि पुण्येन पुण्ये लोके जायते पापेन पापे । तथा चादिशब्देन मुक्तत्वबद्धत्वेऽपि गृह्यते ते अपि पुरुषबहुत्वे सति हि सम्भवतः ॥ १४९ ॥

पूर्वपक्षत्वेनोच्यते -

उपाधिभेदेऽप्येकस्य नानायोग आकाशस्येव घटादिभिः ॥ १५० ॥

(उपाधिभेदे-अपि-एकस्य नानायोगः) उपाधिभेदे-उपाधानभेदे-आश्रयभेदेऽपि स्यादेकस्य पुरुषस्य नानायोजना बहुत्वमितियावत् (आकाशस्य इव घटादिभिः) यथा घटादिभिरुपाधिभिर्घटगर्तगृहैरुपाधानैराश्रयैराकाशस्य नानायोजना बहुत्वमुपचर्यते ॥ १५० ॥

समाधत्ते -

उपाधिभिर्घटते न तु तद्वान् ॥ १५१ ॥

तस्मादेव -

सुषुप्त्याद्यसाक्षित्वम् ॥ १४८ ॥

सूत्रार्थ= सुषुप्ति आदि का साक्षी होने से जीवात्मा शरीर आदि पदार्थों से भिन्न है ।

भाष्य विस्तार = सुषुप्त्याद्यस्य स पुरुषः साक्षी सन् शरीरादिभ्यो भिन्नः स्यात् । जीवात्मा शरीर आदि से भिन्न है क्योंकि जो सुषुप्त आदि अवस्थाएँ हैं उनका वह साक्षी होता हुआ वह शरीर आदि से भिन्न है । अन्यथा गाढं मूढोऽहमस्वाप्सं सुखमहमस्वाप्समितिप्रतिभानं न स्यात् । यदि जीवात्मा इन सुषुप्ति आदि का साक्षी न होता तो वह इस प्रकार की अनुभूति न करता, मैं आज थका हुआ था बहुत गहरी नींद सोया, या सुख पूर्वक सोया, इस तरह की अनुभूति उसे न होवे । तस्मात् पुरुषः शरीरादिभ्यो भिन्नश्चेतनः प्रकाशस्वरूपो ज्ञानस्वरूपः इसलिए पुरुष जो जीवात्मा है वह शरीर आदि से भिन्न है चेतन स्वरूप है प्रकाश स्वरूप है अर्थात् ज्ञानस्वरूप है ॥ १४८ ॥

शरीरादिभ्य पुरुषस्य भिन्नत्वे निर्णीते सति पुनस्तस्य संख्याविषये विचार्यते, पूर्वं सिद्धान्तः स्थाप्यते- पुरुष जीवात्मा शरीर आदि से भिन्न है, इतना निर्णय हो जाने पर अब उसकी संख्या के विषय में विचार किया जाता है कि पुरुष एक है या बहुत । चर्चा को आरंभ करते हुए पहले सिद्धान्त पक्ष को स्थापित करते हैं-

जन्मादिव्यवस्थातः पुरुषबहुत्वम् ॥ १४९ ॥

सूत्रार्थ= जन्म मरण आदि व्यवस्थाओं से ये सिद्ध होता है कि जीवात्माएँ अनेक हैं ।

भाष्य विस्तार = जन्ममरणजीवनव्यवस्थातः जन्मादि शब्द से लिया जीना-मरना, जीवित रहना इन सारी व्यवस्थाओं से कश्चिज्जायते कश्चन म्रियते कश्चिच्च जीवतीति विविधा अवस्थाः पुरुषबहुत्वे हि सम्भवन्ति । कोई व्यक्ति तो जन्म ले रहा है कोई मर रहा है कोई जी रहा है विविध अवस्था आयु वाला है इस प्रकार से विविध अवस्थाएँ पुरुष बहुत्व होने पर ही संभव हैं शास्त्रेऽपि पुण्येन पुण्ये लोके जायते पापेन

सांख्यदर्शनम्-प्रथमोऽध्यायः

(उपाधि:-भिद्यते न तु तद्वान्) भवतूपाधिभेदः, तेन किम् । उपाधिरेव भिद्यते न ह्युपाधिमान् भिद्यते, एवमुपाधिभेदे सत्यपि पुरुषस्य भेदेन न भवितव्यम् । तस्मान्नोपाधिभेदात् पुरुषबहुत्वं युक्तं किन्तु वास्तविकं पुरुषबहुत्वं यथोक्तं पूर्वम् ॥ १५१ ॥

पुनश्चायमपि दोषः पुरुषैकत्वे प्रसज्यते -

एवमेकत्वेन परिवर्तमानस्य न विरुद्धधर्माध्यासः ॥ १५२ ॥

(एवम्-एकत्वेन परिवर्तमानस्य) एवं हि खल्वेकत्वेनैकरूपतया परितो वर्तमानस्य सर्वतो वर्तमानस्य सर्वत्र व्याप्तस्य पुरुषस्य (विरुद्धधर्माध्यासः-न) विरुद्धधर्माणां सुख्यहं दुःख्यहं तथा स जातः स मृतः, अहं रुग्णोऽहं स्वस्थ इत्यनुभवः सम्बन्धो वा न स्यात् ॥ १५२ ॥

पापे । शास्त्र में भी अलग अलग व्यवस्था बताई है कि पुण्य करेगा तो पुण्य लोक में जाएगा और पाप करेगा तो पाप लोक में जाएगा तथा चादिशब्देन मुक्तत्वबद्धत्वेऽपि गृह्यते ते अपि पुरुषबहुत्वे सति हि सम्भवतः और आदि शब्द से मुक्त होना और बद्ध होना भी ग्रहण कर लेना चाहिए, मुक्ति होना बंधन होना ये तभी संभव है जब पुरुष बहुत्व हो ॥ १४९ ॥

पूर्वपक्षत्वेनोच्यते -

उपाधिभेदेऽप्येकस्य नानायोग आकाशस्येव घटादिभिः ॥ १५० ॥

सूत्रार्थ= उपाधि भिन्न भिन्न होने पर भी एक ही वस्तु का अनेक वस्तुओं से संयोग हो सकता है, जैसे आकाश का घट आदि अनेक वस्तुओं से संयोग हो जाता है ।

भाष्य विस्तार = उपाधिभेदे-उपाधानभेदे-आश्रयभेदेऽपि स्यादेकस्य पुरुषस्य नानायोजना बहुत्वमितियावत् पूर्वपक्षी कहता है कि उपाधिभेद होने से अर्थात् उपाधान भेद होने से आश्रय भेद होने पर भी एक आत्मा मानने पर भी (अनेक शरीर होने पर कोई शरीर जन्म रहा है कोई मर रहा है कोई जी रहा है कोई मोक्ष को प्राप्त कर रहा है) बहुत संख्या होना सिद्ध हो जाएगा, इसलिए अनेक आत्मा क्यों मानें? एक ही से सब कार्य सिद्ध हो जाएगा, यह पूर्वपक्ष है । यथा घटादिभिरुपाधिभिर्घटगर्तृगृहैरुपाधानैराश्रयैराकाशस्य नानायोजना बहुत्वमुपचर्यते अपने पक्ष में दृष्टांत देता है, देखो- आकाश एक ही है वह घड़े में भी है, भवन में भी है, गढ़दे में भी है, अलग अलग वस्तुओं के साथ आकाश का संयोग होने से वह अनेक प्रकार का आकाश कह दिया जाता है (घटाकाश, मठाकाश, पटाकाश, गर्ताकाश) एक ही आत्मा का भिन्न भिन्न शरीरों के साथ संबंध मान लो ॥ १५० ॥

समाधत्ते - अब सिद्धांती इसका उत्तर देता है-

उपाधिर्भिद्यते न तु तद्वान् ॥ १५१ ॥

सूत्रार्थ= आपके कथन से उपाधियाँ भिन्न-भिन्न सिद्ध होती हैं, किन्तु उपाधिवाला (आत्मा) नहीं ।

भाष्य विस्तार = भवतूपाधिभेदः उपाधियाँ भिन्न-भिन्न हैं ये तो सिद्ध है, तेन किम् परंतु इससे क्या सिद्ध होगा । उपाधिरेव भिद्यते न ह्युपाधिमान् भिद्यते आपके दिए हुए दृष्टांत से तो केवल उपाधियों

उपाधेर्विरुद्धधर्माश्चेत् -

अन्यधर्मत्वेऽपि नारोपात् तत्सिद्धिरेकत्वात् ॥ १५३ ॥

(अन्यधर्मत्वे) उपाधिधर्मत्वे ते विरुद्धधर्माः सुखित्वदुःखित्वस्वस्थत्वरुग्ण- त्वानि स्युरुपाधेरिति तदा (आरोपात्-अपि) तेषामुपाधिधर्माणामारोपादपि (न तत्सिद्धिः-एकत्वात्) पुरुषे न विरुद्धधर्मत्वसिद्धिर्यत आरोपयितुः पुरुषस्यैकत्वात् स एकः सन् तथाभूतान् विरुद्धधर्मान् स्वस्मिन् कथमारोपयेत् । संसारे खल्वेकस्मिन् काले केषाञ्चिद् भवति जन्म केषाञ्चिच्च मरणं तथैवेकस्मिन् काले केचन सुखिनः केचन दुःखिनः केचित्स्वस्थाः केचित्च रुग्णा दृश्यन्ते । तस्मात्पुरुषबहुत्वमेव युक्तम् ॥ १५३ ॥

यदि पुरुषानेकत्वमस्ति तथा “ असंगो ह्ययं पुरुषः ” (बृह ०४.३.१५-१६) कथं पुरुष एकोऽत्र

का भेद सिद्ध हो रहा है, उपाधि वाले की भिन्नता सिद्ध नहीं हो रही, एवमुपाधिभेदे सत्यपि पुरुषस्य भेदेन न भवितव्यम् इस प्रकार से उपाधि की भिन्नता सिद्ध होने पर भी पुरुष की भिन्नता सिद्ध नहीं हो रही । तस्मान्नोपाधिभेदात् पुरुषबहुत्वं युक्तं किन्तु वास्तविकं पुरुषबहुत्वं यथोक्तं पूर्वम् इसलिए आप जो उपाधि भेद से पुरुष बहुत्व को सिद्ध कर रहे थे, वह सिद्ध नहीं हुआ । जैसा हमने कहा था वास्तव में पुरुष अनेक हैं यह सिद्ध हो रहा है ॥१५१॥

पुनश्चायमपि दोषः पुरुषैकत्वे प्रसज्यते - पुरुष को एक मानने में ये भी तो दोष आयेगा-

एवमेकत्वेन परिवर्तमानस्य न विरुद्धधर्माध्यासः ॥ १ ५ २ ॥

सूत्रार्थ= एक ही आत्मा सर्वव्यापक मानने पर उसमें परस्पर विरोधी धर्मों की अनुभूति संभव नहीं होगी ।

भाष्य विस्तार = पूर्वपक्षी से कह रहा है सिद्धांती - आपके मतानुसार आत्मा एक है, जैसे आकाश एक है । एवं हि खल्वेकत्वेनैकरूपतया परितो वर्तमानस्य यदि आकाश के समान एक ही पुरुष मान लिया जाए, और वह सब जगह व्यापक है, ऐसा मानने पर सर्वतो वर्तमानस्य सब जगह विद्यमान का सर्वत्र व्याप्तस्य पुरुषस्य सर्वत्र व्याप्त पुरुष का विरुद्धधर्माणां विरुद्ध धर्मों की अनुभूति उसे नहीं होनी चाहिए, जैसे कि सुख्यहं मैं सुखी हूँ दुःख्यहं कोई कह रहा है मैं बहुत दुःखी हूँ तथा और स वह जातः जन्म गया स वह मृतः मर गया, अहं मैं रुग्णोऽहं रोगी हूँ मैं स्वस्थ स्वस्थ हूँ इत्यनुभवः सम्बन्धो वा न स्यात् इस प्रकार का अनुभव नहीं होना चाहिए, शाब्दिक संबंध नहीं होना चाहिए, इससे सिद्ध हो रहा है अनुभूतियाँ अलग अलग हैं शब्द भी अलग अलग कहे जा रहे हैं ॥ १५२ ॥

उपाधेर्विरुद्धधर्माश्चेत् - पूर्वपक्षी कहता है उपाधि के विरुद्ध धर्म मान लिए जाएँ तो-

अन्यधर्मत्वेऽपि नारोपात् तत्सिद्धिरेकत्वात् ॥ १५३ ॥

सूत्रार्थ= सुखी- दुःखी होना उपाधियों का धर्म मानने पर भी और उसे आत्मा में आरोपित करने पर

वर्णितः । एवं त्वद्वैतश्रुतिविरोध आपतति ।

अत्र प्रतिविधीयते -

नाद्वैतश्रुतिविरोधो जातिपरत्वात् ॥ १५४ ॥

(अद्वैतश्रुतिविरोधः-न) अद्वैतश्रुतितो विरोधो न जायते; यतः (जातिपरत्वात्) तत्र श्रुतावेकत्ववर्णनं जातिपरमस्ति, जातिरेका भवति व्यक्तयस्त्वनेकाः । अन्यत्र श्रुतौ पुरुषबहुत्वं प्रतिपाद्यतेऽपि “ये तद्विदुरमृतास्ते भवन्ति, अथेतरे दुःखमेवापियन्ति” (बृह ०४.४.१ ४) ॥ १५४ ॥

ननु “असंगो ह्ययं पुरुषः” (बृह ०४.३.१५) इति वचने पुरुषशब्दश्चेजातिपरस्तर्हि, ‘असंगः’ विशेषणं तु बहुषु व्यक्तिषु तद्रूपेण न संगच्छते यतो व्यक्तिभेदस्तु संगेनैवोपपद्यते, असंगस्तु संगवर्जितः केवल एक एव पुनः कथं व्यक्तिषु स्यादसंगत्वमित्याकांक्षायामुच्यते -

भी विरोधी धर्मों की सिद्धि नहीं हो पाएगी, आरोपित करने वाले पूर्वपक्षी के मत में आत्मा के एक होने से ।

भाष्य विस्तार = उपाधिधर्मत्वे ते विरुद्धधर्माः उपाधि धर्म मानने पर जो विरुद्ध धर्म हैं सुखित्वदुःखित्वस्वस्थत्वरुणत्वानि सुखी होना, दुःखी होना, स्वस्थ होना, रोगी होना आदि स्युरुपाधेरिति उपाधि मान लिए जाएँ तदा तब तेषामुपाधिधर्माणामारोपादपि सिद्धांती कह रहा है उन सब में उपाधि धर्म सुखी-दुःखी-रोगी-स्वस्थ आदि आरोपित करने पर भी पुरुषे न विरुद्धधर्मत्वसिद्धिः पुरुष में विरुद्ध धर्मों की सिद्धि फिर भी न हो सकेगी यतः क्योंकि आरोपयितुः आरोप करने वाला पुरुषस्यैकत्वात् पुरुष तो एक ही है (वही एक आत्मा एक समय में अलग-अलग शरीरों में कहीं पर सुख कहीं, दुःखी कहीं रोगी, कहीं स्वस्थ आदि अनुभव तो कर नहीं सकता) स एकः सन् तथाभूतान् विरुद्धधर्मान् स्वस्मिन् कथमारोपयेत् । आरोपित करने वाला पुरुष यदि एक संख्या में हो तो इतने सारे विरुद्ध धर्मों में कैसे कथन करेगा । संसारे संसार में खल्वेकस्मिन् काले केषाञ्चिद् भवति जन्म एक ही समय में कुछ लोगों का जन्म होता है केषाञ्चिच्च मरणं तथैवेकस्मिन् काले कुछ लोगों की उसी समय में मृत्यु भी हो रही है केचन सुखिनः केचन दुःखिनः केचित्स्वस्थाः केचित्च रुग्णा दृश्यन्ते उसी काल में उसी क्षण में कुछ लोग सुखी दिखते हैं कुछ लोग दुःखी दिखते हैं तो कुछ लोग स्वस्थ तो कुछ लोग रोगी दिखते हैं । तस्मात्पुरुषबहुत्वमेव युक्तम् इसलिए अलग अलग पुरुष होना ही उचित है ॥ १५३ ॥

यदि पुरुषानेकत्वमस्ति तथा “असंगो ह्ययं पुरुषः” (बृह ०४.३.१५-१६) कथं पुरुष एकोऽत्र वर्णितः पूर्वपक्षी प्रश्न उठाता है- यदि पुरुष का बहुत्व है फिर श्रुति में तो कहा है की पुरुष तो असंग है यहाँ तो एक वचन है । फिर कैसे एक पुरुष कहा जब अनेक है तो अनेक का ही कथन होना चाहिए । एवं त्वद्वैतश्रुतिविरोध आपतति आपकी बात माने तो अद्वैत श्रुति से विरोध आएगा ।

अत्र प्रतिविधीयते - अब इस बात का खंडन किया जाता है-

नाद्वैतश्रुतिविरोधो जातिपरत्वात् ॥ १५४ ॥

विदितबन्धकारणस्य दृष्ट्या तदरूपम् ॥ १५५ ॥

(विदितबन्धकारणस्य दृष्ट्या) विदितं ज्ञातं बन्धकारणमविवेको येन तस्य प्राप्तविवेकस्य विवेकान्निवृत्तबन्धस्य पुरुषस्य दृष्ट्या (तदरूपम्) खल्वसंगरूपमसंगत्वमुक्तम् । अतः पुरुषबहुत्वे न दोषप्रसक्तिः ॥ १५५ ॥

विदितबन्धकारणस्यासंगत्वदृष्टिरुक्ताऽन्यस्य कथं न स्यात्तथारूपत्वानुभूतिस्तदरूपस्य सर्वपुरुषधर्मत्वात् । अत्रोच्यते -

नान्धादृष्ट्या चक्षुष्मतामनुपलम्भः ॥ १५६ ॥

(अन्धादृष्ट्या-अनुपलम्भः) अन्धस्यादृष्ट्या भवत्यनुपलम्भो रूपादर्शनम् (चक्षुष्मतां न) नेत्रवतां न भवति । तस्माद् विवेकनेत्रवतां लब्धविवेकानां भवत्यसंज्ञत्वानुभूतिर्न तद्रहितानाम् । अतः पुरुष बहुत्वं निरवद्यम् । पूर्वं चेदं च सूत्रं विज्ञानभिक्षुभाष्येऽन्यथा व्याख्यातम् ॥ १५६ ॥

सूत्रार्थ= एक पुरुष का प्रतिपादन करने वाली श्रुति से अनेक पुरुष होने का विरोध नहीं है, क्योंकि वह श्रुति जातिपरक है।

भाष्य विस्तार = अद्वैतश्रुतितो विरोधो न जायते; सिद्धांती कहता है अद्वैत श्रुति से विरोध नहीं आया यतः क्योंकि तत्र श्रुतावेकत्ववर्णनं जातिपरमस्ति (एक नियम है व्याकरण का जब जाति का कथन हो तो एक वचन भी कह सकते हैं और बहुवचन भी) वहां श्रुति में जो एकत्व का वर्णन है वह जातिपरक है, जातिरेका भवति व्यक्तयस्त्वनेकाः जाति एक होती है व्यक्ति बहुत सारे होते हैं। अन्यत्र श्रुतौ पुरुषबहुत्वं प्रतिपाद्यतेऽपि सिद्धांती कहता है अन्यत्र श्रुतियों में भी पुरुष के बहुत का प्रतिपादन किया गया है “ये तद्विदुरमृतास्ते भवन्ति, अथेतरे दुःखमेवापियन्ति” जो योगी लोग परमात्मा को जान लेते हैं वे अमृत हो जाते हैं मोक्ष में चले जाते हैं, और जिन्होंने ईश्वर को नहीं जाना वे बार-बार दुःख भोगते रहते हैं ॥ १५४ ॥

ननु “असंगो ह्ययं पुरुषः” (बृह ०४.३.१५) इति वचने पुरुषशब्दश्चेज्जाति- परस्तिर्हि, ‘असंगः’ विशेषणं तु बहुषु व्यक्तिषु तदरूपेण न संगच्छते यतो व्यक्तिभेदस्तु संगेनैवोपपद्यते पूर्वपक्षी प्रश्न करता है कि पुरुष तो असंग है, इस वचन में पुरुष जाति के संबंध में है तो ये जो ‘असंग’ विशेषण है बहुत सारे व्यक्तियों में तो उस रूप में लागू नहीं होगा क्योंकि सब के सब एक जैसे विद्वान तो हैं नहीं। क्योंकि व्यक्ति का जो भेद है वह तो शरीर के संग से ही सिद्ध हो पाएगी, असंगस्तु संगवर्जितः केवल एक एव पुनः कथं व्यक्तिषु स्यादसंगत्वमित्याकांक्षायामुच्यते असंग का अर्थ है संग से रहित, फिर वह तो एक ही हो पाएगा जिसको तत्त्वज्ञान होगा वही कहेगा मैं तो एक हूँ, सब व्यक्तियों में सब जीवात्माओं में असंगत्व लागू नहीं हो पाएगा-

विदितबन्धकारणस्य दृष्ट्या तदरूपम् ११ ॥ १५५ ॥

सूत्रार्थ= श्रुति में जो कहा है “असंज्ञो ह्ययं पुरुषः” यह विवेक प्राप्त तत्त्वज्ञानी व्यक्ति की दृष्टि से कहा है।

भाष्य विस्तार = विदितं अर्थात् ज्ञातं जिसने जान लिया बन्धकारणमविवेको कि बंधन का कारण

अन्यच्च -

वामदेवादिर्मुक्तो नाद्वैतम् ॥ १५७ ॥

(वामदेवादिः-मुक्तः) वामदेवः शुको भरतश्च मुक्तः (अद्वैतं न) न ह्यद्वैतम् । मुक्तानामनेकत्वादपि पुरुषैकत्वं न ॥ १५७ ॥

अथ चेन्न मन्येत कश्चिन्मुक्तस्तर्हि -

अनादावद्ययावदभावाद्भविष्यदप्येवम् ॥ १५८ ॥

(अनादौ-अद्ययावत्-अभावात्) अनादौ कालेऽथचाद्यपर्यन्तं यदि मुक्तेरभावो न कश्चिन्मुक्तस्तर्हि (भविष्यत्-अपि-एवम्) भविष्यत् कालोऽपि तथैवानुमेयो मुक्तिरहितः पुनर्मोक्षोपदेशो निरर्थकः स्यात् ॥ १५८ ॥

है अविवेक येन तस्य उस व्यक्ति का प्राप्तविवेकस्य जिसको विवेक प्राप्त हो गया विवेकान्निवृत्तबन्धस्य पुरुषस्य तत्त्वज्ञान से जिस पुरुष का बंधन ज्ञान नष्ट हो गया दृष्ट्या उस दृष्टि से (तद्रूपम्) खल्वसंगरूपमसंगत्वमुक्तम् असंग कहा है (असंग वो है जिसने जान लिया अविद्या मुझसे अलग और मैं अविद्या से अलग हूँ) । अतः इसलिए पुरुषबहुत्वे बहुत पुरुष होने में न दोषप्रसक्तिः कोई दोष नहीं है ॥ १५५ ॥

विदितबन्धकारणस्यास इत्त्वदृष्टिरुक्ताऽन्यस्य कथं न स्यात्तथारूपत्वानुभूति- स्तरूपस्य सर्वपुरुषधर्मत्वात् पूर्वपक्षी कह रहा है - जिसको तत्त्वज्ञान हो गया वह ये कह रहा है 'मैं असंग हूँ' जबकि असंग तो सारी जीवात्माएँ हैं, फिर सभी क्यों नहीं बोल रहे कि 'हम असंग हैं' असंग तो सभी आत्माओं का धर्म है। बंधन के कारण से वह असंग है, ये बात अन्य जीवात्माओं पर भी लागू हो, इस तरह की अनुभूति औरों को क्यों नहीं हो रही? जबकि असंग रूप तो सभी पुरुषों का धर्म है। अत्रोच्यते - इस पर कहते हैं-

नान्धादृष्ट्या चक्षुष्मतामनुपलम्भः ॥ १५६ ॥

सूत्रार्थ= अन्धे व्यक्ति की दृष्टि ठीक न होने के कारण रूप दर्शन नहीं होता, किन्तु नेत्र वालों को तो दर्शन होता है।

भाष्य विस्तार = अन्धस्यादृष्ट्या भवत्यनुपलम्भो रूपादर्शनम् जो अन्धा है उसकी दृष्टि ठीक नहीं है इसलिए उसको रूप का दर्शन नहीं होता जबकि (चक्षुष्मतां न) नेत्रवतां न भवति जिसकी आँखें ठीक हैं उसे सब कुछ दिखता है। तस्माद् विवेकनेत्रवतां लब्धविवेकानां भवत्यस इत्वानुभूतिर्न तद्रहितानाम् इसलिए जिनके विवेक के नेत्र खुल गए हैं तत्त्वज्ञान की आँखें खुल गईं, वह अनुभव करता है कि 'मैं असंग हूँ' जिनको ये तत्त्वज्ञान नहीं होता वे अनुभव नहीं कर पाते। अतः पुरुष बहुत्वं निरवद्यम् इसलिए पुरुष बहुत मानना ये निर्दोष है। पूर्व चेदं च सूत्रं विज्ञानभिक्षुभाष्येऽन्यथा व्याख्यातम् यह सूत्र और इससे पिछला सूत्र में विज्ञानभिक्षु ने गलत व्याख्या की है ॥ १५६ ॥

अन्यच्च -

वामदेवादिर्मुक्तो नाद्वैतम् ॥ १५७ ॥

सांख्यदर्शनम्-प्रथमोऽध्यायः

ननु पुरुषबहुत्वस्वीकारेऽपि मुक्तबहुत्वात्स्यात्संसारस्योच्छेदः, आदिसर्गतोऽद्ययावत् क्रमेण सर्वेषां मुक्तत्वात् । अत्रोच्यते -

इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः ॥ १५९ ॥

(इदानीम्-इव-सर्वत्र-अत्यन्तोच्छेदः-न) साम्प्रतिके काले सर्गे-इव सर्वत्र काले सर्वेषु सर्गेषु च संसारस्यात्यन्तोच्छेदो न भविष्यति कस्यापि पुरुषस्य परममोक्षा बह्याणि लयो न भवति यदि हि स्यात् तर्हीदं जगन्न वर्तेत नोपलभ्येत, वर्ततेऽथोपलभ्यते जगत् तस्मान्न परममोक्षः पुरुषस्य । उक्तं विज्ञानभिक्षुभाष्येऽपीत्यमेव “सर्वत्र काले बन्धस्यात्यन्तोच्छेदः कस्यापि पुंसो नास्ति वर्तमानकालवदित्यनुमानं सम्भवेदित्यर्थः” (विज्ञानभिक्षुभाष्यम्) ॥ १५९ ॥

पुरुषस्यात्यन्तबन्धोच्छेदाभावे यद्वा परममोक्षाभावे हेतुरुच्यतेव्यावृत्तोभयरूपः ॥ १६० ॥

(व्यावृत्तोभयरूपः) यतः पुरुषः खलूभयरूपाभ्यां मुक्तत्वबद्धत्वाभ्यां व्यावृत्तः पृथग्भूतोऽस्ति, अविवेकाद् बद्धो भवति विवेकात् खलु मुक्तो भवति वक्ष्यति ह्यग्रे “नैकान्ततो बन्धमोक्षौ

सूत्रार्थः= वामदेव आदि अनेक ऋषियों की मुक्ति हो गई, इसलिए भी आत्मा एक नहीं है, बल्कि अनेक आत्माएँ हैं ।

भाष्य विस्तार = वामदेवः शुको भरतश्च मुक्तः वामदेव, शुकदेव, भरत मुनि आदि मुक्त हो गए न ह्यद्वैतम् इसलिए एक आत्मा नहीं है । मुक्तानामनेकत्वादपि पुरुषैकत्वं न मुक्त अनेक हुए हैं केवल एक ही मुक्त नहीं हुआ, इसलिए एक आत्मा नहीं है ॥ १५७ ॥

अथ चेन्न मन्येत कश्चिन्मुक्तस्तर्हि - पूर्वपक्षी कहता है कोई ये कहे कि आजतक एक भी मुक्त नहीं हुआ तो-

अनादावद्ययावदभावाद्भविष्यदप्येवम् ॥ १५८ ॥

सूत्रार्थः= यदि अनादिकाल से लेकर आजतक किसी की भी मुक्ति नहीं हुई तो भविष्यत काल में भी किसी की मुक्ति नहीं हो पाएगी, तब तो मोक्ष का वेदोक्त उपदेश भी व्यर्थ हो जाएगा ।

भाष्य विस्तार = सिद्धांती कहता है अनादौ कालेऽथचाद्यपर्यन्तं अनादि काल से आजतक यदि मुक्तेरभावो यदि ऐसा मान लिया जाए कि मुक्ति का अभाव है, एक भी व्यक्ति आजतक मुक्त नहीं हुआ न कश्चिन्मुक्तस्तर्हि भविष्यत् कालोऽपि तथैवानुमेयो मुक्तिरहितः तो फिर भविष्य काल का भी कोई मुक्त नहीं होगा ऐसे ही अनुमान करना पड़ेगा पुनर्मोक्षोपदेशो निरर्थकः स्यात् फिर मोक्ष का उपदेश निरर्थक हो जाएगा ॥ १५८ ॥

ननु पुरुषबहुत्वस्वीकारेऽपि मुक्तबहुत्वात्स्यात्संसारस्योच्छेदः पूर्वपक्षी कहता है कि पुरुष बहुत्व है और मुक्ति में भी बहुत चले गए, ऐसे एक एक करके सब मुक्ति में चले गए तो संसार तो खत्म हो जाएगा, आदिसर्गतोऽद्ययावत् क्रमेण सर्वेषां मुक्तत्वात् आदि सर्ग से लेकर क्रम से सब मुक्ति में चले जाएँ और आगे

पुरुषस्याविवेकादृते” (सांख्य ०३.७१) अतस्तस्य न परममोक्षस्त- स्मादेव सर्वेषां पुरुषाणां क्रमेण मुक्तत्वात् संसारोच्छेदो न भवति स एष सिद्धान्तः सांख्ये सूत्रद्वयवर्णितो दयानन्दर्षिणाऽभिमतोऽस्ति ।। १६० ।।

अथ य खलु पुरुषविशेष ईश्वरः “क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः” (योग ०१.२४) यस्य विषये श्रुतावुच्यते “जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि” (छन्दो ०६.३.२) “य आत्मनि तिष्ठन् यस्यात्मा शरीरम्” (बृह ०३.७.२२) तथा यं परं पुरुषमेव शरीरः प्राप्य मुक्तो

भी अगले अगले जन्मों में लोग मुक्त होते चले जाएंगे, फिर संसार तो खत्म हो जाएगा। अत्रोच्यते - इस पर कहते हैं-

इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः ।। १५९ ।।

सूत्रार्थः= जैसे इस समय संसार चल रहा है ऐसे ही सदा संसार चलता रहेगा, इसका अत्यंत विनाश कभी नहीं होगा।

भाष्य विस्तार = साम्प्रतिके काले सर्गे-इव जैसे वर्तमान में इस सृष्टि में सर्वत्र काले सर्वेषु सर्गेषु च वैसे ही सभी कालों में सभी सृष्टियों में संसारस्यात्यन्तोच्छेदो न भविष्यति संसार पूरी तरह से कभी नष्ट नहीं होगा कस्यापि पुरुषस्य परममोक्षा ब्रह्मणि लयो न भवति क्योंकि किसी भी जीवात्मा का ब्रह्म में लय नहीं होता यदि हि स्यात् तर्हीदं जगन्न वर्तेत नोपलभ्येत यदि ऐसा होता एक एक आत्मा परमात्मा में विलीन हो जाता और वापिस लौट के न आता, तब तो संसार खत्म हो जाता, वर्ततेऽथोपलभ्यते जगत् तस्मान्न परममोक्षः पुरुषस्य क्योंकि जगत तो दिख रहा है उपलब्ध हो रहा है इससे सिद्ध हुआ कि किसी भी जीवात्मा का परम मोक्ष नहीं होता, मुक्ति का समय निश्चित है। उक्तं विज्ञानभिक्षुभाष्येऽपीत्यमेव “सर्वत्र काले बन्धस्यात्यन्तोच्छेदः कस्यापि पुंसो नास्ति विज्ञानभिक्षु भाष्य में भी ऐसा ही स्वीकार किया गया ‘सभी कालों में सभी सृष्टियों में बंधन का पूरी तरह से विनाश किसी भी पुरुष का नहीं होता’ वर्तमानकालवदित्यनुमानं सम्भवेदित्यर्थः” वर्तमान काल के समान ही सभी कालों में समझना चाहिए (विज्ञानभिक्षुभाष्यम्) ।। १५९ ।।

पुरुषस्यात्यन्तबन्धोच्छेदाभावे यद्वा परममोक्षाभावे हेतुरुच्यते-पुरुष के अत्यंत बन्ध के विनाश के अभाव अर्थात् सदा के लिए उसके बंधन का विनाश हो जाए अथवा अनन्त काल के लिए उसका मोक्ष कभी नहीं होगा, इसमें कारण बताते हैं-

पुरुषस्यात्यन्तबन्धोच्छेदाभावे यद्वा परममोक्षाभावे हेतुरुच्यतेव्यावृत्तोभयरूपः ।। १६० ।।

सूत्रार्थः= जीवात्मा न तो स्वभाव से बंधन में और न मुक्ति में रहता है, अपितु स्वभाव से इन दोनों से पृथक् रहता है।

भाष्य विस्तार = यतः क्योंकि पुरुषः जीवात्मा खलूभयरूपाभ्यां इन दोनों रूपों से मुक्तत्वबद्धत्वाभ्यां व्यावृत्तः पृथग्भूतोऽस्ति स्वभाव से न बद्ध है और न ही स्वभाव से मुक्त है, किसी कारण से बंधन में आता है

भवति “परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्” (मुण्ड ०३.२.८) तस्य परमपुरुषस्य पुरुषविशेषस्येश्वरस्यानेन शारीरेण पुरुषेण सह तुलनया किं स्वरूपमिति प्रसंगतः सूत्रत्रयेण वर्ण्यते -

साक्षात् सम्बन्धात् साक्षित्वम् ।
नित्यमुक्तत्वम् ।

औदासीन्यं चेति ॥ १६१-१६३ ॥

किसी कारण से मुक्ति में। जीवात्मा के दो रूप हैं एक है बंधन का दूसरा मुक्ति (कभी बंधन में आता है तो कभी मुक्ति में चला जाता है), अविवेकाद् बद्धो भवति विवेकात् खलु मुक्तो भवति अविवेक के कारण बंधन में आता है और विवेक के कारण मुक्ति में जाता है वक्ष्यति ह्यग्रे “नैकान्ततो बन्धमोक्षौ पुरुषस्याविवेकादूते” “बंधन और मुक्ति दोनों स्वभाव से नहीं हैं, अविवेक के बिना बंधन नहीं होता और विवेक के बिना मुक्ति नहीं होती” (सांख्य ०३.७१) अतस्तस्य न परममोक्षः इसलिए पुरुष का सदा के लिए मोक्ष नहीं होता तस्मादेव सर्वेषां पुरुषाणां क्रमेण मुक्तत्वात् संसारोच्छेदो न भवति इसलिए सभी पुरुषों के क्रम से मुक्त हो जाने पर संसार समाप्त हो जाए, ऐसा नहीं हो सकता स एष सिद्धान्तः सांख्ये सूत्रद्वयवर्णितो दयानन्दर्षिणाऽभिमतोऽस्ति सांख्य के इन दो सूत्रों में बताया गया ये सिद्धान्त ऋषि दयानन्द जी ने भी स्वीकार किया है ॥ १६० ॥

अथ य खलु पुरुषविशेष ईश्वरः “क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः” (योग ० १.२४) यस्य विषये श्रुतावुच्यते “जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि” (छान्दो ०६. ३.२) “य आत्मनि तिष्ठन् यस्यात्मा शरीरम्” (बृह ०३.७.२२) तथा यं परं पुरुषमेष शरीरः प्राप्य मुक्तो भवति “परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्” ये जो पुरुष विशेष ईश्वर हैं सब जीवात्माओं से भिन्न प्रकार का, जिसके विषय में कहा गया है कि जीवात्मा के साथ रहता हुआ वह जगत के नाम और रूप की रचना करता है, जो आत्मा में रहता हुआ आत्मा से अलग है और आत्मा जिसका शरीर=निवास स्थान है तथा जिस परम पुरुष को प्राप्त होके ये शरीर धारी जीवात्मा मुक्त हो जाता है, जिस ईश्वर के विषय में इतनी उच्च स्तर की चर्चा है अब उस ईश्वर के विषय में कहते हैं (मुण्ड ०३.२.८) तस्य परमपुरुषस्य पुरुषविशेषस्येश्वरस्यानेन शारीरेण पुरुषेण सह तुलनया किं स्वरूपमिति प्रसंगतः सूत्रत्रयेण वर्ण्यते उस परम पुरुष पुरुष विशेष ईश्वर का इस शरीर धारी पुरुष=जीवात्मा के साथ तुलना करके उस ईश्वर का क्या स्वरूप है ? इस बात को प्रसंग से तीन सूत्रों से बताया जाता है -

साक्षात् सम्बन्धात् साक्षित्वम् ।

सूत्रार्थ= ब्रह्म का जीव के साथ साक्षात् संबंध होने से वह जीव के कर्म का साक्षी है

नित्यमुक्तत्वम् ।

सूत्रार्थ= ईश्वर नित्य मुक्त है

औदासीन्यं चेति ॥ १६१-१६३ ॥

इमानि त्रीणि सूत्राण्येकत्रार्थाप्यन्ते -

(साक्षात् सम्बन्धात् साक्षित्वम्) शारीरे पुरुष जीवात्मनि साक्षात्सम्बन्धादन्तर्यामि- मित्वसम्बन्धात् तस्य परमपुरुषस्य पुरुषविशेषस्येश्वरस्य साक्षित्वमन्तर्यामि- मित्वमस्ति तत्कृतसर्वव्यापारस्य द्रष्टृत्वं ज्ञातृत्वं तस्मै भोगापवर्गौ प्रदातुं नियन्तृत्वमास्ति । उक्तं यथा श्रुतौ तस्य साक्षित्वम् “द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते । तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनन्नन्यो अभिचाकशीति ॥” (ऋ ०१.१६४.२०) ‘अभिचाकशीति’ श्रुत्या तस्य साक्षित्वं स्पष्टं दर्शितम् ।

पुनश्च (नित्यमुक्तत्वम्) शारीरः पुरुषस्तु कदाचिद् बद्धो भवत्यविवेकात् कदाचिच्च मुक्तो भवति विवेकात् स न नित्यबद्धो न नित्यमुक्तः विवेकाविवेकनिमित्ते तस्य मुक्तत्वबद्धत्वे पर्यावर्तते परन्तु परमपुरुषस्य पुरुषविशेषस्येश्वरस्य नित्यमुक्तत्वं सदा मुक्तत्वमस्ति स तु सदैव मुक्तः ।

अथ च (औदासीन्यं च-इति) तस्य शारीरस्य पुरुषस्य जीवात्मनोऽन्तरे स्थितस्य सतोऽपीश्वरस्य

सूत्रार्थ= और प्राकृतिक सुख- दुःख के प्रति उदासीन है ।

इमानि त्रीणि सूत्राण्येकत्रार्थाप्यन्ते - इन तीनों सूत्रों की एक साथ व्याख्या की जाती है

भाष्य विस्तार = शारीरे पुरुष जीवात्मनि साक्षात्सम्बन्धादन्तर्यामि- मित्वसम्बन्धात् तस्य परमपुरुषस्य पुरुषविशेषस्येश्वरस्य साक्षित्वमन्तर्यामि- मित्वमस्ति जो शरीर धारी पुरुष जीवात्मा है उसको शारीर पुरुष कहते हैं, उस शरीर में ईश्वर का जीवात्मा के साथ साक्षात् संबंध है, उस परमपुरुष पुरुष विशेष ईश्वर के साथ अन्तर्यामी संबंध है तत्कृतसर्वव्यापारस्य द्रष्टृत्वं ज्ञातृत्वं तस्मै भोगापवर्गौ प्रदातुं नियन्तृत्वमास्ति उस जीवात्मा के द्वारा की गयी सारी क्रियाओं को देखता और जानता रहता है, जीवात्मा को भोग और अपवर्ग देने में उस ईश्वर का नियंत्रण है । उक्तं यथा श्रुतौ तस्य साक्षित्वम् जैसे कि श्रुति में वेदवचन में ईश्वर को साक्षी कहा ही है “द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते दो सुंदर पंखों वाले पक्षी हैं मित्र के समान दोनों एक वृक्ष पर रहते हैं । तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनन्नन्यो अभिचाकशीति उन दोनों में से एक अपने कर्मों के फलों को भोगता है, और जो दूसरा है=ईश्वर, वह खाता नहीं, बल्कि देखता रहता है ॥” (ऋ ०१.१६४.२०) ‘अभिचाकशीति’ श्रुत्या तस्य साक्षित्वं स्पष्टं दर्शितम् श्रुति में जो अभिचाकशीति शब्द है उससे ईश्वर का साक्षी होना दर्शाया जा रहा है ।

पुनश्च (नित्यमुक्तत्वम्) शारीरः पुरुषस्तु कदाचिद् बद्धो भवत्यविवेकात् कदाचिच्च मुक्तो भवति विवेकात् जो शरीर धारी पुरुष है जीवात्मा । कभी तो वह अविवेक के कारण बंधन में आ जाता है और कभी वह मुक्त हो जाता है विवेक के कारण स न नित्यबद्धो न नित्यमुक्तः वह जीवात्मा न तो नित्य बद्ध है और न ही नित्य मुक्त है विवेकाविवेकनिमित्ते तस्य मुक्तत्वबद्धत्वे पर्यावर्तते विवेक और अविवेक के कारण से उस जीवात्मा का मुक्ति और बंधन बारी बारी से आते रहते हैं परन्तु परमपुरुषस्य पुरुषविशेषस्येश्वरस्य नित्यमुक्तत्वं सदा मुक्तत्वमस्ति स तु सदैव मुक्तः परन्तु जो परम पुरुष है पुरुष विशेष ईश्वर है उसका तो सदा ही नित्य मुक्तत्व है अर्थात् वह सदा ही मुक्त रहता है ।

तत्कर्मफलभोगं प्रति सम्पर्कराहित्यमकामत्वमपि विद्यते। उक्तं तथैव श्रुतौ “अकामो धीरः” (अथर्व ० १०.८.४४) “न लिप्यते लोकदुःखेन” (कठो ०२.२.१) इति शब्दः शारीरपुरुषेण सह तुलनासमाप्तिसूचकः ॥ १६१ - १६३ ॥

अथेदानीं तथाभूतस्य परमपुरुषस्य पुरुषविशेषस्येश्वरस्य प्रकृत्याख्येन प्रधानेन सह सम्बन्धः प्रदर्श्यते

उपरागात् कर्तृत्वं चित्सान्निध्यात् चित्सान्निध्यात् ॥ १६४ ॥

(उपरागात्) प्रकृतेरुपाश्रयात् तस्यास्तदधीने वर्तमानत्वात् पुरुषविशेषस्येश्वरस्य (कर्तृत्वं) सृष्टिकर्तृत्वं भवति। यथोक्तम् “एकं रूपं बहुधा यः करोति” (श्वेता ०६.१२) तथा च (चित्सान्निध्यात्) चितश्चेतनस्य पुरुषविशेषस्येश्वरस्य सन्निधानसम्बन्धात् संसर्गात् समावेशसम्बन्धाद् भवति कर्तृत्वं प्रधानस्य प्रकृत्याख्यस्या-व्यक्तस्येत्युत्तरसूत्रेणाग्रिमाध्यायस्थेन सहाभिसम्बध्यते ततः सूत्रात् ‘प्रधानस्य’ पदं

अथ च (औदासीन्यं च-इति) तस्य उस शारीरस्य शरीरधारी पुरुषस्य पुरुष के जीवात्मनोऽन्तरे स्थितस्य जीवात्मा के अंदर स्थित सतोऽपीश्वरस्य तत्कर्मफलभोगं जीव के कर्म के फल को भोगने के प्रति प्रति सम्पर्कराहित्यमकामत्वमपि विद्यते उसकी संपर्क रहितता है, उसमें कोई कामना नहीं है। उक्तं तथैव श्रुतौ “अकामो धीरः” ऐसे ही बात श्रुति में काही गयी है ‘वह अकाम है’ उसका अपने लिए कोई काम नहीं (अथर्व ० १०.८.४४) “न लिप्यते लोकदुःखेन” ब्रह्म लौकिक दुःख से लिप्त नहीं होता (कठो ०२. २.११) इति शब्दः शारीरपुरुषेण सह तुलनासमाप्तिसूचकः इति शब्द जीव और ब्रह्म कि तुलना सूचक प्रकरण कि समाप्ती बता रहा है ॥ १६१ - १६३ ॥

अथेदानीं तथाभूतस्य परमपुरुषस्य पुरुषविशेषस्येश्वरस्य प्रकृत्याख्येन प्रधानेन सह सम्बन्धः प्रदर्श्यते - अब जीव और ब्रह्म की तुलना के पश्चात् जैसा ईश्वर बताया था कि वह जीव के कर्मों का साक्षी है, सदा मुक्त है आदि-आदि उस परम पुरुष पुरुष विशेष ईश्वर का प्रकृति नामक प्रधान के साथ अब संबंध दिखलाते हैं-

उपरागात् कर्तृत्वं चित्सान्निध्यात् चित्सान्निध्यात् ॥ १६४ ॥

सूत्रार्थः= प्रकृति की समीपता से ईश्वर में सृष्टि का कर्तापन है, और चेतन परमात्मा की सन्निधि से प्रकृति में भी गौड़ रूप से सृष्टि कर्तित्व है।

भाष्य विस्तार = प्रकृतेरुपाश्रयात् तस्यास्तदधीने वर्तमानत्वात् पुरुषविशेषस्येश्वरस्य सृष्टिकर्तृत्वं भवति प्रकृति के आश्रय से अर्थात् प्रकृति परमात्मा के वर्तमान अधीन होने से पुरुष विशेष ईश्वर का सृष्टि कर्तृत्वं है। यथोक्तम् “एकं रूपं बहुधा यः करोति” जैसा कि शास्त्र में बताया ही है एक रूप प्रकृति को जो बहुत रूप करता है तथा च चितश्चेतनस्य पुरुषविशेषस्येश्वरस्य सन्निधानसम्बन्धात् संसर्गात् समावेशसम्बन्धाद् भवति कर्तृत्वं प्रधानस्य प्रकृत्याख्यस्याव्यक्तस्येत्युत्तरसूत्रेणाग्रिमाध्यायस्थेन सहाभिसम्बध्यते और चेतन पुरुष विशेष ईश्वर का निकट के संबंध से पास में होने से संसर्ग से समावेश संबंध होने से आसपास व्याप्त होने से कर्तित्व है। यहाँ गौड़ कथन है - प्रकृति जगत को बनाती है चेतन की सन्निधि

सांख्यदर्शनम्-प्रथमोऽध्यायः

पुरस्तादुत्कृष्यते। प्रकृतेः कर्तृत्वमपि श्रुतौ वर्ण्यते “अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः” (श्वेता ०४.५) ‘चित्सान्निध्यात्’ इति द्विरुक्तिरध्याय- समाप्तिसूचिका ॥ १६४॥

समाप्तः सांख्यदर्शने प्रथमोऽध्यायः स्वामिब्रह्ममुनिभाष्योपेतः ।

से, स्वयं नहीं। ततः सूत्रात् ‘प्रधानस्य’ पदं पुरस्तादुत्कृष्यते पहले अध्याय के पहले सूत्र से ‘प्रधानस्य’ शब्द का उत्कर्ष कर लेते हैं। प्रकृतेः कर्तृत्वमपि श्रुतौ वर्ण्यते प्रकृति जगत् को बनाती है रचती है ऐसा श्रुति में भी वर्णन आया है “अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः” जो जन्म नहीं लेती जो काले सफेद और लाल रंग वाली प्रकृति है अपने जैसी प्रजा को सृजन करती है” (श्वेता ०४.५) ‘चित्सान्निध्यात्’ इति द्विरुक्तिरध्याय- समाप्तिसूचिका इस सूत्र में ‘चित्सान्निध्यात्’ ये शब्द दो बार आया है जो दूसरी बार कथन हुआ वह अध्याय की समाप्ति की सूचना के लिए है ॥ १६४॥

समाप्तः सांख्यदर्शने प्रथमोऽध्यायः स्वामिब्रह्ममुनिभाष्योपेतः ।



